ओ३म

ज्ञान-ज्योति

विभिन्न विषयों पर चारों वेदों के चुने वेद मंत्रों का मार्ग दर्शन

जन-ज्ञान
मासिक

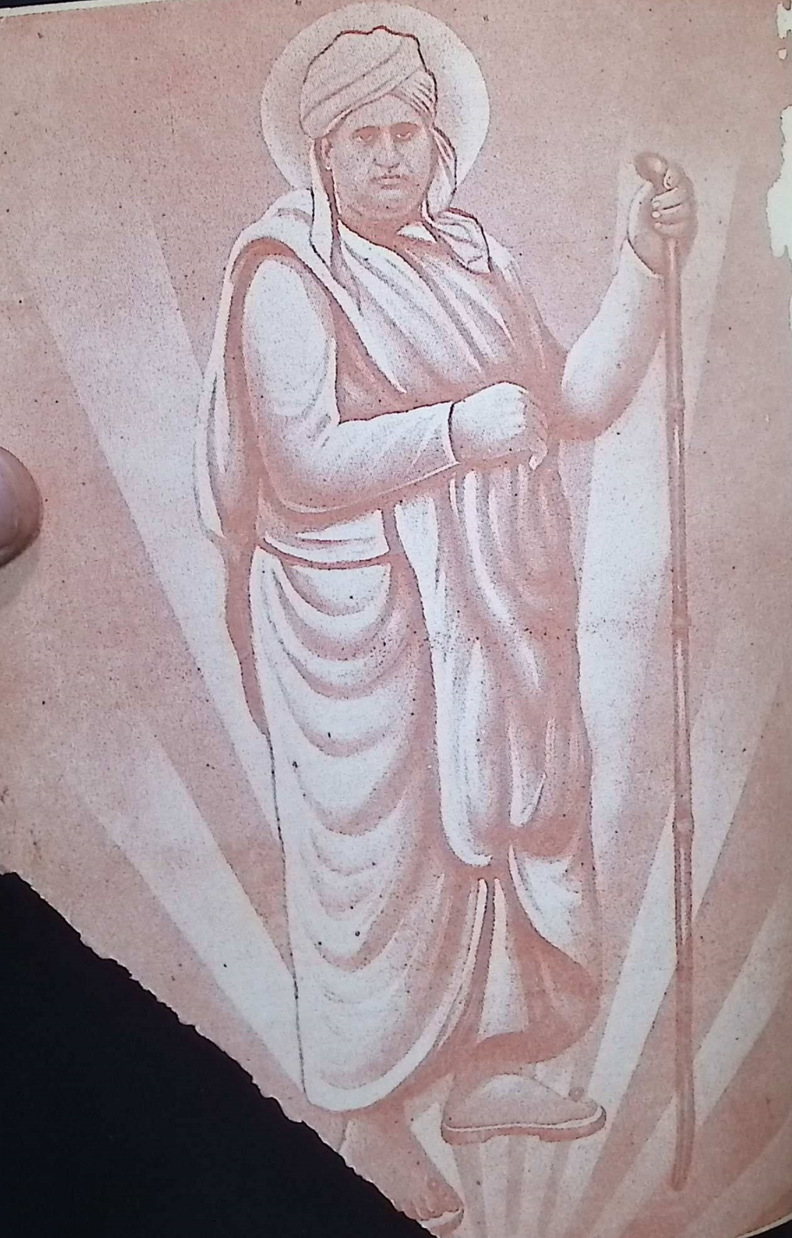

॥ ओ३म् ॥

ज्ञान-ज्योति

वेद-सागर से चुने हुए
मोतियों का अनुपम संग्रह

स्व० स्वामी सत्यानंन्द जी महाराज
व
पं० शिवदयालु जी आर्य
तथा
अन्य विद्वानों की लेखनी के भाष्य सहित

जन - ज्ञान - प्रकाशन
नई दिल्ली - ५

जन-ज्ञान (मासिक)
१५६७ हरध्यानसिंह रोड,
नई दिल्ली-५

—संरक्षक—
चौ० प्रतापसिंह जी
—संचालक—
भारतेन्द्रनाथ

सम्पादक—
राकेश रानी

धरती के प्रत्येक मानव के
हृदय-मन्दिर पर "वेद ज्ञान"
की पावन पताका फहराने
के लिए
कृत संकल्प
आर्य जनता का
अपना
प्रतिनिधि प्रकाशन

वार्षिक मूल्य १०)
एक प्रति ८० पैसे
विदेश में १ पौंड

फोन नं० ५६६६३९

इस अंक का मूल्य ३)

संसार में वेद का संदेश फैलाने और वैदिक साहित्य प्रकाशन के लिए

१. **जन-ज्ञान (मासिक) के सदस्य बनें।**

वार्षिक मूल्य : १०) आजीवन १५१)

नमूना पत्र लिखकर बिना मूल्य मँगाएँ

२. वैदिक साहित्य व अंग्रेजी के ग्रन्थ प्रकाशन हेतु व ईसाइयत के प्रवाह को रोकने के लिए उदारतापूर्वक सहयोग दीजिए।

संचालक :

जन-ज्ञान [मासिक]

१५६७, हरध्यान सिंह मार्ग, करोल बाग, नई दिल्ली-५

संपादकीय

मृत्यु नहीं जीवन चाहिए !

मृत्यु कौन चाहता है और वह कौन है जिसे जीवन की चाह नहीं, खोजेंगे आप कोई ऐसा व्यक्ति जो मरने की इच्छा रखता हो ?

हाँ रखते है मृत्यु की इच्छा, जो हीन भावना की पराकाष्ठा से ग्रस्त हों, मन-मस्तिष्क से निराश व्यक्ति आत्म-हत्या की ओर प्रवृत्त होते हैं ? शास्त्र ऐसी आत्म-हत्या की कठोर शब्दों में भर्त्सना करते हैं ।

आत्म-हनन पाप है, अपने को मिटाना अपराध है । यह सभी मानते हैं किन्तु आज क्या हो रहा है । हम जा कहाँ रहे हैं, समय का प्रवाह हमें कहां ले जा रहा है, ठहर कर देखिए तो सही, क्या हम सब मृत्यु की ओर नहीं जा रहे ?

'मैं' सब कुछ जानता हूँ, यदि नहीं जानता तो अपने को नहीं जानता । मेरे पास सब कार्यों के लिए समय है, केवल अपने ही लिए नहीं है । हम प्रभु का नाम लेते हैं उसके गीत भी गाते हैं पर कभी मिलते हैं उससे ? बैठे हैं कभी उसके पास ?

उलझिए नहीं, आज आपको मृत्यु को मार्ग से हटा जीवन के मार्ग पर चलने का निमंत्रण देते हुए हम प्रभु का यह अमर संगीत 'ज्ञान-ज्योति' भेंट कर रहे है । इसे आप पढ़िए, पढ़कर आप अनुभव करेंगे कि आपने अपना मार्ग बदलना है ।

हम संसार के मनुष्यों को हंसने की,आनन्द, ज्ञान, शाँति और प्यार की राह बताना चाहते हैं । इस मार्ग का निर्देशन स्वयं प्रभु ने किया था आदि सृष्टि में, और जब सब इसे भूल चुके थे तब हमारे गुरुदेव दयानन्द ने मनुष्य-मात्र को जगा-जगा कर यह मार्ग बताया था ।

वेद-मार्ग 'धर्म-मार्ग' है । यह शांति का स्रोत और जीवन का संगीत है । यह तथ्य हमें समझना और सभी को समझाना है । प्रभु कृपा करें कि इस लघु-प्रयास से आपका मन-मन्दिर पवित्र हो । वहाँ ज्ञान-दीप जले, अंधकार भागे और धर्म-अधर्म के युद्ध में धर्म विजयी हो ।

आत्म दर्शन, चिन्तन और जीवन-मार्ग पर चलने का संकल्प हो श्रावणी का संदेश है ।

—राकेश रानी

"जन ज्ञान"

प्रसार में सुविधाएं

४ सितम्बर तक अधिक-से-अधिक सदस्य बनाएँ—

हमारी इच्छा है कि श्रावणी वेद-प्रचार सप्ताह तक हमारे दुगने सदस्य हो जाएं। इसके लिए निम्न सुविधाओं की घोषणा की जाती है—(यह केवल ४ सितम्बर १९७० तक ही रहेंगी)।

१. आजीवन सदस्यता शुल्क १०१) होगा। कृपया आजीवन सदस्य बनें।

२. आप अपना २ वर्ष का शुल्क एक साथ १६) भेज सकते हैं।

३. आप किन्हीं भी दो नये सदस्यों का शुल्क एक साथ केवल १६) भेज सकते हैं।

४. आप एक अपना और एक नये सदस्य का शुल्क १६) भेज सकते हैं।

५. कम से कम ५ नये सदस्यों का शुल्क आप एक साथ ३५) भेजकर नये सदस्य बना सकते हैं। ५ से अधिक जितने भी चाहें आप नये सदस्यों का धन ७) प्रति सदस्य के हिसाब से भेज सकते हैं, किन्तु धन एक साथ आना आवश्यक है।

मेरी अपने सभी सदस्य भाई-बहनों से करबद्ध प्रार्थना है कि वे आगे बढ़ने के लिए अपनी बहन को सहयोग दें। मेरे पास आपके सहयोग और प्रभु के आशीर्वाद के अतिरिक्त और कुछ भी तो नहीं है।

इच्छा है जन-ज्ञान १० हजार छपे। इस इच्छा की पूर्ति के लिए सहयोग माँग रही हूँ।

क्या आप मुझे निराश करेंगे ?

आपकी

बहन

—राकेश रानी

आमुख

—स्व० पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय

"ज्ञान की ज्योति"

अमावस्या की चन्द्रिका रहित अंधेरी रात के पश्चात् जब सूर्य निकलता है तो प्राणिमात्र नये जीवन से अनुप्राणित हो उठता है। पशु पक्षी बड़े हर्ष से अपने-अपने कार्य में लग जाते हैं। मनुष्य न केवल प्राकृतिक सौंदर्य का आनन्द लेता है अपितु अपने जीवन की समस्त क्रियाओं के करने में तत्पर हो जाता है। अन्धकार और प्रकाश में यही भेद है। अन्धकार अकर्मण्यता है और प्रकाश जीवन है।

जैसे सूर्योदय से शरीर-जीवन में प्रेरणा मिली है इसी प्रकार जब वेद रूपी सूर्य का प्रकाश ऋषियों की आत्मा में पड़ा होगा उस समय ऋषियों ने जीवन के महान् तत्त्वों की खोज करके मनुष्य जाति को ऊँचा उठाने का प्रयास किया होगा। वैदिक साहित्य इन तत्त्व-रत्नों से भरा पड़ा है।

ऋग्वेद मण्डल १, सूक्त ५० के १३ वे मन्त्र में लिखा है:—

उदगादयमादित्यो विश्वेन सहसा सह।
द्विषन्तं मह्यं रन्धयन् मो अहं द्विषते रधम्।

देखो सूर्य निकला विश्वव्यापी प्रेरणा और प्रकाश के साथ। मुझ से द्वेष करने वाली शक्तियाँ नष्ट हो गईं। वह मेरा नाश न कर सकीं।

सूर्य मित्र है, अन्धकार शत्रु है। ज्ञान मित्र है, अज्ञान शत्रु है। वेद ज्ञान है। उससे मनुष्य का कल्याण होता है। इसलिये वेद पढ़ना चाहिए।

वैदिक प्रेरणाओं में सबसे महत्वपूर्ण है सच्चाई के लिए व्रत करना। यजुर्वेद के १ ले अध्याय के ५वें मन्त्र में प्रार्थना की गई है।

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्।
इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि। (यजुर्वेद १-५)

हे ईश्वर ! मैं व्रत करता हूँ कि झूठ को छोड़कर सच की खोज करूंगा। प्रभो ! मेरी सहायता कीजिये।

संसार में अनेक प्रकार के व्रत पाये जाते हैं। कोई एक दिन उपवास करता है कोई एक मास। कोई इससे भी अधिक। परन्तु यह व्रत नहीं हैं। खाना न खाने का नाम व्रत नहीं। व्रत एक मानसिक संकल्प का नाम है। ऐसा संकल्प कि असत्य का त्याग करने और सत्य को ग्रहण करने के लिये सर्वथा उद्यत रहे। वेद की यही आज्ञा है और 'आर्य समाज' के ४ थे नियम में इसी व्रत को दुहराया गया है। इस एक व्रत के प्रयास में अन्य सब छोटे बड़े अच्छे काम आ जाते हैं। 'नहि सत्यात् परोधर्मः' अर्थात् सांच से बढ़कर कोई पुण्य नहीं और यह बात ठीक है तो झूठ से बढ़कर कर कोई बुरी चीज नहीं। इसलिये वेद मंत्र का मुख्यतम उपदेश यह है कि सत्य को खोजो, सत्य को बोलो और सत्य-निष्ठ होकर जीवन व्यतीत करो।

वैदिक साहित्य में उपदेश है कि मनुष्य चार चीजों को ग्रहण करे और और चार को छोड़ दे। ग्रहण करने की चार चीजें यह हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। और छोड़ने की चार चीजें हैं-काम, क्रोध, लोभ और मोह। पहले चार गुण मनुष्य के मित्र हैं और पिछले चार अवगुण मनुष्य के शत्रु हैं।

धर्म क्या है ? वेद कहता है :—

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देव।
भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाँस स्तनूभि-
र्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥ (यजु० २५-२१)

हे यज्ञरूपी पुण्यकर्मों की रक्षा करने वाले विद्वानो ! हम कानों से भद्र सुनें। आँखों से भद्र देखें। सुदृढ़ अगों के द्वारा शरीर को पुष्ट करते हुए हम लोग दिव्यगुण सम्पन्न आयु का उपभोग करें।

संसार भद्र भी है और अभद्र भी। यों तो जगत् की सभी चीजें भद्र हैं, क्योंकि वे हमारे हित के लिये दी गई हैं। आंख हमारे भले के लिये हैं। क्योंकि इससे देखते हैं। सूर्य आंख की सहायता के लिये है। सूर्य न हो तो आंख देख नहीं

सकती। अंधापन अभद्र है। समाखापन भद्र है। आँखें न हों तो गुलाब के फूल का सौंदर्य हम को आनन्दित नहीं कर सकता। इसी प्रकार सब चीजों पर विचार कीजिये। लेकिन जब मनुष्य अज्ञानवश पशु बन जाता है तो सारा जगत् उसके लिए अभद्र हो जाता है। वेद इसीलिये पढ़ा जाता है कि वेद के ज्ञान से हम पशु न बनें। देव बनें। पशुओं की नीच प्रवृत्तियों से अपने को रोकना और देव बनने की कोशिश करना ही धर्म है। धर्मात्मा वह नहीं है जो 'धर्म' 'धर्म' चिल्लाता है। जैसे कि भारत की गलियों में सूर्य ग्रहण पड़ने पर मेहतर चिल्लाया करते हैं 'धर्म करो' 'धर्म करो'! न सूर्य को आपत्ति से बचाने के लिये गंगा में डुबकी लगाना धर्म है। पग-पग पर मनुष्य में पशुओं की सी प्रवृत्तियाँ बढ़ने का डर रहता है। इन प्रवृत्तियों को सजग होकर रोकना ही धर्म है। शरीर के अंगों को गांजा पीकर या निरर्थक उपवास रखकर सुखा देना धर्म नहीं है। प्रभु ने शरीर के अंग सुखा डालने के लिए नहीं बनाये। सुदृढ़ करने के लिये बनाये हैं। कान हों या आँखें, हाथ हों या पैर—सभी बलवान् होने चाहिए। और जब अंग सुदृढ़ हो जायें तो इनसे ऐसे काम करना कि हम 'देव' बन जायें। यही धर्म है। यही भद्र है। यदि अज्ञान या आलस्य के वशीभूत होकर हम दैवी शक्तियों का विकास नहीं कर सकते तो यही अभद्र है। यही अधर्म है।

धर्म के पश्चात् दूसरा नम्बर 'अर्थ' है। उस सब सामग्री को जुटाना जिससे धर्म में प्रवृत्ति हो और अधर्म से बचें इसी को 'अर्थ' कहते हैं। वेद में अर्थ का नाम 'रयि' है। साधारण भाषा में इसी को 'धन' या 'दौलत' कहते हैं। सच्चा धन या असली 'दौलत' क्या है! वेद कहता है:—

अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवे दिवे।
यशसं वीरवत्तमम्। (ऋग्वेद १।१।३)

धन को ईश्वर की सहायता से कमाओ। यह 'अर्थ' की पहली शर्त है। चोर और डाकुओं की सहायता से भी धन कमाया जा सकता है। जुआ खेल कर भी धन कमा सकते हैं। परन्तु यह 'अर्थ' नहीं 'अनर्थ' है। भोजन नहीं, विष है, विष भी खाया जाता है, और भोजन भी खाया जाता है। परन्तु विष के खाने से हम धर्म करने के समर्थ नहीं होते। इसलिये 'विष' भोजन नहीं। जो 'धन' बुरे काम करके कमाया जाता है वह 'धन' नहीं है। धन

शब्द 'धा' धातु से बना है, जिससे हमारा बास्तविक हित न हो वह 'धन' नहीं अधन या कुधन है। अंग्रेजी में इसको 'वेल्थ' (Wealth) कहते हैं। 'वैल्थ' शब्द 'वील' (Weal) से बना है। 'वील' का अर्थ है 'भद्र'। जिससे मनुष्य के 'वील' अर्थात् 'भद्र' में उन्नति नहीं होती वह 'वील' या 'वैल्थ' नहीं है। रुपया, पैसा, मकान, जायदाद, राज यह सब 'अर्थ' भी हैं और 'अनर्थ' भी। यदि उन से धर्म या वील (Weal) बनता है तब यह अर्थ या वैल्थ हैं। अन्यथा अनर्थ और अभिशाप (Curse) हैं। ऋग्वेद के ऊपरी मन्त्र में अर्थ के तीन लक्षण दिये हैं :—

(१) **दिवे दिवे पोषम्**—दिन प्रतिदिन जिससे हमारी पुष्टि हो। जिस भोजन से शरीर कमजोर हो जाये वह भोजन नहीं, जिस धन से मनुष्य अपने को निर्बल और भयभीत समझने लगे वह धन या अर्थ नहीं।

(२) **यशसं**—अर्थात् यश की वृद्धि करने वाला हो। धनाढ्य जुआरी, धनाढ्य कंजूस, धनाढ्य जालिम, धनाढ्य घमण्डी, धनाढ्य लोलुप या विषयी, यह सब यश के भागी नहीं होते। जो रुपया मालिक में पाशवी (जंगली) प्रवृत्तियों को उत्पन्न करता है और दूसरों को बिगाड़ता है वह 'रयि' या 'अर्थ' नहीं है। क्योंकि यह यश का दाता नहीं है। 'सम्पत्ति' का नाम है 'यशोदा' अर्थात् यश को देने वाली। जैसे फूल में सुगन्धि होती है उसी प्रकार सम्पत्ति-शाली पुरुष में यश होता है, सुगन्धि फूल को फूल बनाती है और सैकड़ों नाकों में जाकर उनको आनन्दित करती है। यश मनुष्य को स्वयं आनन्द देता है और दूसरों को आनन्दित करता है। जो धन दूसरों को कष्ट दे वह 'धन' नहीं अनर्थ है। इसलिए त्याज्य है।

(३) तीसरा **वीरवत्तमम्**—अर्थात् धन वीरता का साधन हो। जिस धन से मनुष्य निर्बल हो जाये वह तात्त्विक रूप से धन नहीं। प्राय: देखा गया है कि धनवान् मनुष्य निर्धन की अपेक्षा शारीरिक बल में, मानसिक उत्साह में और आध्यात्मिक प्रेरणाओं में निर्बल होता है। निर्धन जातियाँ धन वाली जातियों को कमजोर देखकर उन पर आक्रमण करतीं और उनको जीत लेती हैं। यह यथार्थ में धन नहीं था। जिस धन में उपर्युक्त तीन गुण नहीं वह वेद की भाषा में अर्थ नहीं।

धर्म और अर्थ के पश्चात् तीसरा नम्बर 'काम' का है। मनुष्य का मन कामनाओं का पुतला है। अनेक प्रकार की अच्छी और बुरी इच्छायें मन में

उठा करतीं हैं। कुछ तो धर्म और अर्थ के अनुकूल होती हैं। कुछ प्रतिकूल। कुछ इच्छाओं की प्रेरणा मनुष्य को धर्मात्मा और यशस्वी बनाती है, और कुछ की पापी और अधम। जो 'काम' अर्थात् इच्छायें धर्म और अर्थ की अनुगामिनी होती हैं वे मनुष्य के कल्याण का साधन होती हैं। यजुर्वेद में लिखा है :—

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥

(यजुर्वेद ३४–१)

कि हमारा मन जो जागते में तथा स्वप्न में अनेक प्रकार की शुभ और अशुभ कामनाओं की पूर्ति के लिए दूर-दूर भटकता रहता है वह मन "शिव-संकल्प" अर्थात् ऐसी कामनाओं वाला हो जो धर्म और अर्थ का अनुसरण करके चौथे पदार्थ अर्थात् मोक्ष को देने वाली हो सकें। वेद मंत्र में 'मन' को ज्योतिषां ज्योति:' अर्थात् प्रकाशों का प्रकाश कहा है। मन अंधेरा है तो संसार अंधेरा है। मन में रोशनी है तो संसार रोशन है। क्योंकि 'मन' ही तीसरे बड़े पदार्थ अर्थात् काम का साधक है। मनुष्य की कामनाओं को देखकर ही आप जान सकते हैं कि वह सभ्यता की सीढ़ी के किस डण्डे पर है और वह ऊपर जा रहा है या नीचे गिर रहा है। इसी के आगे एक मन्त्र में कहा है—

यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिव-संकल्पमस्तु। (यजु० ३४-३)

अर्थात् बिना मन के तो कोई काम किया ही नहीं जा सकता। जब मन हर काम करने के लिये इतना आवश्यक है तो मन को सबसे अधिक शुद्ध और पवित्र होना चाहिए। मैला शरीर, मैली इन्द्रियाँ हानिकारक हैं। परन्तु मैला मन सबसे अधिक हानिकारक है। इसी मन की सहायता से डाकू डाका डालता, चोर चोरी करता, व्यभिचारी व्यभिचार करता, शराबी शराब पीता और कसाई पशुओं को मारता है। इसी मन से विद्यार्थी विद्या पढ़ता, याज्ञिक यज्ञ करता, दानी दान देता, परोपकारी परोपकार करता, ईश्वर भक्त ईश्वर की उपासना करता है। चोर की धन की इच्छा भी एक कामना है। योगी की ईश्वर प्राप्ति की इच्छा भी एक कामना है। परन्तु कामना कामना में भेद

है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के पुण्य-चतुष्टय में 'काम' एक पवित्र वस्तु है। वह धर्म और अर्थ की अनुगामिनी है और मोक्ष तक पहुँचाने वाली है।

इस पुण्य-चतुष्टय का चौथा चरण है 'मोक्ष'। अर्थात् छुटकारा। छुटकारा किससे? मनुष्य के हाथ में है ही क्या जिसको वह छोड़ सके। मैं इसी संसार का एक अंग हूँ। जैसे कि अन्य सब हैं। हम संसार को छोड़कर कहाँ जा सकते हैं? लोग दुनिया से तंग होकर दुनिया से भागते हैं। दुनिया परछाईं की तरह उनके साथ दौड़ती है। महात्मा बुद्ध ने धम्मपद में कहा है कि गाड़ी का बैल जब दौड़ता है तो समझता है कि यदि मैं तेज दौड़ूंगा तो गाड़ी के बोझ से छुटकारा मिल जायेगा परन्तु जितनी तेजी से वह दौड़ता है उतनी ही तेजी से गाड़ी उसके पीछे दौड़ती है क्योंकि बैल का गाड़ी से बन्धन तो वैसा ही विद्यमान है। वह तो टूटा नहीं। जब तक बन्धन नहीं टूटता बैल का पीछा भी नहीं छूटता। वेद कहता है:—

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान् मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्॥

(ऋग्वेद ७। ५९। १२)

अर्थ:—हम तीनों लोकों के पिता परमात्मा की उपासना करते हैं जो सुगन्ध आदि सभी प्रकार के आनन्दों का दाता और हमारी आध्यात्मिक शक्ति को बढ़ाने वाला है। परमेश्वर की इस उपासना से मैं मृत्यु से इस प्रकार छूट जाऊं जैसे पका हुआ फल डण्ठल से अलग हो जाता है। कच्चे फल को तोड़ने में फल से भी रस बहने लगता है और डण्ठल से भी। अधिक कच्चे फल को तोड़ने में कठिनाई भी बहुत होती है, पका फल स्वयं ही गिर पड़ता है। और उसके गिरने से न वृक्ष को हानि पहुँचती है न फल को। फल का फलत्व इसी में है कि फल पक जाये और उससे अधिक-से-अधिक उपकार हो सके।

इस मंत्र में 'अम्बक' का अर्थ है 'पिता'। जैसे 'अम्बा' का अर्थ है माता! 'त्र्यम्बक' का अर्थ हुआ तीनों लोकों का पिता, अथवा मनुष्य की अधम, मध्यम और उत्तम अवस्थाओं में उसका पालन और कल्याण करने वाला। परमेश्वर की उपासना हर दशा में मनुष्य की रक्षा करती है। ईश्वर का उपासक पके फल के समान है। फल का जन्म वृक्ष पर होता है। उसका पालन भी वृक्ष

पर ही होता है। वृक्ष से फल अपना रूप, अपना रस, अपना सब कुछ लेता है और शनैः शनैः पूर्णतया विकसित हो जाता है। पके फल को वृक्ष की फिर आवश्यकता नहीं रहती। उसे वृक्ष से जो कुछ लेना था वह ले चुका। अब कुछ लेने को शेष नहीं है। अतएव वह स्वयं ही गिर पड़ता है और वृक्ष को आँसू बहाने की आवश्यकता नहीं होती। मनुष्य भी इसी संसार रूपी वृक्ष का एक फल है, इसी में उत्पन्न होता है। इसी में फलता है। इसी में इसका विकास होता है। कच्चे फल को न तो वृक्ष छोड़ना चाहता है, न फल वृक्ष को छोड़ना चाहता है। अविकसित और कच्चा मनुष्य न तो संसार को छोड़ना चाहता है और न संसार उसको छोड़ना चाहता है। घर, गृहस्थी के झंझटों से तंग आकर लोग घर को छोड़कर वनवासी बन जाते हैं। वह समझते हैं कि संसार को उन्होंने त्याग दिया। परन्तु यह उनका भ्रम मात्र है। न उन्होंने संसार को छोड़ा, न संसार ने उन्हें छोड़ा। जब वह घर से निकल कर जंगल को भागे तो जंगल में भी घर उनका पीछा करता हुआ आपहुँचा। वह बाना बदल सकते थे। श्वेताम्बर से काषायाम्बर हो सकते थे। जटायें बढ़ा सकते थे। परन्तु मन तो कच्चे फल के समान संसार सें बंधा हुआ था। अतः उनको छुटकारा न मिल सका। वेद मन्त्र कहता है :—'बन्धनात् मृत्योः मुक्षीय' "हे प्रभो ! मैं मृत्यु के बन्धन से छूट जाऊं।" 'मा अमृतात्'। अमृत से मैं न छूटूं। जो अमृत से छूटा है वह मुक्त नहीं है। क्योंकि वह मौत के बन्धन में है। मौत उसके सिर पर मण्डलाती है। वह मौत से भयभीत है। वन में जाकर उसने क्या छोड़ा ? शरीर की भावनायें वही रहीं ? मौत का डर वैसा ही रहा, तृष्णा वैसी की वैसी ही रही। विषयों की तरंगें मन को गंदा करती रहीं। संन्यासियों ने समझा कि हम भगवे कपड़े पहनकर घर के बन्धनों से छूट जायेंगे। बन्धनों ने कहा कि हम गाड़ी के बैल के समान तुमको जकड़े हुए हैं। देखें तुम कहाँ जाते हो। पके फल के समान वही मनुष्य 'मोक्ष' की प्राप्ति कर सकता है जिसने धर्म, अर्थ और काम तीनों की सिद्धि की हो। इसकी सिद्धि संसार रूपी वृक्ष के ऊपर ही हो सकती है। उससे अलग होकर नहीं। अलग होना तो न हितकर है न संभव। जो मनुष्य धर्म के नियमों का पालन करता है उसको स्वयं ही संसार की दुष्ट और अनिष्ट भावनाओं से उपरति हो जाती है। वह बुरी बातों तथा बुरे गुणों से घृणा करने लगता है। जो 'अर्थ' के तत्त्व को समझता है वह अनर्थ से बचा रहता है। उसमें वह

दुष्ट गुण नहीं आने पाते जो अनर्थ से अर्थ के उपार्जन करने वालों में आते हैं। उसकी कामनायें शुभ होती हैं। उनका मन 'शिवसंकल्प' होता हैं। उनको मृत्यु का भय नहीं रहता। वेद मन्त्र में कहा गया है कि मैं मृत्यु से छूटूं। अमृत से न छूटूं। संसारी मनुष्य अमृत से मुक्त है अतः मृत्यु से बद्ध है। जो अवगुणों में फंसा है वह गुणों से दूर है। जो गुणों से युक्त है वह अवगुणों से दूर है।

हमने आरम्भ में कहा था कि चार चीजें ग्रहण करने की हैं और चार चीजें छोड़ने की। हमने संकेत रूप से यहाँ वह वेद मंत्र दे दिये जिनमें इन 'चार पदार्थों' की श्रेष्ठता का वर्णन है। चार छोड़ने की चीजें हैं काम, क्रोध, लोभ, मोह, इस प्रसंग में 'काम' का वही अर्थ नहीं है जो चतुष्क में था। मन में उठने वाली बुरी वासनाओं का नाम 'काम' है। मनुष्य नर होगा या नारी। नर के मन में नारी के प्रति और नारी के मन में नर के प्रति जो अनुचित राग है उसी को 'काम' कहते हैं। नर और नारी का सम्बन्ध एक प्रकार से बड़ा पवित्र सम्बन्ध है, जैसे किसान भूमि में बीज डालता है कि वृक्ष पर फल लग सकें इसी प्रकार नर और नारी का सतोगुणी सम्बन्ध मनुष्य की उत्पत्ति का साधन बनता है। परन्तु यही भावना जब दूषित हो जाती है तो नर-नारी के समुचित सम्बन्ध के स्थान में कुत्सित व्यवहार को जन्म देती है और इससे घर-के-घर तबाह हो जाते हैं। कामवासना मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है। व्यभिचारी मनुष्य अपने लिए भी अभिशाप है और संसार के लिए भी। जिस व्यक्ति के साथ उसका सम्बन्ध होता है वह नष्ट हो जाता है। उससे मनुष्यों की उत्पत्ति नहीं होती अपितु नरक होता है।

संतानोत्पत्ति के प्रसंग में वेद में कहा है:—

दस मासाञ्छशयानः कुमारो अधिमातरि।
निरैतु जीवो अक्षतो जीवो जीवन्त्या अधि॥

(ऋग्वेद ५।७८।९)

माता के उदर में बच्चा १० मास रह कर और माता के जीवन से अक्षत अर्थात् पूर्ण जीवन ग्रहण करके बाहर आता है। जीवित माता से जीवित पुत्र उत्पन्न होता है। पूर्णतया विकसित माता ही विकसित पुत्र को जन्म दे सकती है। इसलिये माता के लिये 'जीवन्त्या' विशेषण दिया है। कामी

पिता या कामातुरा माता से धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष को प्राप्त करने वाली सन्तान नहीं उत्पन्न हो सकती। अतः 'काम' को पाप-चतुष्टय में सबसे पहले गिनाया है। लौकिक भाषा में बदचलन उसी पुरुष या स्त्री को कहते हैं जिसमें 'काम' की अनुचित प्रवृत्ति हो क्योंकि कामी पुरुष अन्धा है।

कामान्धो नैव पश्यति।

कामी पुरुष न अपना भला देख सकता है न पराया। अतः त्याज्य अवगुणों में 'काम' का नम्बर पहला है।

मनुष्य का दूसरा शत्रु 'क्रोध' है। क्रोध मस्तिष्क का एक विकार है। जैसे घोड़ा बिगड़ जाने पर सवार की जो दशा होती है वही दशा क्रोधी मनुष्य की हो जाती है। उसका खून उबलता है। बुद्धि मारी जाती है। आँखों के सामने अंधेरा छा जाता है। ऐसी दशा में मनुष्य सभी अनर्थ कर सकता है। मातायें बच्चों को मार डालती हैं। बच्चे मां-बाप को मार डालते हैं। शत्रुओं के ऊपर अत्याचार तो एक साधारण सी बात है।

तीसरा शत्रु 'लोभ' है। धन के लिये अनुचित और असीमित प्रेम को 'लोभ' कहते हैं। लोभी मनुष्य धन चाहता है परन्तु धन का उचित उपयोग नहीं कर सकता। धन के लोभ में स्त्रियां सतीत्व छोड़ देती हैं। लोग अपने मां बाप की हत्या कर देते हैं। चोरी, डाका, जुआ, रिश्वत, मकर, फरेब यह सब लोभ के कारण होते है।

चौथा शत्रु है 'मोह'। किसी वस्तु के लिये अनुचित प्रेम होना 'मोह है। संस्कृत में 'मुह' धातु का अर्थ है मूर्छा या बेहोशी होना। मोह भी बुद्धि को विकृत कर देता है।

धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष रूपी पुण्य चतुष्टय में और काम-क्रोध-लोभ-मोह रूपी पाप-चतुष्टय में परस्पर ऐसा ही वैर है जैसा कि (प्रकाश और अंधकार में) ये एक दूसरे के विरोधी हैं और एक-दूसरे के नाश करने में तत्पर रहते हैं। यजुर्वेद के ४० वें अध्याय के १ ले मन्त्र में उपदेश दिया है कि :—-

मा गृधः कस्यस्विद् धनम्।

लालच मत करो। धन किसका है? अर्थात् किसी एक का धन है ही नहीं। जो लालच करके धन कमाता है उसके पास भी धन नहीं रहता। बड़े बड़े धन वालों को भी अन्त में धन छोड़ना पड़ता है। जो धन को नहीं छोड़ना चाहते उनको धन छोड़कर भाग जाता है, इसलिये वेद में कहा है—-

तेन त्यक्तेन भुंजीथाः। (यजु० ४०-१)

(त्यक्तेन सता तेन जगता)। जगत् की चीजों का इस प्रकार उपभोग करो मानो तुम उसको छोड़ रहे हो और उससे चिमटना नहीं चाहते। मुसाफिर जिस सड़क पर चलता है उससे चिमटता नहीं। उसे छोड़ता है। सड़क के एक भाग को छोड़कर आगे बढ़ जाना ही यात्रा है। जो एक स्थान पर ही रहना चाहता है वह यात्री नहीं। धर्म का जीवन एक यात्रा है। आगे बढ़ने का नाम यात्रा है। और 'मोक्ष' उसका अन्तिम ध्येय है।

चार पदारथ छाँड़ि के चार पदारथ लेउ।
मर्त्यलोक में देव बन जन्म सफल कर लेउ॥

वेद पढ़ो, वेद को समझो और वेद के अनुकूल आचरण करो। तुम्हारा भला होगा।

आज श्रावणी का पवित्र दिन है—

सभी प्रण करें कि—

१. मैं प्रतिदिन वैदिक ग्रन्थों का स्वाध्याय करूंगा।
२. वेद-प्रचार में प्रतिमास सुविधानुसार अपनी आय से दान दूंगा।
३. ईर्ष्या, द्वेष और आपस की फूट से दूर रहकर महर्षि दयानन्द के महान् संकल्प की पूर्ति के लिए जो कुछ भी संभव होगा करता रहूंगा।

श्रावणी का यही संदेश है

वेदों के सम्बन्ध में

महर्षि दयानन्द सरस्वती

और

पाश्चात्य विद्वान

लेखक :

श्री शिव पूजनसिंह एम० ए०

महर्षि दयानन्द सरस्वती का दृष्टिकोण :

जो २ ग्रन्थ सृष्टि की आदि से लेके आज तक पक्षपात और राग द्वेष रहित सत्य धर्म युक्त, सब लोगों के प्रिय प्राचीन विद्वान् आर्य लोगों ने (स्वत: प्रमाण) अर्थात् अपने आप ही प्रमाण, (और) परत: प्रमाण, अर्थात् वेद और प्रत्यक्षानुमानादि से प्रमाण भूत हैं...... ..उनको आगे कहते हैं।

"........ईश्वर की कही हुई जो चारों मन्त्र संहिता हैं, वे ही स्वयं प्रमाण होने योग्य हैं अन्य नहीं। परन्तु उससे भिन्न भी जो २ जीवों के रचे हुए ग्रन्थ हैं वे भी वेदों के अनुकूल होने से परत: प्रमाण के योग्य हैं।"

—ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका

वेद निर्भ्रम और स्वत: प्रमाण क्यों हैं ?

क्योंकि वेद ईश्वर के रचे हुए हैं और ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वविद्या युक्त, तथा सर्वशक्ति वाला है, इस कारण से उसका कथन ही निर्भ्रम और प्रमाण के योग्य है, और जीवों के बनाये ग्रन्थ स्वत: प्रमाण के योग्य नहीं होते क्योंकि वे (जीव) सर्व विद्या युक्त और सर्व शक्तिमान नहीं होते। इसलिए उनका कहना स्वत: प्रमाण के योग्य नहीं हो सकता। ऊपर के कथन से यह बात सिद्ध होती है कि वेद विषय में जहाँ कहीं प्रमाण की आवश्यकता हो वहाँ सूर्य और दीपक के समान वेदों का ही प्रमाण लेना उचित है, अर्थात् जैसे सूर्य और दीपक अपने ही प्रकाश से प्रकाशमान होके सब क्रिया वाले द्रव्यों को प्रकाशित कर देते हैं, वैसे ही वेद भी अपने प्रकाश से प्रकाशित होके अन्य ग्रन्थों को भी प्रकाशित करते हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि जो-जो ग्रन्थ वेदों से विरुद्ध हैं वे कभी प्रमाण वा स्वीकार करने के योग्य नहीं होते। और वेदों का (यदि) अन्य ग्रन्थों के साथ विरोध भी हो, तब भी अप्रमाण के योग्य नहीं ठहर सकते, क्योंकि वे तो अपने ही प्रमाण से प्रमाण युक्त हैं। इसी प्रकार ऐतरेय, शतपथ-ब्राह्मणादि ग्रन्थ जो वेदों के अर्थ और इतिहासादि से युक्त बनाये गये हैं, वे भी परत: प्रमाण अर्थात् वेदों के अनुकूल ही होने से प्रमाण कहे जाते हैं और उनके भिन्न ऐतरेय, शतपथ आदि प्राचीन सत्य ग्रन्थ हैं, ये परत: प्रमाण के योग्य हैं।"

—ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका

(२) "मैं उपनिषदों में एक "ईशावास्य" को छोड़ के अन्य उपनिषदों को वेद नहीं मानता, किन्तु अन्य सब उपनिषद् ब्राह्मण ग्रन्थों में हैं, वे ईश्वरोक्त नहीं हैं।"

—भ्रमोच्छेदन

(३) "मैं ब्राह्मण पुस्तकों को भी वेद नहीं मानता" क्योंकि जो ईश्वरोक्त है, वही वेद होता है। जीवोक्त को वेद नहीं कहते। जितने ब्राह्मण ग्रन्थ हैं, वे सब ऋषि मुनि-प्रणीत और संहिता ईश्वर प्रणीत हैं। जैसा ईश्वर के सर्वज्ञ होने से तदुक्त निर्भ्रान्ति सत्य और मत के साथ स्वीकार करने योग्य होता है, जीवोक्त नहीं हो सकता क्योंकि वे (अर्थात्-जीव) सर्वज्ञ नहीं। परन्तु जो वेदानुकूल ब्राह्मण ग्रन्थ हैं, उनको मैं मानता और विरुद्धार्थों को नहीं मानता हूँ। वेद स्वतः प्रमाण और ब्राह्मण परतः प्रमाण हैं, इससे जैसे वेद विरुद्ध ब्राह्मण ग्रन्थों का त्याग होता है, वैसे ब्राह्मणों ग्रन्थों से विरुद्धार्थ होने पर भी वेदों का परित्याग कभी नहीं हो सकता, क्योंकि वेद सर्वथा सबको माननीय हैं।"

—भ्रमोच्छेदन

वेद किन का नाम है ?

जो ईश्वरोक्त सत्य विद्याओं से युक्त ऋक् संहितादि चार पुस्तक हैं, जिनसे मनुष्यों को सत्यसत्य का ज्ञान होता है, उनको वेद कहते हैं।

—आर्योद्देश्य रत्नमाला

सृष्टि के आदि में वेदों का ज्ञान किन्हें और कैसे दिया गया ?

"अग्नि, वायु, आदित्य, और अंगिरा, इन चारों मनुष्यों को, जैसे वादित्र को कोई बजावे वा काठ की पुतली को चेष्टा करावे, इसी प्रकार ईश्वर ने उनको निमित्त मान किया था।" **—ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका**

वेदों का श्रुति नाम क्यों है ?

"सृष्टि के आरम्भ से आज पर्यन्त और ब्रह्मादि से लेके हम लोग पर्यन्त जिससे सब सत्य विद्याओं को सुनते आते हैं, इससे वेदों का "श्रुति" नाम पड़ा है, क्योंकि किसी देहधारी ने वेदों के बनाने वाले को साक्षात् कभी नहीं देखा। इस कारण से जाना गया कि 'वेद' निराकार ईश्वर से ही उत्पन्न हुए और उनको सुनते-सुनाते ही आज पयन्त सब लोग चले आते हैं।"

—ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका

वेद कब पुस्तक रूप में आये ?

पाठकगण ! वेदों का नाम "श्रुति" भी है, कारण यह कि आदि सृष्टि

से लेकर अनेक वर्षों पर्यन्त लोग "श्रवण" द्वारा ही इस ज्ञान को ग्रहण करते रहे, और उन लोगों की स्मृति इतनी तीव्र होती थी, कि सम्पूर्ण ज्ञान उन्हें सहज में याद हो जाता था। परन्तु एक समय ऐसा आया कि उनकी स्मृति धीरे-धीरे निर्बल होती गई और वेदों के ज्ञान को संभाल कर सुरक्षित न रख सके। तब ऋषियों ने वेदों को पुस्तक-रूप में परिणित कर दिया। महर्षि दयानन्द ने ता० २५ जुलाई सन् १८७१ ई० को पूना में "इतिहास" विषय पर एक व्याख्यान दिया। उस व्याख्यान में महर्षि ने अपना विचार इस प्रकार प्रकट किया—

"इस प्रकार के मनुष्यों में गुण-कर्मानुरूप व्यवस्था स्वायम्भुव मनु के समय तक पूर्णतया चलती रही। मनु के दस पुत्र थे। स्वायम्भुव मनु का बेटा मरीचि प्रथम क्षत्रिय राजा हुआ, इसके पश्चात् हिमालय के प्रदेश में छः क्षत्रिय राजाओं की परम्परा हुई, अनन्तर इक्ष्वाकु राजा राज्य करने लगा ......।

इक्ष्वाकु, आर्यावर्त का प्रथम राजा हुआ। इक्ष्वाकु की ब्रह्मा से छठी पीढ़ी है। पीढ़ी शब्द का अर्थ "बाप से बेटा" यही न समझें, किन्तु एक अधिकारी से अर्थ दूसरा अधिकारी, ऐसा जानें। पहिला अधिकारी स्वयम्भुव था। इक्ष्वाकु के समय में लोग अक्षर स्याही आदि लिखने की रीति को प्रचार में लाये, ऐसा प्रतीत होता है, क्योंकि इक्ष्वाकु के समय में वेद को बिल्कुल कण्ठस्थ करने की रीति कुछ-कुछ बन्द होने लगी (थी) जिस लिपि में वेद लिखे जाते थे, उसका नाम "देवनागरी" ऐसा है। कारण (यह कि) देव अर्थात् विद्वान् (इनका जो नगर, ऐसे विद्वान्) नागर लोगों ने अक्षर द्वारा अर्थ संकेत उत्पन्न करके ग्रन्थ लिखने का प्रचार प्रथम प्रारम्भ किया।" **—पूना का व्याख्यान**

वेदों का ज्ञान नित्य है

(१) जैसे इस कल्प की सृष्टि में शब्द, अक्षर, अर्थ और सम्बन्ध वेदों में हैं, इस प्रकार से पूर्व कल्प में थे और आगे भी होंगे, क्योंकि ईश्वर की जो विद्या है, सो नित्य एक ही रस बनी रहती है, उनके एक अक्षर का भी विपरीत भाव कभी नहीं होता। सो ऋग्वेद से लेके चारों वेदों की संहिता अब जिस प्रकार की हैं कि इन में शब्द, अर्थ, सम्बन्ध, पद और अक्षरों का जिस क्रम से वर्त्तमान है इसी प्रकार का क्रम सब दिन बना रहता है, क्योंकि ईश्वर का ज्ञान नित्य है, उसकी वृद्धि, क्षय, और विपरीतता कभी नहीं होती, इस कारण से वेदों को नित्य स्वरूप ही मानना चाहिए।"

—ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका

(२) "जब-जब परमेश्वर सृष्टि को रचता है, तब-तब प्रजा के हित के लिए सृष्टि के आदि में सब विद्याओं से युक्त वेदों का भी उपदेश करता है, और जब-जब सृष्टि का प्रलय होता है, तब-तब वेद उसके ज्ञान में सदा बने रहते हैं, इससे उनको सदैव नित्य मानना चाहिए।"

(३) 'जो ईश्वर नित्य और सर्वज्ञ है उसके किए वेद भी नित्य और सर्वज्ञ होने के योग्य है।"

क्या वेदों में इतिहास है ?

'ब्राह्मण पुस्तकों में बहुत से ऋषि-महर्षि और राजादि के इतिहास लिखे हैं, और इतिहास जिसका हो, उसके जन्म के पश्चात् लिखा जाता है। वह ग्रन्थ भी उसके जन्म के पश्चात् होता है। वेदों में किसी का इतिहास नहीं किन्तु विशेष जिस-जिस शब्द से विद्या का बोध होवे, उस-उस शब्द का प्रयोग किया है, किसी मनुष्य की संज्ञा वा विशेष कथा का प्रसंग वेदों में नहीं।"

—**सत्यार्थप्रकाश समु० ७**

प्रत्येक मन्त्र के साथ ऋषि किस लिए लिखा होता है?

"ईश्वर जिस समय आदि सृष्टि में वेदों का प्रकाश कर चुका, तभी से प्राचीन ऋषि लोग वेद मंत्रों के अर्थों का प्रचार करने लगे, फिर उनमें से जिस-जिस मन्त्र का अर्थ जिस-जिस ऋषि ने प्रकाशित किया, उस-उस का नाम उसी-उसी मन्त्र के साथ स्मरण के लिए लिखा गया है, इसी कारण से उनका ऋषि नाम भी हुआ है और जो उन्होंने ईश्वर के ध्यान और अनुग्रह से बड़े-बड़े प्रयत्न के साथ वेद मन्त्रों के अर्थों को यथावत् जानकर सब मनुष्यों के लिए पूर्ण उपकार किया है, इसलिए विद्वान् लोग वेद मन्त्रों के साथ उनका स्मरण रखते हैं।" —**ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका**

"जिस-जिस मन्त्रार्थ का दर्शन जिस ऋषि को हुआ और प्रथम ही जिसके पहिले उस मन्त्र का अर्थ किसी ने प्रकाशित नहीं किया था, किया और दूसरों को पढ़ाया भी, इसलिए अद्यावधि उस-उस मन्त्र के साथ ऋषि का नाम स्मरणार्थ लिखा आता है, जो कोई ऋषियों को मन्त्र कर्त्ता बतलावे, उनको मिथ्यावादी समझें, वे तो मन्त्रों के अर्थ प्रकाशक हैं।"

—**सत्यार्थप्रकाश समु० ७**

ऋषि लोगों को वेदों के अर्थ किसने और कैसे बताए ?

"परमेश्वर ने जनाया और धर्मात्मा योगी महर्षि लोग जब-जब जिस-जिस के अर्थ जानने की इच्छा करके ध्यानावस्थित हो (कर) परमेश्वर के स्वरूप में समाधिस्थ हुए, तब-तब परमात्मा ने सभी इष्ट मन्त्रों के अर्थ जताये। जब बहुतों के आत्माओं में वेदार्थ प्रकाश हुआ, तब ऋषि मुनियों ने इतिहास पूर्वक ग्रन्थ बनाये, उनका नाम "ब्राह्मण" अर्थात् ब्रह्म जो वेद (है) उसका व्याख्यान ग्रन्थ होने से ब्राह्मण नाम हुआ।" —स० प्र० स० ७

ऋषियों ने वेद मन्त्रों का प्रकाश क्यों किया ?

"वेद प्रचार की परम्परा स्थिर रहने के लिए तथा जो लोग वेद शास्त्रादि पढ़ने को कम समथ हैं वे जिससे सुगमता से वेदार्थ जान लेवें, इसलिए निघण्टु और निरुक्त आदि ग्रन्थ भी बना दिये हैं कि जिनके सहाय से सब मनुष्य वेद और वेदांगों को ज्ञानपूर्वक पढ़कर उनके सत्य अर्थों का प्रकाश करें।"

—ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका

मन्त्रों का देवता क्या होता है ?

"जिन-जिन मन्त्रों में जिन-जिन पदार्थों की प्रधानता से स्तुति की है, मन्त्रमय देवता जानने चाहिएं, अर्थात् जिस-जिस मन्त्र का जो अर्थ होता है, वही उसका "देवता" कहा है, सो यह इसलिए है कि जिससे मन्त्रों को देख के उनके अभिप्रायार्थ का यथार्थ ज्ञान हो जाये, इत्यादि प्रयोजन के लिए देवता शब्द को साथ में लिखा जाता है।" —ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका

वेद मंत्रों के स्वरों का ज्ञान और उच्चारण किस प्रकार होता है ?

"ऐसे ही व्याकरणादि शास्त्रों के बोध से उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, एक श्रुति, आदि स्वरों का ज्ञान और उच्चारण, तथा पिगंल सूत्र से छंदों और षड्जादि स्वरों का ज्ञान अवश्य करना चाहिए, जैसे "अग्निमीडे० यहाँ अकार के नीचे अनुदात्त का चिह्न (ग्नि)उदात्त है, इसलिए उस पर चिह्न नहीं लगाया गया है, (मी) के ऊपर स्वरित का चिह्न है, (डे) प्रचय और एकश्रुति स्वर है, यह बात ध्यान में रखना।" —ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका

एक वेद क्यों नहीं ?

(१) "(इसके दो हेतु हैं, एक तो यह है कि) भिन्न-भिन्न विद्या जानने के लिए, अर्थात् जो तीन प्रकार की गान विद्या है (उसके जानने के लिए वेदों का विभाग किया गया है),एक तो यह कि उदात्त षड्जादि स्वरों का उच्चारण द्रुत, अर्थात् शीघ्रवृत्ति में होता है, दूसरी मध्यम वृत्ति जैसा कि यजुर्वेद के स्वरों का उच्चारण ऋग्वेद के मन्त्रों से दूने काल में होता है, तीसरी विलम्बित वृत्ति है, जिसमें प्रथम वृत्ति से तिगुना काल लगता है, जैसा कि सामवेद के स्वरों के उच्चारण व गान में, फिर इन्हीं तीनों वृत्तियों के मिलाने से अथर्ववेद का भी उच्चारण होता है, परन्तु इसका द्रुतवृत्ति में उच्चारण अधिक होता है इसलिए वेदों के चार विभाग हुए हैं।"

—ऋग्वेदभाष्यभूमिका, प्रश्नोत्तर विषय

(२) दूसरा हेतु यह है कि :—

"ऋग्वेद में सब पदार्थों के गुणों का प्रकाश किया है, जिससे उनमें प्रीति बढ़कर उपकार लेने का ज्ञान प्राप्त हो सके, क्योंकि बिना प्रत्यक्ष ज्ञान के संस्कार और प्रवृत्ति का आरम्म नहीं हो सकता और आरम्भ के बिना यह मनुष्य जन्म व्यर्थ ही चला जाता है, इसलिए ऋग्वेद की गणना प्रथम ही की है। तथा यजुर्वेद में क्रिया काण्ड का विधान लिखा है, सो ज्ञान के पश्चात् ही कर्त्ता की प्रवृत्ति यथावत् हो सकती है, क्योंकि जैसा ऋग्वेद में गुणों का कथन किया है, वैसा ही यजुर्वेद में अनेक विद्याओं के ठीक-ठीक विचार करने से संसार में व्यवहारी पदार्थों से उपयोग सिद्ध करना होता है, जिनसे लोगों को नाना प्रकार का सुख मिले। क्योंकि जब तक कोई क्रिया विधिपूर्वक नहीं की जाये, तब तक उसका अच्छी प्रकार भेद नहीं खुल सकता इसलिए जैसा कुछ जानना व कहना, वैसा ही करना भी चाहिए, तभी ज्ञान का फल और ज्ञान की शोभा होती है। तथा यह भी जानना आवश्यक है कि जगत् का उपकार मुख्य करके दो ही प्रकार का होता है, एक आत्मा का और दूसरा शरीर का, अर्थात् विद्यादान से आत्मा और श्रेष्ठ नियमों से उत्तम पदार्थों की प्राप्ति करके शरीर का उपकार होता है, इसलिए ईश्वर ने ऋग्वेदादि का उपदेश किया है कि जिनसे मनुष्य लोग ज्ञान और क्रिया काण्ड को पूर्ण रीति से जान लेवें।"

"तथा सामवेद से ज्ञान और आनन्द की उन्नति और अथर्ववेद से सर्व संशयों की निवृत्ति होती है, इसलिए चार विभाग किये हैं।"

—ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, प्रश्नोत्तर विषय

पहिला ऋक्, फिर यजुः, फिर साम, और फिर अथर्व इस प्रकार से चार वेद क्यों गिने जाते हैं ?

"जब तक गुण और गुणी का ज्ञान मनुष्यों को नहीं होता, तब पर्यन्त उनमें प्रीति से प्रवृत्ति नहीं हो सकती और इसके बिना शुद्ध क्रियादि के अभाव से मनुष्यों को सुख भी नहीं हो सकता था इसलिए वेदों के चार विभाग किए हैं कि जिससे प्रवृत्ति हो सके। क्योंकि जैसे इस गुण-ज्ञान विद्या को जानने से पहिले ऋग्वेद की गणना योग्य है, वैसे ही पदार्थों के गुण-ज्ञान के अनन्तर क्रिया रूप उपकार करके सब जगत् का अच्छी प्रकार से हित सिद्ध हो सके। इस विद्या के जानने के लिए यजुर्वेद की गिनती दूसरी बार की है। ऐसे ही ज्ञान, कर्म और उपासना काण्ड की वृद्धि वा फल कितना और कहाँ तक होना चाहिए, इसका विधान सामवेद में लिखा है, इसलिए उसको तीसरा गिना है। ऐसे ही तीन वेदों में जो-जो विद्या है, उन सबके शेष भाग की पूर्ति, विधान सब विद्याओं की रक्षा और संशय निवृति के लिए अथर्ववेद को चौथा गिना है। सो गुण-ज्ञान क्रिया-विज्ञान, इनकी उन्नति तथा रक्षा को पूर्वापर क्रम से जान लेना ? अर्थात् ज्ञान-काण्ड के लिए ऋग्वेद, क्रियाकाण्ड के लिए यजुर्वेद, इनकी उन्नति के लिए सामवेद और शेष अन्य शिक्षाओं के प्रकाश करने के लिए अथर्ववेद की, प्रथम, दूसरी, तीसरी और चौथी करके संख्या बाँधी है। क्योंकि (ऋच स्तुतौ) (यज्, देवपूजा, संगतिकरणदानेषु) (षोन्तकर्मणि) और (साम सान्व प्रयोगे) (अथर्वतिश्चरतिकर्मा) इन अर्थों के विद्यमान होने से चार वेदों अर्थात् ऋग, यजु, साम और अथर्व की यह चार संज्ञा रखी हैं। तथा अथर्ववेद का प्रकाश ईश्वर ने इसलिए किया है कि जिससे तीनों वेदों की अनेक विद्याओं से सब विघ्नों का निवारण और उनकी गणना अच्छी प्रकार से हो सके।"

—ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, प्रश्नोत्तर विषय

वेदों में जो अष्टक, अध्याय, मण्डल, सूक्त, षट्क, काण्ड वर्ग दशक, त्रिक और अनुवाक् रखे हैं, यह किस लिए ?

"इनका विधान इसलिए है कि जिससे पठन-पाठन और मन्त्रों की गिनती

बिना कठिनता से जान ली जाय, तथा सब विद्याओं के पृथक्-पृथक् प्रकरण निर्भ्रमता के साथ विदित होकर सब विद्या-व्यवहारों में गुण और गुणी के ज्ञान द्वारा मनन और पूर्वापर स्मरण होने से अनुवृत्तिपूर्वक आकांक्षा योग्यता, आसत्ति और तात्पर्य सबको विदित हो सके, इत्यादि प्रयोजन के लिए अष्टकादि किए हैं।''

—**ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, प्रश्नोत्तर विषय**

मन्त्रों के साथ छन्द क्यों लिखा होता है ?

''जिस-जिस मन्त्र का जो-जो छन्द है, सो भी उसके साथ इसलिए लिख दिया गया है कि उनसे मनुष्यों को छन्दों का ज्ञान भी यथावत् होता रहे। तथा कौन-सा छन्द किस-किस स्वर में गाना चाहिए, इस बात को जनाने के लिए उनके साथ में षड्जादि स्वर लिखे जाते हैं, जैसे गायत्री छन्द वाले मन्त्रों को षड्ज स्वर में गाना चाहिए। ऐसे ही और-और भी बता दिए हैं कि जिससे मनुष्य लोग गान विद्या में भी प्रवीण हों, इसलिए वेद में प्रत्येक मन्त्रों के साथ उनके षड्ज आदि स्वर लिखे जाते हैं।''

—**ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, प्रश्नोत्तर विषय**

भला कई-कई मन्त्र चारों वेदों में क्यों आते हैं ?

''कहीं-कहीं एक मन्त्र का चार वेदों में पाठ करने का यही प्रयोजन है कि वह पूर्वोक्त चारों प्रकार की गान विद्या में गाया जावे। एक कारण तो यह है और दूसरा कारण यह भी है कि प्रकरण भेद से कुछ-कुछ अर्थभेद भी होता है, इसलिए कितने ही मन्त्रों का पाठ चारों वेदों में किया जाता है।''

—**ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, प्रश्नोत्तर विषय**

वेदों के मन्त्र कितने प्रकार के अर्थों को जनाते हैं ?

''वेदों के सब मन्त्र तीन प्रकार के अर्थों को कहते हैं। कोई परोक्ष, अर्थात् अदृश्य अर्थों को, कोई प्रत्यक्ष अर्थात् दृश्य अर्थों को और कोई अध्यात्म अर्थात् ज्ञान गोचर आत्मा और परमात्मा को। उन में से परोक्ष अर्थ के कहने वाले मन्त्रों में प्रथम पुरुष अर्थात् अपने और दूसरे के कहने वाले 'जो' सो और वह'' आदि शब्द हैं तथा उनकी क्रियाओं के अस्ति, भवति, करोति, पचतीत्यादि प्रयोग हैं। एवं प्रत्यक्ष अर्थ के कहने वाले मध्यम पुरुष, अर्थात् तू तुम आदि शब्द और उनकी क्रिया के असि, भवसि, करोषि पचसीत्यादि प्रयोग

हैं। तथा अध्यात्म अर्थ के कहने वाले मन्त्रों में उत्तम पुरुष अर्थात् 'मैं, हम'' आदि शब्द और उनकी अस्मि, भवामि,करोमि, पचामीत्यादि क्रिया आती हैं। तथा जहां स्तुति करने के योग्य परोक्ष, और स्तुति करने वाले प्रत्यक्ष हों, वहां भी मनुष्य पुरुष का प्रयोग होता है। यहां यह अभिप्राय समझना चाहिए कि व्याकरण की रीति से प्रथम, मध्यम, और उत्तम अपनी २ जगह होते हैं, अर्थात् जड़ पदार्थों में प्रथम, चेतन में मध्यम वा उत्तम होते हैं, सो यह तो लोक और वेद के शब्दों में साधारण नियम है। परन्तु वेद के प्रयोगों में इतनी विशेषता होती है कि जड़ पदार्थ भी प्रत्यक्ष हों तो वहां निरुक्तकार के उक्त नियम से मध्यम पुरुष का प्रयोग होता है और इससे यह भी जानना आवश्यक है कि ईश्वर ने संसारी जड़ पदार्थों को प्रत्यक्ष कराके केवल उनसे अनेक उपकार लेना जनाया है, दूसरा प्रयोजन नहीं है। परन्तु इस नियम को नहीं जान कर सायणाचार्य आदि वेदों के भाष्यकारों तथा उन्हीं के बनाये हुए भाष्यों के अवलम्ब से यूरोप देशवासी विद्वानों ने भी जो वेदों के अर्थों को अन्यथा कर दिया है, सो यह उनकी भूल है और इसीसे वे ऐसा लिखते हैं कि वेदों में जड़ पदार्थों की पूजा पाई जाती है, जिस का कि कहीं चिह्न भी नहीं है।''

—ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, प्रश्नोत्तर विषय

वेदार्थ करने में विशेष नियम कौन-से हैं !

''वेदादि शास्त्रों में जो-जो शब्द पढ़े जाते हैं, उन सब के बीच में यह नियम है कि जिस विभक्ति के साथ वे शब्द पड़े हों, उसी विभक्ति से अर्थ कर लेना, यह बात नहीं है, किन्तु जिस विभक्ति से शास्त्र मूल युक्ति और प्रमाण के अनुकूल अर्थ बनता हो, उस विभक्ति का आश्रय करके अर्थ करना चाहिए क्योंकि वेदादि शास्त्रों में शब्दों के प्रयोग इसलिए होते हैं कि उनके अर्थों को ठीक २ जान उनसे लाभ उठावें।

''वेदों में षष्ठी विभक्ति के स्थान में चतुर्थी हो जाती है लौकिक ग्रन्थों में नहीं। —ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, प्रश्नोत्तर विषय

वेदार्थ करने में विशेष नियम क्यों हैं !

''यह सब ऋषियों का प्रबन्ध इसलिए है कि शब्द सागर अथाह है। इसकी थाह व्याकरण से नहीं मिल सकती। जो कहे कि ऐसा व्याकरण क्यों नहीं बनाया कि जिससे शब्द सागर के पार पहुंच जाते, तो यह समझना

कि कितने ही पोथा बनाते और जन्म जन्मान्तरों भर पढ़ते तो भी पार होना दुर्लभ हो जाता, इसलिए यह सब पूर्वोक्त प्रबन्ध ऋषियों ने किया है, जिससे शब्दों की व्यवस्था मालूम हो जाये।

—ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, प्रश्नोत्तर विषय

क्या वेदमन्त्रों के अनेक अर्थ हो सकते हैं !

"इस आर्याभिविनय" ग्रन्थ में मुख्यतया वेद मन्त्रों का परमेश्वर सम्बन्धी एक ही अर्थ संक्षेप से किया गया है, दोनों अर्थ करने से ग्रन्थ बढ़ जाता इससे व्यवहार विद्या सम्बन्धी अर्थ नहीं किया गया, परन्तु वेद के भाष्य में यथावत् विस्तार पूर्वक परमार्थ और व्यवहारार्थ, यह दोनों अर्थ सप्रमाण किये जायेंगे ········और वेदों का महत्व तथा वेदों का अनन्तार्थ जानने से मनुष्यों को महालाभ और वेदों में यथावत् प्रीति होगी।" —आर्याभिविनय भूमिका

वेद संस्कृत भाषा में क्यों प्रकाशित किये गये !

"जो किसी देश भाषा में प्रकाशित करता, तो ईश्वर पक्षपाती हो जाता क्योंकि जिस देश की भाषा में प्रकाशित करता, उनको सुगमता और बिदेशियों को कठिनता वेदों के पढ़ने-पढ़ाने की होती। इसलिए संस्कृत ही में प्रकाश किया, जो किसी देश की भाषा नहीं और वेद भाषा अन्य सब भाषाओं का कारण है, उसी में वेदों का प्रकाश किया।" सत्यार्थप्रकाश

पाश्चात्य विद्वानों का दृष्टिकोण

आस्तिकों का सिद्धान्त है कि 'वेद' ईश्वरकृत हैं। आचार्य सायण, स्वामी शंकराचार्य ने वेदों को ईश्वरीय ज्ञान माना है। वेदार्थ क्रांत-दर्शी सुप्रसिद्ध सुधारक महर्षि दयानन्द जी ने भी अपने प्रसिद्ध ग्रन्थों 'सत्यार्थ प्रकाश,' 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' में वेदों को ईश्वरीय ज्ञान लिखा है। प्रस्तुत निबन्ध में मुझे यह प्रदर्शित करना है कि ऋषियों के सदृश कतिपय पाश्चात्य विद्वानों ने भी वेदों को ईश्वरीय ज्ञान माना है। यथा—जैकोलियट जैसा उच्चकोटि का पाश्चात्य विद्वान् अपने "Bible in India" (बाइबिल इन इण्डिया) नामक ग्रन्थ में वेद प्रतिपादित सृष्टि उत्पत्ति के विषय की अन्य मतों के मूल ग्रन्थों से तुलना करते हुये लिखता है—"Astonishing fact the Hindu revelation (Vedas) is of all revela-

tions the only one whose ideas are in perfect harmony with Science as it proclaims the slow and gradual foundation of the world".[1]

अर्थात्—बड़े आश्चर्य की बात है कि ईश्वरीय ज्ञान समझे जाने वाले ग्रन्थों में से केवल वेद ही है जिसके सिद्धान्त विज्ञान के सर्वथा अनुकूल हैं।"

डा० जेम्स कज्जिन डी० लिट् यूरोप के प्रसिद्ध विचारक अपने "Path to Peace" में लिखते हैं—"On the Vedic Ideal alone ..... it is possible to rear a new earth in the image likeness of the eternal heavens." अर्थात्—"वैदिक आदर्शों पर चलने से ही संसार फिर स्वर्ग वा सुरधाम बन सकता है।"[2]

'नोबल प्राइज' विजेता मैटरलिङ्क (Materlink) जो कि बड़ा भारी दार्शनिक माना गया है, लिखता है :—"Only the glare of the clairvoyant directed upon the mysteries of the past, may reveal unrivalled wisdom which lies hidden behind those writings (Vedas)."[3]

अर्थात्—'वेद ही एकमात्र ज्ञान के भण्डार हैं जिनकी तुलना हो ही नहीं सकती, वेदों में गुप्त रूप से अर्थात् मन्त्र रूप से समस्त विद्याओं का उपदेश निहित है।"

अमेरिका के विश्रुत विचारक मिस्टर थौरी निरन्तर वेदों के स्वध्याय के पश्चात् इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि—"What extracts from the Vedas I have read, fall on me like the light of a higher and purer luminary which describes a loftier course through a purer stratum free from

1—"The Glory of the Vedas" by Pt. Dharma Deva 'Vidya Vachaspati', pp. 13-14

2—Ibid pp. 7.

3—Ibid, pp. 6; "The Great Secret"; "महान् भारत" प्रथम संस्करण, पृष्ठ २४४-२४५; साप्ताहिक पत्र "दिवाकर" का "वेदाङ्क" भाग १, दि० २६-१०. १९३५ ई०, अंक २८, २९ पृष्ठ १८४।

particulars simple, universal; the Vedas contain a sensible account of God."[4]

अर्थात्—"वेदों की विचारधारा पवित्रतम है। वेदों में प्रकाश, ज्ञान और विज्ञान है। वेद सार्वजनिक, सार्वकालिक और सार्वदेशिक हैं। वेदों में परमात्मा का पवित्रतम प्रकाश प्रसारित है।"

प्रो० ब्लूमफील्ड ऋषियों को अपना पूर्व पुरुष बतलाते हुए स्वीकार करते हैं कि—"वेद प्राचीनतम हैं·········इतनी शताब्दियों के पश्चात् हमारे भाव, भाषा और धर्म में परिवर्तन होने के बाद भी आज वेदों में हमारे लिए बहुत कुछ मौजूद है।"[5]

लार्ड मार्ले का विश्वास है—"जो कुछ वेदों में है, अन्यत्र कहीं नहीं मिलता।"[6]

मि० मौरिस फिलिप (Rev. Morris Philip) अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "Teachings of the Vedas" में लिखते हैं:—

"After the latest researches into the history and chronology of books of old testament, we may safely now call the Rigveda as the oldest book not only of the Aryan humanity, but of the whole world. The conclusion therefore, is inevitable, that in the development of religi us thought India has been uniformly downward and not onward-deterioration and not evolution. We are justified, therefore in concluding that higher and purer conceptions of the Vedic Aryans were the results of a primitive divine revelation."[7]

4—"The Glory of the Vedas" pp. 7,8; तथा "दिवाकर" का "वेदांक" पृष्ठ १८४।

५—"Religion of the Vedas" "महान् भारत" प्रथम संस्करण पृष्ठ २४२।

६—"महान् भारत' प्रथम संस्करण, पृष्ठ २४२।

७—वही पृष्ठ २४२-२४३; "The Glory of the Vedas". pp. 5; 'दिवाकर' का "वेदांक" पृष्ट १८४, पं. यशःपाल 'सिद्धांतालंकार' कृत "वैदिक सिद्धान्त दर्पण" प्रथम संस्करण, पृष्ठ ३६।

अर्थात्—"वेद भारत की ही नहीं अपितु समस्त संसार की सबसे प्रचीन सनातन धर्म पुस्तक है। संसार की सभ्यता का आदिम स्रोत वेद है, क्योंकि वेद ईश्वरीय है। वेद अपौरुषेय है।"

अमेरिन महिला व्हीलर विलकाक्स (Mrs. Wheeler Wilcox) कहती है कि—"We have all heard and read about the ancient religion of India. It is the land of the great Vedas the most remarkable works containing not only religious ideas for a perfect life, but also facts which all the science has since proved true."[8]

अर्थात्—"भारत के प्राचीन धर्म के विषय में हमने सुना व अध्ययन किया है। यह महान् वेदों की भूमि है, वेदों में केवल जीवन सम्बन्धी धार्मिक विचार ही नहीं, प्रत्युत वे वास्तविकताएं हैं जिन्हें समस्त विद्वानों द्वारा सत्य होने का प्रमाण मिला है।"

कील-विश्वविद्यालय के विद्वान् प्राध्यापक 'कील' महोदय वेदों की महिमा के गीत गाते हुए मुक्तकण्ठ से स्वीकार करते हैं कि-"वेद समग्र ज्ञानका आदि और अन्त है।"[9]

प्रो० विल्सन (Wilson) ने ऋग्वेद के अनुवाद द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि—"सूत्र और ब्राह्मण काल से भी पूर्व वेदों में कला, विज्ञान आभूषण, कवच, अस्त्र-शस्त्र, ओषधियाँ और उनके प्रतिकार ऐन्टीडोट (Antidotes) समय विभाग, न्याय-नियम आदि सभी बातें पाई जाती हैं।"[10]

वेदज्ञ प्रो० मैक्समूलर लिखते हैं :—"किसी भी भाषा के ग्रन्थ ने जो काम नहीं किया वह वेदों ने संसार के इतिहास में किया है। जिन्हें अपने और

८—"The Sublimity of the Vedas" 'महान् भारत' पृष्ठ २४४।
"The Glory of the Vedas" pp. 14

9—"The Pre historic Antiquity of Aryan's"; "महान् भारत" पृष्ठ २४४।

१०–Rigveda (Translation) XV; "महान् भारत" पृष्ठ २४५।

पूर्वजों का अभिमान है, जिन्हें बौद्धिक विकास की इच्छा है, उन सबको वेदों का अभ्यास करना नितान्त आवश्यक है।"[11] पुन :—'वेद अपौरुषेय और नित्य है।"●

श्रमती बलावेटस्की का दृढ़ विश्वास है कि—"वास्तव में वेद ईश्वरीय ज्ञान है।"[12]

टिनावली के बिशप (Bishop) डाक्टर काडँवर्थ मानते हैं—"हम ऐसे विचारों को ईश्वरीय ज्ञान मानने में जरा भी आनाकानी नहीं करते।"[13]

सुप्रसिद्ध पाश्चात्य गवेषक अल्फ्रेड रसेल वैलेस (Dr. Alfred Russell Wallace) जिन्होंने विकासवाद (Evolution Theory) के सिद्धान्त को बढ़ाया है, अपनी पुस्तक "Social Environment and Moral Progress" में लिखते हैं कि–The wonderful collection of hymns known as the vedas is a vast system of religious teachings as pure and lofty as those of the finest portions of the Hebrew scriptures. Its authors were fully our equals in their conception of the universe and the deity expressed in the finest poetic language. In it we find many of the most advanced religious thinkers, we must admit that the mind which conceived and expressed in approximate language such ideas as are everywhere present in those Vedic hymns, could not have been inferior to those of the best of our religious teachers and poets, to our Milton. Shakespeare and Tennyson."[14]

---

११. "History of Sanskrit Literature" "महान् भारत" पृ० २४६

● "Chips from a German Workshop" Vol. I

१२. "Secret Doctrine"; 'महान् भारत' पृष्ठ २४५।

१३. 'महान भारत' पृ० २४५।

१४. "The Glory of the Vedas" pp. 4; 'दिवाकर' का "वेदांक" पृष्ठ १८३ तुलना करो, "पं० यशःपालजी सिद्धान्तालंकार कृत "वैदिक सिद्धान्त दर्पण" प्रथम संस्करण, पृष्ठ ३७।"

अर्थात्—"स्रोतों का अपूर्व संकलन जो वेदों के नाम से ज्ञात है, एक विशाल धार्मिक शिक्षाओं की प्रणाली है और ऐसा पवित्र और उच्च है जैसा कि यहूदी भाषा के धर्मग्रन्थ (बाइबल) के उत्तमोत्तम अंश हैं। इसकी भाषा बड़ी कवितामय व ओजस्वी है। इसमें हम लोग बड़े-बड़े दिग्गज विचारकों की शिक्षाओं से भी बढ़कर शिक्षा पाते हैं। हमारे सर्वोत्तम शिक्षकों व कवियों मिल्टन, शेक्सपीयर और टेनीसन के विचारों से वैदिक स्रोत सर्वोत्तम है।"

श्री डब्ल्यू० डी० ब्राउन (W. D. Brown) कहते हैं—"It recognises but one God. It is thoroughly scientific religion where religion and science meet hand in hand. Here theology is based upon science and philosophy".[15]

वैदिक धर्म एक ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करता है। यह सम्पूर्णतया वैज्ञानिक धर्म है जिसमें धर्म और विज्ञान हाथ मिलाकर चलते हैं। इसके सिद्धान्त विज्ञान-तत्वज्ञान पर आश्रित हैं।"

हण्टर महोदय (W. W. Hunte-) कहते हैं कि—"The age of this venerable hymnal (Rigveda) is unknown."[16] अर्थात्—"इस पूजनीय ऋग्वेद की आयु अज्ञेय अपरिमित है।"

कैगी साहब (Kaegi) लिखते हैं—"These productions at the time of compilation, even then partially unintelligible were looked upon as ancient, divinely inspired wisdom, and therefore, protected against all human criticism."[17]

---

१५. "The Superiority of the Vedic Religion". "The Glory of the Vedas pp. 13.

१६. पं० शिवशर्मा जी कृत "धर्मशिक्षा" चतुर्थ भाग, प्रथम संस्करण, पृष्ठ ३६; "महान् भारत" पृष्ठ २४२।

१७. "Kaegi's Rigveda" pp. 25 मासिकपत्र "क्षात्रधर्म सन्देश" जयपुर वर्ष ३, फरवरी १९४४ ई०, अंक २ पृष्ठ १३।

अर्थात्—"उक्त मन्त्र अपने संग्रहकाल में भी जिनके कुछ अंश लोगों की समझ में नहीं आते थे—प्राचीन और ईश्वरीय ज्ञान समझे जाते और इसी प्रकार सर्व प्रकार के मानव आक्षेपों से उनकी रक्षा की जाती थी।

विशप हीरों (Bishop Heron) लिखते हैं—"They (the Vedas) are without doubt the oldest works composed in Sanskrit. Even the most ancient Sanskrit writings allude to the Vedas as already existing. The Vedas alone stand serving as beacon of divine light for the onward march of humanity. There is no movement of Greece or Rome more precious than the Rigveda which is the most sublime conception of the great highways of humanity.'[18]

अर्थात्—"निःसन्देह संस्कृत में जितने ग्रन्थ लिखे गये उनमें वेद सबसे प्राचीन काव्य है। अधिकाँश प्राचीन संस्कृत लेख वेदों को पहले से वर्त्तमान होने का संकेत करते हैं। वेदों में मानवता के लिये शुद्ध प्रकाश है। ऋग्वेद की अपेक्षा अधिक बहुमूल्य, ग्रीस या रोम में कोई आन्दोलन नहीं है, जो कि मातवता के महान् मार्ग के लिए अधिक उच्च विचार हैं।"

पश्चिम का प्रसिद्ध सन्त एडवर्ड कारपेण्टर (Edward Carpenter) अपनी पुस्तक "Art of Creation" में लिखते हैं—"A new philosophy we can hardly expect or wish for, since the same germinal thoughts of the Vedic authors have come all the way down history, even to Schopenhaur and Whitman, inspiring philosophy after philosophy, religion after religion."[19]

---

१८. "Hindu Superiority." The Glory of the Vedas" pp. 5 'दिवाकर' का 'वेदांक' पृष्ठ १८३।

१९. "The Glory of the Vedas" pp. 6; 'दिवाकर' का "वेदांक" पृष्ठ १८४; "वैदिक सिद्धान्त दर्पण" पृष्ठ ३७, ३८ तथा "महान् भारत" पृष्ठ २४३।

अर्थात्—"आज तक एक भी नया विचार संसार में नहीं आया जो वेदों में न प्राप्य हो। चाहे शोपनहार का दर्शन शास्त्र पढ़ जाओ और चाहे ह्विटमैन के धर्मोपदेश वेदों के ही विचार सर्वत्र मिलते हैं। वेद ही सनातन है। आज तक का इतिहास इस बात का साक्षी है कि वेदों से बढ़कर ज्ञान, विज्ञान और ज्ञान प्रतिपादक कोई ईश्वरीय ग्रन्थ नहीं है।"

मि० बी० जी० रेली लिखते हैं—"The Upanishads being the end of the Vedas we might also enquire whether these latter also are really mystical books divinely inspired, or books on the scientific subjects of morphology and physiology part.[20]

अर्थात्—"चूँकि उपनिषद् वेदों का अन्त है अतः यह बात भी समीक्षणीय है कि वेद वास्तव में ईश्वर प्रदत्त रहस्यमय ग्रन्थ हैं अथवा वह शरीर रंग रूप शास्त्र व्यापार शास्त्र जैसे वैज्ञानिक विषयों पर लिखे गये ग्रन्थ है।"

इस प्रकार इन प्रमाणों के आधार पर यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि महर्षि दयानन्द जी सरस्वती के विचारों का प्रभाव इन उपर्युक्त पाश्चात्य विद्वानों पर अवश्य पड़ा है।

---

२०. "Vedic Gods" की भूमिका (सन् १९३१ में मुद्रित) तथा मासिकपत्र "क्षात्रधर्म सन्देश" जयपुर, वर्ष ३, मार्च+अप्रैल १९४४ ई०, अंक ३४, पृष्ठ ५।

श्रावणी के दिन व्रत

रखकर भी

वेद--प्रचार--यज्ञ

में

अपनी आहुति दीजिए

—संपादक

१ अग्नि-सूक्त

आदिम वेद में अग्नि सूक्त=स्तोत्र प्रथम स्तोत्र है। स्थूल जगत् में ईश्वरीय विकास अग्नि में सबसे अधिक है। अधिदैवत वाद में अग्नि सब देवों का मुख्य-देव हव्य-कव्य पहुँचाने वाला कहा जाता है। अग्नि ही से सारी क्रियायें होती हैं। जैव जगत् के सम्पूर्ण व्यापार अग्नि द्वारा सम्पादित होते हैं। इस अग्नि का मूलस्रोत सूर्यदेव है। वही अपने सारे सौर जगत् का जीवन, ज्योति और प्राण है। उसीकी ऊष्मा और उसीके प्रकाश से रूप-रंग और रसादि की सृष्टि दिखाई देती है।

आध्यात्मिक अर्थ वेद का मुख्यार्थ है। इसमें उन्नतिशील भगवद्भक्त, अन्तर्मुख होकर भगवान् के शुभ्रज्योतिर्मय स्वरूप का दर्शन किया करते हैं। तभी तो कहा है "अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो यं पश्यन्ति यतयः क्षीण-दोषाः" अपने अन्तःकरण में ही, जीवन्मुक्त जन भगवान् के शुभ्र प्रकाशस्वरूप का दर्शन पाते हैं। आत्मिक जगत् की ऊंची भूमियों और उत्तम धामों के देव-जन परमेश्वर के "आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्" अन्धकार रहित सूर्यस्वरूप का दर्शन करते हैं। भीतर के दिव्य नेत्रों से वे यही अवलोकन करते हैं "तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति" उसीके प्रकाशित होने पर सूर्य्य आदि लोक प्रकाशमान हैं, उसीकी ज्योति सूर्य चन्द्रादि को प्रकाशयुक्त बना रही है।

अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम्॥ १॥

प्रकाशस्वरूप देव की स्तुति करता हूं। वह यज्ञ का पुरोहित है, यज्ञ का देव है, यज्ञ का ऋत्विज और होता है। यजमान के लिए यज्ञ के फलस्वरूप रत्नों का धारणकर्त्ता, दाता है।

ऊपर की ऋचा में जो वर्णन है उसके मर्म को जानने के लिए यह समझना चाहिए कि वेद में चारों वर्णों के धर्मों और नित्य नैमित्तिक कर्त्तव्य कर्मों ही को यज्ञ शब्द से कहा है। वे कर्म, जो कर्म यजमान मन, वचन, काया से प्रभु के अर्पण करें, ऐसे कर्त्तव्य कर्मरूप यज्ञों का पुरोहित ब्रह्मा, पूज्य देव,

वांछित फल दाता और कार्यकर्त्ताओं का प्रेरक भगवान् ही हुआ करता है। भक्त की भावना में सारे शुभ और हितकर कर्मों में उसीका हाथ है।

अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतैनरुत।
स देवाँ एह वक्षति ॥ २ ॥

ऐसा अग्नि पूर्व आत्मदर्शियों द्वारा स्तुति करने योग्य है और नवीन तत्त्ववेत्ता भी उसीको स्तुति योग्य समझते हैं। वही अग्नि इस यज्ञ में देवों का आह्वान करता है।

इन्द्रियों से अतिरिक्त शुद्ध बुद्धि द्वारा देखने वाले और आत्मिक जगत् में गति रखने वाले तत्त्वदर्शियों को ऋषि कहा है। ऐसे उत्तम पुरुषों ने जब कभी परमात्मा के दर्शन किये तो उसके शुद्ध तेजोमय स्वरूप को देखा है। इसी कारण कल्प-कल्पान्तरों, युग-युगान्तरों से भक्त-जन भगवान् को प्रकाश-स्वरूप कह कर ही पुकारते आये हैं। वही ईश्वर शुभकर्मों में देवों को प्रेरित करता है।

अग्निना रयिमश्नवत्पोषमेव दिवे दिवे।
यशसं वीरवत्तमम् ॥ ३ ॥

यजमान भगवत्परायण कर्म-कर्त्ता परमेश्वर के साथ "रयि" धनादि यज्ञफलों को पाये और भोगे। वेदफल प्रतिदिन पोषक हो, बढ़े, कम न हो। परहित में लगकर यश देने वाला हो। कर्मी-कर्मयोगी पुरुषार्थ से जो पदार्थ उपार्जन करे, जो पदार्थ भोगे, उसमें अपने इष्टदेव को साथ रक्खे, उसको कदापि न भूले। यही माने और जाने कि यह सब पदार्थ उसीका प्रसाद और दात है। और उपार्जित पदार्थों को परमात्मा के मार्ग में परहित-परोपकार के यज्ञ में अर्पण करे।

अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि।
स इद्देवेषु गच्छति ॥ ४ ॥

हे अग्निदेव! जिस अखण्डित यज्ञ-शुभकर्म को तू सब ओर से प्राप्त है—अनुमोदन करता है। वही कर्म देवों, श्रेष्ठ जनों में प्रवृत्त हो।

इस ऋचा में प्रार्थना करते हुए यह कहा गया है कि हे ईश्वर! जनता में वही शुभकर्म, नीति, न्याय और आचार रूप यज्ञ फैले, जिसे तू स्वीकार करता है, जो तुझे भाता है।

अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः ।
देवो देवेभिरागमत् ॥ ५ ॥

वह अग्नि दिव्य-गुण युक्त व्यक्तियों सहित हमारे कर्मक्षेत्र में आवे । वह अग्नि यजमानों के यज्ञकर्मों में होता है । उसकी प्रज्ञा-ज्ञानशक्ति-उज्ज्वल है, वह सत्य है, उसका यश आश्चर्यमय है ।

परमेश्वर यशोधाम है । तत्त्वज्ञान का सूर्य है और अपने याज्ञिकों में स्वयं सम्मिलित होता है ।

यदंग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि ।
तवेत्तत्सत्यमंगिरः ॥ ६ ॥

हे अंग-अंग में रमण करने वाले अग्नि ! दानशील जन के अर्थ कल्याण करेगा, वह सत्य आशीर्वाद तेरा ही है ।

शुभ कार्यकर्त्ताओं के क्षेत्र में जो कल्याणयुक्त सफलतायें होती हैं उन सबका कारण भगवान् का आशीर्वाद ही हुआ करता है ।

उप त्वाग्ने दिवे दिवे दोषावस्तर्धिया वयम् ।
नमो भरन्त एमसि ॥ ७ ॥

हे देव ! हम प्रतिदिन अहर्निश तुझे नमस्कार करते हुए तेरे समीप प्राप्त होते हैं ।

जो हरिजन रात-दिन नमस्कार पूर्वक प्रभु का भजन करते हैं वे सदा उसके निकट रहते हैं ।

राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिवम् ।
वर्धमानं स्वे दमे ॥ ८ ॥

दुष्टों से अखण्डित यज्ञ कर्म में जो ईश्वर प्रकाशित है जो यज्ञफल रूप अमृत का गोप्ता है और जो प्रकाशमान है, वह मेरे घर में बढ़े ।

वे ही गृह यज्ञफल से फूलते-फलते तथा बढ़ते हैं जहाँ ईश्वर का निवास होता है और जहाँ यज्ञकर्म विघ्न-बाधाओं रहित किये जाते हैं ।

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव ।
सचस्वा नः स्वस्तये ॥ ९ ॥

हे ज्योतिर्मय अग्नि ! जैसे पिता अपने पुत्र के लिए शुभ उपाय करता है

तथाहि तू हमारे लिए उत्तम उपायवान् हो ।

जैसे प्रेम-पूर्ण पिता अपने प्रियस्वरूप पुत्र के अर्थ सुख की सर्व सामग्री एकत्र करता है ऐसे ही हे भक्तवत्सल भगवन् ! अपने जनों के लिए सर्व-सुख के साधन सिद्ध कीजिए ।

ऊपर के सूक्त में यही सिद्ध किया है कि केवल तेजोमय अग्निदेव ही भक्तों का आराध्य तथा पूज्यतम है । वह यजमानों के कर्मों में आहूत होने पर विद्यमान हो जाता है तथा उनके कर्मों में सहायता करता है । उसीके आशीर्वाद से सारे काम सफल होते हैं । वह प्रेममय और सर्वशक्तिमान् है ।

अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् ।
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ १० ॥

अग्नि जो सब देवों का आह्वान कर्त्ता है उसको हम अंगीकार करते हैं, वह सब दैवी शक्तियों से समन्वित है । इस यज्ञ का सुनिपुण कर्त्ता है ।

अग्निनाग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा ।
हव्यवाड् जुह्वास्यः ॥ ११ ॥

अग्नि अग्नि से प्रचण्ड होती है, वह सर्वज्ञ है; गृहपति तथा युवक है । वह हवि के प्रभाव को दूर तक ले जाती है और बुलाने योग्य है ।

कविमग्निमुप स्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे ।
देवममीव चातनम् ॥ १२ ॥

हे होतृसंघ ! अग्निदेव के पास आओ, वह निर्विघ्न यज्ञ में सत्यधर्मी है । वह देव है और रोग-जनक जन्तु नाशक है ।

स नः स्तवान आभर गायत्रेण नवीयसा ।
रयिं वीरवतीमिषम् ॥ १३ ॥

हे अग्नि ! तू नवीन स्तोत्र, गायत्री आदि सुन और उनको धारण कर । तू हमें बल देने वाला धन और अन्न दे ।

अग्ने शुक्रेण शोचिषा विश्वाभिर्देवहूतिभिः ।
इमं स्तोमं जुषस्व नः ॥ १४ ॥

हे अग्नि ! अपनी उज्ज्वल किरणों से और स्तुतियों से इस हमारे स्तोत्र को सुन—सेवन कर ।

यहाँ सेवन से सुनना तात्पर्य है । वह अपने प्रेमियों के गीतों को सुनता है ।

मधुमन्तं तनूनपाद्यज्ञं देवेषु नः कवे।
अद्या कृणुहि वीतये ॥ १५ ॥

अग्नि देवों में मधुर शरीरों को सम्पादन करता है, और आदि कवि है तथा दुःख नाशक हैं। यहाँ कवि से तात्पर्य सर्वज्ञ है।

अग्ने सुखतमे रथे देवां ईलित आवह।
असि होता मनुर्हितः ॥ १६ ॥

अग्नि देवों को सुखतम रथ में बैठा कर ले जाता है। वह स्तोतव्य है और होता है। तथा हित करने वाला है। मनु शब्द से यहाँ मनन करने वाला विद्वान् है।

इला सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः।
बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः ॥ १७ ॥

इडा स्तुतिरूपा देवी है, वही मही विशाल ज्ञान का कोष है और वह सुखदात्री है। वह हमारे यज्ञ में सुखप्रदा होकर बैठे।

ऊपर के मंत्र में तिस्रः देवी से तात्पर्य ज्ञान की तीन प्रकार की शक्तियां हैं जो भक्ति, दान और कर्मस्वरूप हैं।

इह त्वष्टारमग्रियं विश्वरूपमुपह्वये।
अस्माकमस्तु केवलः ॥ १८ ॥

मैं अग्नि को बुलाता हूँ। वह विश्वरूप अर्थात् नाना किरणों से युक्त है। वह हमारा केवल है।

ऐभिरग्ने दुवो गिरो विश्वेभिः सोमपीतये।
देवेभिर्याहि यक्षि च ॥ १९ ॥

हे देव! हमारे यज्ञ में सोम प्राप्ति के अर्थ आप सब सन्त जनों के साथ आइए और हमारी परिचर्या और स्तुति को ग्रहण करिये तथा यज्ञ में मिलिये।

इस ऋचा में परिचर्या का अर्थ सेवा है और वह सेवा जो जन समाज के हितार्थ यज्ञ में सिखाई जाती है।

गार्हपत्येन सन्त्य ऋतुना यज्ञनीरसि।
देवान्देवयते यज ॥ २० ॥

हे अग्नि! देवों को, यजमानों के यज्ञ के लिए बुला और गार्हपत्य कार्यों

को साधित कर और ऋतु यज्ञों की शोभा को बढ़ा दे।

नहि देवो न मर्त्यो महस्तव क्रतुं परः।
मरुद्भिरग्न आगहि ॥ २१ ॥

हे अग्नि देव ! तू अपनी शक्तियों सहित आ। तेरे प्रेममय "महस्" तेज को न देव और न ही मनुष्य जान सकते हैं। वह अगम्य है। उससे तेरा काम उत्कृष्ट है।

प्रति त्यं चारुमध्वरं गोपीथाय प्र हूयसे।
मरुद्भिरग्न आगहि ॥ २२ ॥

हे अग्नि ! जिस यज्ञ को तू सुन्दरता प्रदान करता है, वह तेरा आशीर्वाद है। तू उस यज्ञ में अपनी शक्तियों सहित आ। यहाँ "गोपीथाय" का अर्थ आशीर्वाद है। आशीर्वाद ही से यज्ञ की रक्षा और सफलता होती है। ऐसे स्थल में परमेश्वर ही आशीर्वाद प्रदान करता है।

ता यज्ञेषु प्रशंसतेन्द्राग्नी शुंभता नरः।
ता गायत्रेषु गायत ॥ २३ ॥

वे इन्द्राग्नी यज्ञ में प्रशंसा पायें। शोभायुक्त हों, गायत्री छन्दों द्वारा प्रशंसित हो जायें।

सं माग्ने वर्चसा सृज संप्रजया समायुषा।
विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात्सह ऋषिभिः ॥ २४ ॥

हे ईश्वर ! मुझे अपने कामों में जोड़, जो आपने अपने जनों के तेज को बढ़ाने के निमित्त नियत किये हैं वे कर्म, आयु, प्रजा, तेज को बढ़ाते हैं। वह देवों का देव मुझे ऋषियों के सत्संग में जाने, जिससे मैं उसे मानूं।

त्वमग्ने प्रमतिस्त्वं पितासि नस्त्वं वयस्कृत्तव जामयो वयम्।
सं त्वा रायः शतिनः सं सहस्रिणः सुवीरं यन्ति व्रतपामदाभ्यः ॥२५॥

हे अग्निदेव ! तू हमारा पिता है और परमज्ञानी पिता है। तू हमारा समवयस्क सखा है, हमारा प्यारा भाई है। तू हमारा धन है और सैकड़ों, सहस्रों की राशि है। तुझको हम कर्मक्षेत्रों में व्रतपालक कहते हैं।

ह्वयाम्यग्निं प्रथमं स्वस्तये ह्वयामि मित्रावरुणाविहावसे।
ह्वयामि रात्रीं जगतो निवेशनीं ह्वयामि देवं सवितारमूतये॥२६॥

अपनी रक्षा के निमित्त और विघ्न विनाशार्थ हम प्रकाशस्वरूप परमेश्वर

का आह्वान करते हैं। मित्र और वरुण को बुलाते हैं। जगत् का निवास जिसमें है उस रात्रि को आहूत करते हैं, तथा उत्पादक देव को आमंत्रित करते हैं।

यहाँ रात्रि से तात्पर्य जागृति से है, क्योंकि जागृति के बिना सभी प्राणी सोये हुए समझे जाते है और जो जन धर्म, कर्म में जागते हैं वे ही रात को जागृति बना देते हैं।

आ नो अग्ने सख्या पित्र्याणि प्रमर्षिष्ठा।
अभिविदुष्कविः सन् ॥ २७ ॥

हे प्रकाशमय देव ! हमारे पूर्वजों के सौहार्द भाव को ध्यान में धर कर हमें भक्ति प्रदान कर। तू सर्वज्ञ है, इस कारण जानता है कि उनका भक्ति-भाव तेरे साथ कितना था और हमारे साथ कितना सखाभाव था।

पाहि नो अग्न एकया पाह्यु त द्वितीयया।
पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जांपते पाहि चतसृभिर्वसो ॥ २८ ॥

हे अग्ने ! हमारी एक प्रार्थना को सुन कर हमारी गति कीजिए। दूसरी से, तीसरी नहीं तो चौथी को अवश्यमेव सुनिये।

यदग्ने स्यामहं त्वं, त्वं वा घा स्या अहम्।
स्युष्टे सत्या इहाशिषः ॥ २९ ॥

हे देव ! जब मैं ध्यान में निमग्न होकर तुझ में लीन हो जाऊंगा और जब तू मुझे परम प्यारा पुत्र बना कर अपनी गोद में लय कर लेगा, तब तेरे वे सारे आशीर्वाद सफल हो जायेंगे। जो-जो तूने मुझे इस लोक में दियें हैं।

आ नो अग्ने सुचेतुना रयिं विश्वायु पोषसम्।
मार्डीकं धेहि जीवसे ॥ ३० ॥

हे देव ! हमें ज्ञानमय धन प्रदान कर, जो सारी आयु में पुष्टिकारक बना रहे और सुखयुक्त हो।

आ यस्ते अग्न इधते अनीकं वसिष्ठ शुक्र दीदिवः पावक।
उतो न एभिः स्तवथैरिह स्याः ॥ ३१ ॥

हे अग्नि ! जो तेरा तेज शुभ्र है और उत्तम प्राण है उसको हम धारण करते है। वह दीप्तिमन्त है। उससे हम प्रकाशयुक्त हो जायें। तेरे स्तोत्रों को समझें।

त्वामग्ने मनीषिणस्त्वां हिन्वन्ति चित्तिभिः ।
त्वां वर्धन्तु नो गिरः ॥ ३२ ॥

हे प्रकाशस्वरूप ईश्वर ! हमारे स्तोत्र तेरी कीर्ति को बढ़ायें । हम मनीषी लोग तुझको जानें और ऊंचे ज्ञान द्वारा जानें ।

अग्निः शुचिव्रततमः शुचिर्विप्रः शुचिः कविः ।
शुची रोचत आहुतः ॥ ३३ ॥

अग्नि देव पवित्रतम व्रतों वाला है । पवित्र ज्ञानी है और परम पवित्र सर्वज्ञ है । आहूत होने पर वह पवित्रता को चाहता है ।

अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः ।
तमीमहे महागयम् ॥ ३४ ॥

अग्नि देव सर्वज्ञ है, पवित्र करने वाला है, चारों वर्णों और अतिशूद्रों का भी पिता है । तथा सब प्रजाओं का हितकारक है । उसको हम अपने गृहों में गायन करें ।

अग्निः परेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य ।
सम्राडेको विराजति ॥ ३५ ॥

ईश्वर ऊंचे धामों में भी विराजमान है । वह भूतकाल और भविष्य का एक ही राजा है । उसीसे सब प्रजाएँ शासित होती हैं ।

२ ● वायु-सूक्त

वायवायाहि दर्शतेमे सोमा अरंकृताः ।
तेषां पाहि श्रुधी हवम् ॥ १ ॥

हे दर्शनीय ज्ञानस्वरूप वायुदेव ! हमारे इस कर्म में आइए । यह जो हमारे द्वारा सुसज्जित सोमरस तथा चरु आदि है वह हम निवेदित करते हैं उसे स्वीकार कीजिये अथवा उसकी रक्षा कीजिये और हमारी विनय को सुनिये ।

वाय उक्थेभिर्जरन्ते त्वामच्छा जरितारः ।
सुतसोमा अहर्विदः ॥ २ ॥

हे ज्ञानस्वरूप वायु ! सुन्दर स्तोत्रों द्वारा तेरी स्तुति करने वाले तुझे अच्छा समझ कर तेरा यशोगायन करते हैं। वे स्तावक चरु भेंट करने वाले हैं और दिन को जानते हैं। इस मंत्र में दिन को जानने से तात्पर्य्य तिथि, वार और ऋतु आदि के अनुसार यज्ञकर्म करने का आशय है। समयानुसार किया हुआ यज्ञकर्म इष्ट फल को देता है।

वायो तव प्रपृञ्चती धेना जिगाति दाशुषे।
उरूची सोमपीतये ॥ ३ ॥

हे ज्ञानी देव ! तेरी वेदवाणी दानदाता यजमान के समीप जाती है। वह सोमरसादि भेंट स्वरूप चरु के गुणों का विशेषतया वर्णन करती है और बहुत यजमानों को पहुँचाती है।

ऊपर के मंत्र में वेदवाणी का वायु के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध वर्णन किया है। यह वेदवाणी धेनू शब्द से कही गई है। "धेनू" शब्द "धी धारण" से बनता है। इसका यह आशय है कि "धेनू" जन समाज को धारण करने वाल ईश्वर की वाणी है। इसीसे जनता में नीति न्याय, जनसुधार, परोपकार और शक्ति-भक्ति का विस्तार होता है। वाणी ही ज्ञान का स्रोत है और वायु से भी अत्यन्त निकट सम्बन्ध है। सूत्रात्मा वायु में जब ईश्वर द्वारा स्फुरणा उत्पन्न की जाती है, तो मनुष्य के कण्ठ में वैखरी वाणी बन जाती है।

३ ● वाणी

माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः।
प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट ॥ १ ॥

ईश्वर ज्ञानवान् जनों को आज्ञा देता है कि तुम निष्पाप, निष्कपट वचन बोलो और वेदवाणी को मिथ्या वाद-विवाद में पड़ कर न मारो। वेदवाणी रुद्रसंज्ञक विद्वानों की माता, वसुओं की पुत्री और आदित्य ब्रह्मचारियों की बहिन के सदृश है। वह अमृत-अमर जीवनदान-का स्रोत है। इसमें रुद्र उन ज्ञानियों को कहा है जो सांगोपांग वेदाध्ययन करके गृहस्थ बने हों। वसु उन

को कहते हैं जो विद्वान् अध्यापक का काम करके शिष्यों में गुणों का वास करा रहे होवें। आदित्य उनकी संज्ञा है जो आजीवन परोपकार का व्रत धारण कर जन-हित में रत रहें।

वचोविदं वाचमुदीरयन्तीं विश्वाभिर्धीभिरुपतिष्ठमानाम्।
देवीं देवेभ्यः पर्येयुषीं गामा मावृक्त मर्त्यो दभ्रचेताः ॥ २ ॥

मैं ईश्वर तुम्हें कहता हूँ कि भूखे, प्यासे, अपाहज जो भी बोलना जानते हैं, वाणी बोलते हैं, परन्तु ज्ञानी सब से ऊपर है, क्योंकि वह सत्यासत्य के विचार से विकार विवर्जित वचन बोलता है।

तं गावो अभ्यनूषत सहस्रधारमक्षितम्।
इन्दुं धर्तारमा दिवः ॥ ३ ॥

परमेश्वर को वाणी सेवन करती है अर्थात् वह ज्ञान द्वारा उपलब्ध होता है। चन्द्रमा का धर्त्ता और दिन का आदि वही है।

तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निर्ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम्।
गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः ॥ ४ ॥

यजमान, ईश्वर-प्रेमीजन तीन प्रकार की प्रार्थनाएं करते हैं। एक तो वह्नि अर्थात् ईश्वर को ज्योतिर्मय मान कर। दूसरी सत्य की धारणा से और तीसरी परा विद्या जिसे विद्वान् समझते हैं उसके भाव से। ये तीनों प्रकार की प्रार्थनाएं तत्त्वज्ञानियों से जिज्ञासा की जाय तो ऐसे ज्ञात होती हैं जैसे ग्वाले के पास गौएं आया करती हैं। और ये तीनों मतियां परमेश्वर की देन है।

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत्प्रैरत नामधेयं दधानाः।
यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत्प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः ॥ ५ ॥

बृहस्पति की वाणी प्रथम है, सब से उत्तम है। वह प्रेम से ग्रहण की जाती है। उसका आशय अति गूढ़ होते हुए भी विचारवान् उसे शीघ्र ग्रहण कर लेते हैं। इस मन्त्र में ईश्वर की वाणी को प्रथम कहा है। तात्पर्य यह है कि सब से प्रथम ज्ञान का अवतरण मनुष्य में ईश्वर की ओर से हुआ है।

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि ॥ ६ ॥

भाषा बोलते समय विवेकी जन को सत्यासत्य का ध्यान रखना चाहिए! वचन छने हुए आटे की भाँति स्वच्छ होने चाहिए। धीर जन वचन से मर्यादा

लोप नहीं करते ।

ऐसे प्रामाणिक जनों के वाक्यों ही में मित्रता मिलती है वहीं धन का निवास होता है ।

उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम् ।
उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः ॥७॥

कोई-कोई राग-द्वेष के वश हो सत्य को सुन कर भी उस पर आरूढ़ नहीं होते । सत्य को जानकर भी अजान बने रहते हैं, उस पर चलने का यत्न नहीं करते । परन्तु जो जन विचारशील हैं, उनके समीप वाणी अपने गहरे ज्ञान को ऐसे प्रकाशित करती है जैसे पत्नी अपने पति के आगे अपने भेद रख देती है ।

उत त्वं सख्ये स्थिरपीतमाहुर्नैनं हिन्वन्त्यपि वाजिनेषु ।
अधेन्वा चरति माययैष वाचं शुश्रुवाँ अफलामपुष्पाम् ॥ ८ ॥

कोई-कोई जन सोच-विचार कर और स्थिर निश्चित वचन बोलते हैं । वे हितों-अन्नों-का नाश नहीं करते । जिनकी वाणी दूषित है वे माया-छल-से काम लेते हैं । उनके वचन सत्य के फलों और पुष्पों से रहित होते हैं ।

यस्तित्याज सचिविदं सखायं न तस्य वाच्यपि भागो अस्ति ।
यदीं शृणोत्यलकं शृणोति नहि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम् ॥ ९ ॥

जो मनुष्य अपनी वाणी को बदल कर अपने सेवकों, संगियों का साथ त्याग देता है उसके वचनों में विश्वास नहीं रहता । उसके कथन को झूठ ही माना जाता है । वह मिथ्यावादी मनुष्य धर्म के मार्ग-सत्य को नहीं जानता । उसको सद्गति प्राप्त नहीं होती, क्योंकि वह मित्र-द्रोह रूप अपराध करता है ।

४ • मित्रावरुण

मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम् ।
धियं घृताचीं साधन्ता ॥ १ ॥

मैं इस कर्म में सहायतार्थ मित्र स्वरूप देव को बुलाता हूं और आवरण

करने वाले वरुण को आमन्त्रित करता हूं। वह पानी देने वाली भूमि प्रदान करे। यहाँ पानी देने वाली भूमि से तात्पर्य उपजाऊ धरती है। वह ईश्वर की देन है। भूमिवान्, ऐश्वर्यवान् राजा बन जाता है। अपनी भूमि को प्राप्त करना, उसकी रक्षा करना ईश्वरीय काम है, इस कारण धर्म है।

ऋतेन मित्रावरुणावृतावृधावृतस्पृशा।
क्रतुं बृहन्तमाशाथे ॥ २ ॥

हे मित्र और वरुण ! तुम यज्ञ में विराजमान हो। तुम सत्य से बढ़े हुए हो, सत्य ही तुम्हारा विस्तार है, सत्य को तुम स्पर्श करते हो। सत्य तुम्हारा स्वरूप है। कर्मक्षेत्र में कर्मियों के शुभ कर्मों को बढ़ाते हो।

उपरोक्त मंत्र में मित्र वरुण का स्वरूप बताया है और यह भी प्रदर्शित किया है कि वे कार्यकाल में सच्चे कर्मियों के सहकारी हो जाते हैं।

कवी नो मित्रावरुणा तुविजाता उरुक्षया।
दक्षं दधाते अपसम् ॥ ३ ॥

मित्र और वरुण देव हमारे बल और कर्म को पुष्ट तथा धारण करते हैं, वे सुप्रज्ञ हैं, अनेक प्रकार से प्रकाशित होते हैं। और नाना प्रकार से निवास करते हैं।

इस मंत्र में वरुण को कवि कहा है, बल पुष्टि प्रदाता प्रदर्शित किया है।

युवं दक्षं धृतव्रत मित्रावरुण दूलभम्।
ऋतुना यज्ञमाशाथे ॥ ४ ॥

हे मित्रावरुण ! तुम हमारे यज्ञ में आओ। आप युवान हैं, चतुर हैं और व्रतों के धारण करने वाले हैं। यज्ञशाला में ऋतुयज्ञ बढ़ाइए।

गन्तारा हि स्थोऽवसे हवं विप्रस्य मावतः।
धर्तारा चर्षणीनाम् ॥ ५ ॥

हे मित्रावरुण ! रक्षा निमित्त आवें ! पण्डित के गीत को सुनें, मनुष्यों को धारण करें।

उदुत्तमं वरुणपाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥ ६ ॥

हे सबको आवृत्त करने वाले वरुण ईश्वर ! हमसे अपने पाप-बन्धन को

दूर कीजिए। वह पाश जो उत्तम, मध्यम और अधम रूप से तीन प्रकार है। हम तेरे आश्रित हैं। हे सूर्य सदृश प्रतापी ! हमें बल दे, जिससे हम तेरे व्रत में निष्पाप रहें। और अखण्डित बने रहें।

ऊपर के मंत्र में बन्धन तीन प्रकार के बताये हैं, वे प्राणों के तीन स्थान के बन्धन हैं। प्रथम नाभि देश है, उसमें जीवन और भोग वास करता है। दूसरा हृदय है, जिसमें श्वास-प्रश्वास की मात्रा रहती है। तीसरा कण्ठ प्रदेश है, जिसमें जीवन योग्य संकल्प-विकल्प रहते हैं; इसी में शंका, संदेह, भूख-प्यास आदि वृत्तियाँ वास करती हैं। ये तीनों बन्धन ईश्वरकृत हैं। ये सूक्ष्म शरीर में भी माने गये हैं। इन्हीं को कारण शरीर कहा है। इनके टूटने पर अपवर्ग की उपलब्धि होती है।

यच्चिद्धि ते विशो यथा प्र देव वरुण व्रतम्।
मिनीमसि द्यविद्यवि ॥ ७ ॥

हे वरुण ! जैसे प्रजा के लोग राजनियम के विरुद्ध चोर कर्म आदि अपराध करते हैं वैसे ही हम भी कभी-कभी स्वहित योग्य कर्मों में अपराध कर दिया करते हैं। वे अपराध क्षमा किये जायें। हम प्रतिदिन तुझे ही मानते रहें, अर्थात् हमारा विश्वास सुदृढ़ बना रहे।

मा नो वधाय हत्नवे जिहीलानस्य रीरधः।
मा हृणानस्य मन्यवे ॥ ८ ॥

हे वरुण ! हम जो अपराध करते हैं जो व्रतभंग रूप आत्महनन करते हैं, उन हमको तू क्षमा कर दे, अर्थात् हमें सुमार्ग पर चला और दण्डित न कर। हम मनुष्यों के लिए दण्ड फल न रहे।

शृण्वन्तं पूषणं वयमिर्यमनष्टवेदसम्।
ईशानं राय ईमहे ॥ ९ ॥

मैं सबके पोषक इन्द्र को पुकारता हूं; वह राजा है, और वह ईश्वर है। हम उसीके उपासक हैं।

पूषन्तव व्रते वयं न रिष्येम कदाचन।
स्तोतारस्त इह स्मसि ॥ १० ॥

हे पोषक ! हम तेरे व्रत में कभी विघ्न न डालें। तू सबका स्वामी है। हम सब तेरी स्तुति करें। यहां हमारा एकमात्र तू ही है।

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती ।
यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥ १ ॥

ज्ञान शक्ति हमें पवित्र करने वाली है । वह अन्नसत्रों में अन्नपूर्णा है । वह यज्ञ अन्नदान को चाहती है । और वह कर्मों को वसाने वाली है ।

विद्या ही से व्यक्ति,जन-समाज तथा राष्ट्र पवित्र होता है । मन, मस्तिष्क और आत्मा भी इसी से पवित्र किया जाता है । इस शक्ति से बड़े-बड़े चमत्कारिक कर्म किये जाते हैं । वास्तव में मनुष्य समाज में यही अद्भुत शक्ति है । कर्म, धर्म का इसीमें निवास है ।

चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम् ।
यज्ञं दधे सरस्वती ॥ २ ॥

सरस्वती यज्ञकर्म को धारण करती है । सत्य वाक्यों का प्रेरणा करने वाली है । सुमतियों, शोभन विचारों को जगाती है ।

इस मंत्र में ज्ञान-शक्ति को सत्य की प्रेरक कहा है । सत्य और ज्ञान एकार्थ वाचक हैं । ज्ञान ज्ञानी से पृथक् वस्तु नहीं है किन्तु ज्ञानी का स्वभाव अथवा स्वरूप है । वह ज्ञान सत्य से भिन्न नहीं है । वही सरस्वती है । मनुष्य का अन्तिम ध्येय सत्य है । इसी कारण कई एक महापुरुषों ने आत्मा को सत्य के नाम से निर्दिष्ट किया है । सत्य से उनका तात्पर्य ज्ञान ही से है । ज्ञान ही अन्तिम सत्य है ।

महो अर्णः सरस्वती प्र चेतयति केतुना ।
धियो विश्वा वि राजति ॥ ३ ॥

सरस्वती विद्या बहुत जल वाली है । अपनी शक्ति की ध्वजा से जनता को जगाती है और सब कर्मों से सुशोभित है । ऊपर की ऋचा में सरस्वती अधिक जलवती वर्णन की है । यहां जल से, यज्ञ कर्म से वृष्टि का होना, ही लक्षित है । सरस्वती की ध्वजा, बुद्धि, ज्ञान और विचार की वृद्धि है, तथा संघ सुगठित और नैतिक समुन्नति है । इससे जनता में जागृति उत्पन्न होती

है। लोग अपने कर्त्तव्याकर्त्तव्य और अधिकारों के विषय में सावधान, चैतन्य हो जाते हैं। यही विद्या सम्बन्धी जागृति है।

या वां कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती।
तया यज्ञं मिमिक्षतम् ॥ ४ ॥

हे अश्विनी कुमारो ! मेरे यज्ञ कर्म में आओ। अपनी मधुमती कशाद्वारा मुझे अपनी दया से सींचो। वह आपकी कशा सत्यवती है।

यहाँ अश्वियों से तात्पर्य दो देव शक्तियों से है, जो जल को बनाती हैं। दो वायु से जल बनता है, वे ही अश्विनी कुमार हैं। उनकी कशा स्थूल रूप वायु है, जो वाष्परूप होकर वर्षा बनता है और वह मधुमान् जलरूप है।

कशा को "सूनृतावती" कहा है। इसका अर्थ सत्य समझा गया है अर्थात् इस सारे जल निर्माण रूप तंत्र का तंत्री भगवान् है।

वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम्।
वेद नावः समुद्रियः ॥ ५ ॥

जो वरुणदेव आकाशगामियों के स्थानों को जानता है और समुद्र जलचरों के मार्गों को जानता है, वह हमको आशीर्वाद देवे।

यहाँ आकाशचारी और जलचरों से तात्पर्य पवनयान और पोतयान से चलने वालों से है, परन्तु इसमें यह कहना कठिन है कि यहाँ जलयान और पवनयान से क्या आशय है। वे यान किस प्रकार के हों यह भी जानना दुष्कर है।

वेद मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावतः।
वेदा य उपजायते ॥ ६ ॥

वरुण देव बारह मासों को जानता है, और जो अधिक मास है, उसे भी जानता है।

बारह मास का वर्ष होता है। उसमें एक अधिक मास के मिलाने से चान्द्र वर्ष बनता है। परन्तु चान्द्र वर्ष में बड़ा भारी दोष यह है कि उसमें अधिक तिथियाँ कम की जाती है। निश्चित तिथिया उसमें नहीं हैं। इस कारण चान्द्रमास से सूर्यमास अधिक अच्छा और निश्चित है। उसमें केवल दोष यह है कि उसमें दिन निश्चित नहीं है। यदि उसमें प्रत्येक मास के दिन निश्चित कर दिए जायें, तो वह अधिक उपयोगी है। अब चान्द्र वर्ष और सौर्य वर्ष के दिनों को मिलायें तो उसमें बड़ा भेद आ जायेगा। कालान्तर में उसका अन्तर

एक वर्ष का हो सकता है। पर ज्योतिषियों ने तिथियाँ घटा कर उसको स्थिर कर दिया है। इसी प्रकार सौर मास की भी तिथियाँ निश्चित की जानी चाहिएँ। अब ये कैसे की जायें, यह ज्योतिर्विदों का विषय है। वे आंगल मासों के मिलान को मन में लाकर कोई निश्चित विधि निकाल सकते हैं।

वेद वातस्य वर्तनिमुरोर्ऋष्वस्य बृहतः।
वेदा ये अध्यासते ॥ ७ ॥

हे वरुण ! तू सुन्दर और विशाल वायु के पथ का प्रदर्शन करता है। वह आश्रितों के लिए हितकर है। इस कारण मैं जानता हूं कि तू ऊपर रहने वालों को भी जानता है।

९ • इन्द्र-स्तुति

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे।
जुहूमसि द्यविद्यवि ॥ १ ॥

हम सौन्दर्य सम्पादन कर्त्ता इन्द्र को प्रतिदिन, अपने कर्मक्षेत्र में स्वरक्षा निमित्त आहूत करते हैं। जैसे दुग्ध दोहन के समय सुगमता से दोहने योग्य गौओं को गवाले बुलाते हैं। यहां इन्द्र से तात्पर्य परमेश्वर से है। वही सुन्दरता प्रदान करता है। वह आश्रित जनों का रक्षक है और वही मनोवाँछित फल प्रदाता है।

अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम्।
मा नो अति ख्य आ गहि ॥ २ ॥

हे सर्वशक्तिमन् इन्द्र देव ! तेरे सुमतीमन्त ज्ञानी और नीति-निपुण, अत्यन्त समीपवर्त्ती जनों के सत्संग में बैठकर हम तुझे जानें। हम सत्संगियों को लांघ कर, भक्ति-भाव हीन जनों को अपना भेद न कहें। कृपया तू हमारे पास आ।

ऊपर के मंत्र में भक्ति-भाव का मनोमोहक चित्र-चित्रण किया गया है।

अस्य पीत्वा शतक्रतो घनो वृत्राणामभवः ।
प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥ ३ ॥

हे तू ! हमारे सोम रस को ग्रहण करके हमारे शत्रुओं का पराभव कर । संग्राम क्षेत्रों में वीरों का रक्षक हो ।

तं त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयामः शतक्रतो ।
धनानामिन्द्र सातये ॥ ४ ॥

हे मनुष्यो ! इन्द्र अपने जनों की सम्पत्तियों का रक्षक है । कर्म कामना का पूरक है । और कर्मी यजमान का सखा है । इस कारण उसका गायन करो ।

यो रायो वनिर्महान्त्सुपारः सुन्वतः सखा ।
तस्मा इन्द्राय गायत ॥ ५ ॥

इस मंत्र का महत्त्व यह है कि इसमें सर्वशक्तिमान् भगवान् को कामनाओं का पूर्णकर्त्ता और सखा वर्णन किया है ।

पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्याणाम् ।
इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥ ६ ॥

हे मनुष्यो ! घोरतम अन्धकार के नाशक अर्थात् विघ्न शत्रु विनाशक तथा प्रभूत धनों के दाता इन्द्र को यज्ञ में मिलकर गायन करो ।

स घा नो योग आ भुवत्स राये स पुरंध्याम् ।
गमद्वाजेभिरा स नः ॥ ७ ॥

वही इन्द्र हमें अप्राप्त पदार्थों की प्राप्ति में साधनशील बनाये । हमारी सम्पत्तियों को सिद्ध करे । नानाविध बुद्धियों को देवे और अन्नसत्रों द्वारा हमें मिले । अन्न यज्ञों द्वारा हमको उपलब्ध हो ।

आ त्वा विशन्त्वाशवः सोमास इन्द्र गिर्वणः ।
शन्ते सन्तु प्रचेतसे ॥ ८ ॥

हे वाणियों से आराधन करने योग्य इन्द्र ! हमारी भेंटें तेरे पास पहुँचें और वे तेरे भक्तों को चैतन्यता और शान्ति दें ।

त्वां स्तोमा अवीवृधन्त्वामुक्था शतक्रतो ।
त्वां वर्धन्तु नो गिरः ॥ ९ ॥

हे शतधा कर्मकारिन् इन्द्र ! ऋचायें तेरे यश का विस्तार करें। प्रणवादि पवित्र जप तेरी कीर्त्ति को बढ़ायें और हमारी वाणियाँ तेरे गुणों का गायन करके तेरी महिमा को फैलायें।

मा नो मर्ता अभि द्रुहन्तनूनामिन्द्र गिर्वणः।
ईशानो यवया वधम् ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! वैर को बुद्धि वाले मनुष्य हमारे देहों के साथ द्रोह न करें। तू समर्थ है, इस कारण हमारे हनन को हम से दूर कर।

इस मंत्र में इन्द्र को सामर्थ्ययुक्त माना है और उससे प्रार्थना की है कि वह विश्वासघातकों से अपने भक्तों को बचाये।

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परितस्थुषः।
रोचन्ते रोचना दिवि ॥ ११ ॥

जो सर्वशक्तिमान् भगवान्, सूर्य देव में देदीप्यमान है, अग्नि में ज्वलन्त स्वरूप है, पवन में गति रूप है, और जो सर्वथा कूटस्थ है, उसी को सर्व जन अपने कर्म में जोड़ते हैं और उसी देव की दीप्ति से द्युलोक के तारागण प्रकाशित हो रहे हैं।

इतो वा सातिमीमहे दिवो वा पार्थिवादधि।
इन्द्रं महो वा रजसः ॥ १२ ॥

जो इन्द्र धनदाता है, उससे हम इस लोक, द्युलोक और अन्तरिक्ष लोक के धनों की याचना करते हैं।

यहाँ धनों से तात्पर्य सुखों से है। ईश्वर ही सर्व सुखों का दाता माना गया है। तीनों लोकों के वासी प्राणियों को उसी के द्वारा सुख-सम्भोग मिलते हैं।

इन्द्रमिद्गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः।
इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ १३ ॥

भक्ति के गीतगायक इन्द्र का गायन करते हैं। यजमान अपने कर्मों से उसी को पूजते हैं। हमारी वाणियाँ-स्तुतियाँ उसी की उपासना करती हैं।

इस मन्त्र में इन्द्र देव के आराधना का प्रकार वर्णित है कि भावुक लोग गीतों द्वारा, शुभ कर्मकाण्ड से और प्रार्थनापूर्ण भजन पाठ से उसको पूजें और आराधें। यही प्रकार धर्म का मर्म और भक्ति का सार है।

इन्द्रा दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद्दिवि ।
वि गोभिरद्रिमैरयत् ।। १४ ।।

परमेश्वर बहुत काल तक देखने के लिए सूर्य को आरोहण किए हुए है। और अपनी विविध किरणों से मेघमाला को प्रेरित कर रहा है।

इस मंत्र का आशय यह है कि इन्द्र देव की शक्ति सूर्य द्वारा सारे सौर जगत् को जीवन और ज्योति दे रही है और उसकी किरणों से मेघमण्डल का निर्माण तथा संचालन करती है।

इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च ।
उग्र उग्राभिरूतिभिः ।। १५ ।।

हे शत्रुओं से अदम्य इन्द्र ! हमारी रक्षा कर ! और उन प्रबल शक्तियों से हमारी रक्षा कर, जो सहस्र प्रकार के युद्धों में काम में लाई जाती हैं।

इन्द्रं वयं महाधन इन्द्रमर्भे हवामहे ।
युजं वृत्रेषु वज्रिणम् ।। १६ ।।

हम यजमान जन अधिकतर लाभार्थ इन्द्र का आह्वान करते हैं। थोड़े सुख के लिए भी उसी को बुलाते हैं। वह इन्द्र यजमानों का सहकारी है। दुष्टों-दस्युओं के दमनार्थ वज्र के समान है।

वृषा यूथेव वंसगः कृष्टीरियर्त्योजसा ।
ईशानो अप्रतिष्कुतः ।। १७ ।।

कामनाओं का पूर्णकर्त्ता इन्द्र अपने जनों को प्राप्त होता है। अपने सामर्थ्य से वह सर्वशक्तिमान् है। वह याचना करने वाले भक्तों को न नहीं करता।

य एकश्चर्षणीनां वसूनामिरज्यति ।
इन्द्रः पञ्च क्षितीनाम् ।। १८ ।।

जो इन्द्र सारे मनुष्यों का एक-सा स्वामी है, वह आप अपने यजमानों के लाभार्थ यज्ञ रचता है। पंच प्रकार की मनुष्य श्रेणियों का भी वही ईश्वर है और सब समान सुख प्रदान करता है।

ऊपर के मंत्र में पंच प्रकार की मनुष्य श्रेणियों से तात्पर्य ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा अतिशूद्र से है। यहाँ अतिशूद्र उनको कहा है जो चार वर्णों के

धर्मों से बाहर हैं। पर सामान्य धर्म में उनको भी पूरा प्रवेश है। वेदाधिकार उनको भी प्राप्त है।

इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः।
अस्माकमस्तु केवलः ॥ १९ ॥

हम इस महासभा में इन्द्रदेव को सब ओर से आहूत करते हैं। वह सर्व जनों से ऊपर है अर्थात् सबका राजा है। इस संसार में केवल मात्र वही हमारा है।

एन्द्र सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम्।
वर्षिष्ठमूतये भर ॥ २० ॥

हे ईश्वर ! अपनी रक्षार्थ हमें धन से भर दे। वह धन दे जिससे विजय-लाभ हो, जो बहुत होकर बरसने वाला हो, तथा शत्रुओं को भगाने वाला हो।

इस मंत्र में इन्द्र को धनों का दाता कहा गया है और ऐसे धनों का दाता कहा गया है जो क्षत्रियों को संग्रामों में जयशील बनायें, दुष्टों का दमन करें, तथा वृद्धियुक्त हों।

वयं शूरेभिरस्तृभिरिन्द्र त्वया युजा वयम्।
सासह्याम पृतन्यतः ॥ २१ ॥

हम शूरवीर सैनिकों द्वारा और अस्त्र फेंकने वाले वीरों द्वारा हे इन्द्र ! तुझसे जुड़ते हैं। वह हमारी सेना को बलिष्ठ बनाए।

एवा ह्यस्य सूनृता विरप्सी गोमती मही।
पक्वा शाखा न दाशुषे ॥ २२ ॥

इन्द्र की सत्य युक्त वाणी गोमती है, महती है और ऐसे ही स्वादुतमा है जैसे शाखा के पके हुए फल होते हैं।

भगवान् की वाणी सच्ची और पवित्र है। गौओं वाली है। पके हुए फलों की भाँति शुभ विचारों को प्रदान करती है।

एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्रमावते।
सद्यश्चित्सन्ति दाशुषे ॥ २३ ॥

हे इन्द्र ! तेरी विभूतियाँ मेरे सदृश यज्ञकर्त्ता की रक्षा करने वाली हों और शीघ्र फल देने वाली हों।

सं चोदय चित्रमर्वाग्राध इन्द्र वरेण्यम् ।
असदित्त विभु प्रभु ।। २४ ।।

हे इन्द्र ! हमें उत्तम धन प्रदान कीजिए । वह धन जो हमारे सामने हो, हमें दीखे और नाना प्रकार का हो । तू ही हमारा सर्वशक्तिमान् प्रभु है ।

मायाभिरिन्द्र मायिनं त्वं शुष्णमवातिरः ।
विदुष्टे तस्य मेधिरास्तेषां श्रवांस्युत्तिर ।। २५ ।।

हे इन्द्र !तू माया से मायावान् शुष्ण को दूर कर । और बुद्धिमन्त याजक जन तेरे स्वरूप को जानें और उनके धन-धान्य वृद्धि को पायें ।

इस मंत्र में माया शब्द विचारणीय है । इसका आशय यह है कि **'माया'** "माङ् माने" से बना है । इसका अर्थ है जो मान करे, अहंकार से चले, वर्त्ते । उसे भगवान् अपने महत्तत्त्व के मान से मर्दन कर देते हैं । महत्तत्त्व ईश्वर की कर्त्तृत्व शक्ति है । वही शबल ब्रह्म है, हिरण्यगर्भ है । उसी से सारे लोकों की सृष्टि है । यही प्रथम "अहम्" है और यही दार्शनिकों का प्रथम अहंकार है ।

"शुष्ण" का अर्थ है शोषक । जो माया से सुखाये; अज्ञानवश भक्ति भाव धर्म धीरता का नाश करे और नैतिक कुचालों से कुटिल कार्यों में प्रवृत्त हो ।

दर्शं नु विश्वदर्शतं दर्शं रथमधि क्षमि ।
एता जुषत मे गिरः ।। २६ ।।

दर्शनीय वरुण के मैंने दर्शन किये । वह विश्व का द्रष्टा है । उसको हमारी स्तुतियाँ जागृत करें । इसमें वरुण देव को दर्शनीय कहा है । वास्तव में ईश्वर ही सर्व सुन्दर, दर्शन करने योग्य है ।

इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृलय ।
त्वामवस्यु राचके ।। २७ ।।

हे ईश्वर ! हमारी स्तुति को सुनिए, आज हमें सुखसम्पन्न कीजिए और मैं रक्षण चाहने वाला आपकी प्रार्थना करता हूँ ।

आ हि ष्मा सूनवे पितापिर्यजत्यापये ।
सखा सख्ये वरेण्यः ।। २८ ।।

हे उत्तम गुणयुक्त इन्द्र ! हमें सुख सम्पन्न बनाइए; जैसे पिता अपने प्यारे पुत्र को सुखी करता है। और जैसे प्रेमी मित्र, मनमिले मित्र से प्यार करता है।

अथा न उभयेषाममृत मर्त्यानाम्।
मिथः सन्तु प्रशस्तयः ॥ २६ ॥

हे इन्द्र ! हमारी दोनों प्रार्थनाएँ आप सुनें। सुनकर प्रसन्न हूजिए। इसमें भगवान् की स्तुति की गई है कि वह भक्तों के स्तोत्र सुनकर प्रसन्न होता है।

विभक्तासि चित्रभानो सिन्धोरूर्मा उपाक आ।
सद्यो दाशुषे क्षरसि ॥ ३० ॥

हे विचित्र गुण युक्त ईश्वर ! हमें सुख सम्पन्न् कीजिए। हम में धनों को ऐसे विभाजित करिए, जैसे नदी से कूले निकाल कर खेतों में जल बाँटा जाता है।

इस मंत्र में 'नदियों से नहरें निकालने की ओर संकेत किया गया है, जो विचारकों के लिए ध्येय है।

ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन् वाजे शतक्रतो।
समन्येषु ब्रवावहै ॥ ३१ ॥

हे इन्द्र ! तू हमारे संग्रामों में हमें सहायता दे। वे समर तुझ से मिलकर किये जायें। उनमें हम तेरे साथ मिलकर वार्त्तालाप करें।

इसमें ईश्वर से प्रार्थना की गई है कि वह अपने भक्त योद्धा वीरों से मिलकर दुष्ट दमन करने में सहायक हो।

योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे।
सखाय इन्द्रमूतये ॥ ३२ ॥

हम अवसर आ पड़ने पर सर्व शक्तिमान् का आह्वान करते हैं। वह हमारी सेना का संचालन करे। और सखाभाव से हमारी रक्षा करे।

आ नः शुष्मं नृषाह्यं वीरवन्तं पुरुस्पृहम्।
पवस्व सोम धारया ॥ ३४ ॥

हे ईश्वर ! अपनी प्रेम की धारा से हमें सींचिए, हमें सुखी बनाइए। बहुत जन चाहने वाले वंशों में हमें वीरतायुक्त मानवतेज प्रदान कीजिए।

गायन्ति त्वा गायत्रिणोर्चन्त्यर्कमर्किणः ।

ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे ॥ १ ॥

हे बहुकर्मयुक्त इन्द्र ! तुझे गाने वाले गाते हैं, पूजा करने वाले तुझे पूजते हैं। तू सबसे महान् है। यजमान तेरी कीर्त्ति को इस प्रकार विशाल करते हैं, जैसे नर्त्तक बाँस को और कुलीन स्ववंश तथा जातीय जन जातीय झण्डे को किया करते हैं।

यत्सानोः सानुमारुहद्भूर्यस्पष्ट कर्त्वम् ।

तदिन्द्रो अर्थं चेतति यूथेन वृष्णिरेजति ॥ २ ॥

जब इन्द्र एक शिखर से दूसरे शिखर पर चढ़ता है, तब वह यजमान के अर्थ को जानता है और उस पर सुखों की वृष्टि करता है। वह इन्द्र बहुत कर्मकर्त्ता है।

इस मंत्र में इन्द्र को पर्वत पर से पर्वत पर जाने वाला कहा गया है। वह एक स्थान से दूसरे स्थान पर यजमान की रक्षा के निमित्त जाता है। वह यजमानों के प्रयोजनों को जानता और पूर्ण करता है और संघों के साथ यज्ञस्थलों में आता है।

युक्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा ।

अथ न इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर ॥ ३ ॥

हे चरु आदि से तृप्त होने वाले इन्द्र ! तेरे अश्व सुन्दर केशों वाले हैं। समर्थ हैं। उनको जोड़कर हमारे कर्मक्षेत्रों में आ। हमारी स्तुतियों को सुन।

ऊपर के मंत्र में इन्द्र के घोड़ों का वर्णन है। वे केवल ईश्वरीय शक्तियाँ हैं। एक उत्पन्न करने की और दूसरी संहार की। उनके सुन्दर केश हैं जो कर्मक्षेत्रों में काम आते हैं। जिन्हें मनसा-परिक्रमा मंत्रों में बाणों के नामों से निर्दिष्ट किया है।

एहि स्तोमां अभि स्वराभि गृणीह्या रुव ।

ब्रह्म च नो वसो सचेन्द्र यज्ञं च वर्धय ॥ ४ ॥

हे वसो ! हमारे स्तोत्रों को सुनकर हमारे समीप आ। हमारे सुरीले गीतों को हमारे साथ गा। हमारे साथ बात कर। हमारे साथ मिलकर अन्न यज्ञ को बढ़ाइए।

उक्थमिन्द्राय शंस्यं वर्धनं पुरु निष्षिधे ।
शक्रो यथा सुतेषु णो रारणत्सख्येषु च ॥ ५ ॥

हम इन्द्र के लिए प्रशंसनीय स्तोत्र बनाते हैं, वह जो शत्रुओं का निषेधक है। जो हमारे पुत्रों और मित्रों में प्रेमालाप करता है।

इस मंत्र में इन्द्र की प्रशंसा बढ़ाने का वर्णन है, जो स्तुतियों द्वारा होती है। स्तुति से तात्पर्य प्रार्थना से है। प्रार्थना केवल याचना ही को नहीं कहते, किन्तु भगवद् गुण वर्णन भी प्रार्थना के अन्दर परिगणित किया जाता है।

तमित्सखित्व ईमहे तं राये तं सुवीर्ये ।
स शक्र उत नः शकदिन्द्रो वसु दयमानः ॥ ६ ॥

उसी इन्द्र को हम मित्रता के अर्थ प्राप्त होते हैं। ऐश्वर्य के लिए मिलते हैं और अति बलवीर्य के अर्थ प्राप्त होते हैं। वह धन दाता होकर हमारी रक्षा करने में समर्थ होवे।

सुविवृतं सुनिरजमिन्द्र त्वादातमिद्यशः ।
गवामप व्रजं वृधि कृणुष्व राधो अद्रिवः ॥ ७ ॥

हे धनद ! तू अतिशय निर्मल-शुद्ध अन्न हमें दे। गौओं के बाड़े हमारे लिए खोल। धन को एकत्रत कर और वज्र से दुष्ट जनों का दमन कर।

आश्रुत्कर्ण श्रुधी हवं नू चिद्दधिष्व मे गिरः ।
इन्द्र स्तोममिमं मम कृष्वा युजश्चिदन्तरम् ॥ ८ ॥

हे सर्वज्ञ इन्द्र ! तू मेरे निमन्त्रण को स्वीकार कर और मेरी स्तुति को अपने में स्थान दे। मेरे इस स्तोत्र को अपने संग जोड़, और अपने भीतर स्थान दे।

इस मन्त्र में प्रभु से प्रार्थना की गई है कि वह प्रेमियों की प्रार्थनाओं को सुनकर उनके स्तोत्रों को श्रवण करके उन्हें अपने भीतर स्थान दे। उनको सफल बनाये।

आ तू न इन्द्र कौशिक मन्दसानः सुतं पिब ।
नव्यमायुः प्र सू तिर कृधी सहस्रसामृषिम् ॥९॥

हे इन्द्र ! तू हमें प्राप्त हो। प्रसन्नता से हमारी भेंट स्वीकार कर। नूतन आयु प्रदान कर। और हमारे देश में सहस्रों ऋषि बना।

यहां कौशिक से कुशिक पुत्र इतिहासकारों ने समझा है। जिसका यास्क ने भी संकेत किया है। परन्तु कुशिक से तात्पर्य कुशा का पुत्र है, जो पुत्रेष्टि यज्ञ में उपलब्ध किया ज़ाता है।

परि त्वा गिर्वणो गिर इमा भवन्तु विश्वतः।
वृद्धायुमनु वृद्धयो जुष्टा भवन्तु जुष्टयः॥१०॥

हे ईश्वर ! हमारी वाणियां सब ओर से तुझको प्राप्त हों। अति वृद्ध आयु युक्त होवें। तथा तुझ से मिल कर जुड़ जायें।

इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः।
रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम्॥११॥

हमारी स्तुतियां इन्द्र देव को बढ़ायें। वह समुद्रवत् व्याप्त है। रथियों में महारथी है और सत्य का पति है और सब जनों का पति है

यहाँ इन्द्र को समुद्रवत् व्याप्त कहा है, इसका तात्पर्य यह है कि सागर की भांति परिपूर्ण है। वीरों में महावीर है, अर्थात् सब सेना का स्वामी है।

सख्ये ते इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते।
त्वामभि प्र णोनुमो जेतारमपराजितम्॥ १२॥

हे इन्द्र ! तू बल का पति है, तेरे मित्र भाव में हम भय न करें। तुझे हम विशेषतया प्रणाम करते हैं। तू न जीता जाने वाला योद्धा है। अन्नों का पति है।

इन्द्रमीशानमोजसाभि स्तोमा अनूषत।
सहस्रं यस्य रातय उत वा सन्ति भूयसीः॥ १३॥

स्तुतियां इन्द्र को बढ़ाती हैं, वह ईश्वर है, अपने बल से वह दुष्टों का दमन करता है। वह सहस्रों को बसाता है।

यहां सहस्रों के बसाने से आशय सहस्रों जनों से है।

उप नः सुतमा गहि हरिभिरिन्द्र केशिभिः।
सुते हि त्वा हवामहे॥१४॥

हे इन्द्र ! हम आपको अपने सुत के अर्थ यज्ञ में बुलाते हैं। तू हमारे यज्ञों में—चरुयुक्त कार्य्यों में—सम्मिलित हो। उपकिरण युक्त घोड़ों वाले रथ

में आरूढ़ होकर आ।

यहां केशों से तात्पर्य उपकिरणों से है। उपकिरणें केशों की भांति किरणों के संग है। ये भगवान् की कृपायें हैं, जो उसके न्याय रूप सूर्य्य की सहकारिणी हैं।

सदसस्पतिमद्‌भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्।
सनिं मेधामयासिषम्॥१५॥

सभाओं के स्वामी इन्द्र का हम इस सभास्थल में आह्वान करते हैं, वह इन्द्र का प्यारा है और कमनीय अति सुन्दर है। बुद्धिप्रद है और आशीर्वाद सहित है।

यहां सभाओं के स्वामी से तात्पर्य परमेश्वर से है क्योंकि वही सर्व प्रजाओं-जातियों-का पति है।

यस्माद्दृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन।
स धीनां योगमिन्वति॥१६॥

जिस देव के विना यजमान का यज्ञ सिद्ध नहीं हो सकता, वह विद्वानों सहित यज्ञ में आये। जो अधीन हैं, उनके कार्य्यों को व्याप्त करे, उनका योग दें।

हत वृत्रं सुदानव इन्द्रेण सहसा युजा।
मा नो दुःशंस ईशत॥१७॥

हे इन्द्र देव! तू सुदान युक्त है, बलिष्ठ है। और वृत्र असुर को मारने वाला है। जो जन तेरी कीर्ति को दूषित करें, उनका न्याय कर अर्थात् उनको उचित दण्ड दे।

शतं वा यः शुचीनां सहस्रं वा समाशिराम्।
एदु निम्नं न रीयते॥१८॥

जो इन्द्र सहस्रों सिरों से एक वार पूजा जाता है, वह अपने भक्तों को सुख प्रदान करता है और वह इन्द्र उन नत मनुष्यों की ओर झुक जाता है।

सहस्रं साकमर्चत परिष्टोभत विंशतिः।
शतैनमन्वनोनवुरिन्द्राय ब्रह्मोद्यतमर्चन्ननु स्वराज्यम्॥१९॥

जिस ईश्वर की पूजा सहस्रों मनुष्य मिल करते हैं और बीसियों जिसके

भजन गाते हैं, तथा सैकड़ों जिसके यश का वर्णन करते हैं, वह सर्वशक्तिमान् हमें शुद्धान्न दे, जिससे हम अपनी वृत्तियों पर पूरा शासन कर सकें।

यस्य द्यावा पृथिवी पौंस्यं महद्यस्य व्रते वरुणो यस्य सूर्यः।
यस्येन्द्रस्य सिन्धवः सश्चति व्रतं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥२०॥

उस ईश्वर को हम प्रेमपूर्ण प्रार्थना से बुलाते हैं, जो द्यावा पृथिवी का बल धारक है। जिसके नियम में चन्द्र और सूर्य काम करते हैं जिसके नियम में नदियां बहती, पवन चलती और अन्यान्य अनेक कार्य नियमपूर्वक हो रहे हैं।

नाना हि त्वा हवमाना जना इमे धनानां धर्तरवसा विपन्यवः।
अस्माकं स्मा रथमातिष्ठ सातये जैत्रं हीन्द्र निभृतं मनस्तव ॥२१॥

हे सम्पत्तियों के स्वामिन्! तुझे नाना श्रेणियों के मनुष्य पूजते हैं, धनों के धनी तुझे धनद समझते हैं और ज्ञानी जन तुझे आहूत करते हैं, तू हमको अपना स्वरूप दिखा जिससे हमारा मन प्रशान्त हो जाय। और हे जयशील! हमारे यानों में, जो यात्रार्थ प्रवृत्त हुए, आकर आरूढ़ हूजिए।

सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते।
त्वामभि प्रणोनुमो. जेतारमपराजितम् ॥२२॥

हे अन्नपते ईश्वर! तेरे सौहार्द में हम कभी भी किसी से न डरें। तू विजेता है और अपराजित है। तुझे हम प्रणाम करते हैं।

दिवक्षसो धेनवो वृष्णो अश्वा देवीरा तस्थौ मधुमद्वहन्तीः।
ऋतस्य त्वा सदसि क्षेमयन्तं पर्येका चरति वर्तनिं गौः ॥२३॥

परमेश्वर की वाक् मधुरतायुक्त है, उससे में मधुरता ले आऊं। मैं उससे अपने सब कार्यों को भली भांति करता रहूं। इसमें परमात्मा को वाणी का माधुर्य माना गया है।

अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत।
अर्चन्तु पुत्रका उत पुरं न धृष्ण्वर्चत ॥२४॥

हे मनुष्यो! तुम ईश्वर की आप पूजा करो और भली प्रकार पूजा करा। तुम्हारे पुत्र भी ईश्वर की पूजा करें। तुम में जो तत्त्व-वेत्ता हैं वे भी उसे पूजें और वह ईश्वर तुम्हें सुख-सम्पन्न करे।

तया पवस्व धारया यया पीतो विचक्षसे।
इन्दो स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥२५॥

हे इन्द्र ! तू अपने प्रेम की धारा से हमें सींच। उस धारा से सींच, जो जनों को पुष्ट करती है। और स्तोत्र गाने वाले को बल प्रदान कर।

इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम्।
अपघ्नन्तो अराव्णः ॥ २६ ॥

"अप्तुरः" जल प्रेरक शक्तियाँ जिनसे जल बनता है ईश्वर को बढ़ायें। उसकी कीर्ति विशाल हों, कि समय पर पानी पड़ता है। वे विश्व को आर्य बनायें, भद्र बनायें। और ईतियों का नाश करें।

य उग्रेभ्यश्चिदोजीयाञ्छूरेभ्यश्चिच्छूरतरः।
भूरिदाभ्यश्चिन्मंहीयान् ॥ २७ ॥

जो परमेश्वर उग्र मनुष्यों में प्रचण्ड दण्ड देता है और वीरों में वीरतर भाव भरता है, तथा जो दाताओं में महान् दाता है, वह ईश्वर हमें सहायता दे।

त्वं सोम सूर एष स्तोकस्य साता तनूनाम्।
वृणीमहे सख्याय वृणीमहे युज्याय ॥ २८ ॥

हे ईश्वर ! तू हमारे पुत्रों के देहों को बलिष्ठ बनाता है, उनको वीरता देता है। इस कारण हम तुझे सखाभाव से तथा मधुर मेली के भाव से आवरण करते हैं। आप हमारे यज्ञ कर्म में आयें।

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ।
अथा ते सुम्नमीमहे ॥ २९ ॥

हे ईश्वर ! तू हमारा पिता माता है, इस कारण हम तुझ से सुख की याचना करते हैं।

महे चन त्वामद्रिवः परा शुल्काय देयाम्।
न सहस्राय नायुताय वज्रिवो न शताय शतामघ ॥ ३० ॥

हे ईश्वर ! हम तुझको लाखों करोड़ों का लालच मिलने पर भी न छोड़ें, तेरे दृढ़ भक्त बने रहें, हमको कोई सत्ता तुझसे विमुख न कर सके।

मा चिदन्यद् विशंसत सखायो मा रिषण्यत।
इन्द्रमित्स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत ॥ ३१ ॥

हे मित्रो ! तुम शक्तिमान् ईश्वर की स्तुति करो। मिलकर उसके स्तोत्र गाओ। उससे भिन्न किसी अन्य को ईश्वर न मानो। अपने विश्वास का नाश न करो। वही एक मात्र कामनाओं का पूरक है। प्रार्थनाओं का फल-प्रदाता है।

८ ● स्त्री-धर्मः

विश्रयन्तामृतावृधः प्रयै देवेभ्यो महीः।
पावकासः पुरुस्पृहो द्वारो देवीरसश्चतः॥ १ ॥

गृह देवियाँ यज्ञ में आयें, सत्य को बढ़ाने वाली हों। भद्र पुरुषों की संगति में बैठें, महत्ता की वृद्धि करें, पवित्रता फैलायें और सादगी की शोभा सहित होवें।

इस मंत्र में स्त्रियों के मान और आचार की रीति प्रदर्शित की है, जो प्रत्येक युग में अनुकरणीय है।

शुचिर्देवेष्वर्पिता होत्रा मरुत्सु भारती।
इला सरस्वती मही बर्हिः सीदन्तु यज्ञियाः॥ २ ॥

देवियाँ यज्ञों में बैठें। वे पवित्र वस्त्रों युक्त हों, देवों में प्राप्त शोभा को बढ़ायें। भारती, इला और सरस्वती इन तीन श्रेणियों को बनायें।

यहाँ भारती से आशय देववाणी से है। सरस्वती साधारण जन भाषा, इला ग्रामीण भाषा है। देववाणी को भारती इस कारण कहते हैं कि वह भारतवर्ष की है। सर से तात्पर्य सरोवर से है जो लोग सरोवरों से चहुं ओर झीलों और समुद्रों के किनारे वास करते हैं, उनकी वाणी सरस्वती हो जाती है, अनेक जातीय मिश्रण से उसमें खारापन आ जाता है।

"इला" को ग्रामीण भाषा इस कारण समझना चाहिये कि पार्थिव कार्यों के करने से उसमें कोमलता के स्थान पर कठोर शब्द आ जाते हैं। जिससे 'इला' वत् उजड्डपन समा जाता है।

अम्बयो यन्त्यध्वरभिर्जामयो अध्वरीयताम् ।
पृञ्चतीर्मधुना पयः ।। ३ ।।

माताएँ हमारे अध्वर यज्ञकर्म को सुशोभित करें । वे अध्वर में अपने कर्मों में अच्छी रीति से भाग लें । वे वचनों द्वारा माधुर्य युक्त हों और सुसभ्या होवें ।

अमूर्या उपसूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह ।
ता नो हिन्वन्त्वध्वरम् ।। ४ ।।

जो स्त्रियाँ सूर्य के समान तेज वाली हैं, वे अपने घर से सजकर यज्ञ कर्म में आयें और उत्तम कर्मों को साधित करें ।

इस मंत्र में स्त्रियों को सूर्य सदृश तेजस्विनियाँ बताया है ।

सुप्रतीके वयोवृधा यह्वी ऋतस्य मातरा ।
दोषामुषासमीमहे ।। ५ ।।

हम माताओं का मान करते हैं, वे सत्य की श्रद्धा का घर हैं । अपने में सन्तुष्ट हैं और वयोवृद्ध हैं ।

अभि ब्रह्मीरनूषत यह्वी र्ऋतस्य मातरः ।
मर्मृ ज्यन्ते दिवः शिशुम् ।। ६ ।।

महामान्या माताएं अपने बच्चों को इस प्रकार पालें, कि वे जवान होकर सत्य का सेवन करें और ब्रह्मज्ञान तक को उपलब्ध कर सकें ।

९ ● सविता

हिरण्यपाणिमूतये सवितारमुप ह्वये ।
स चेत्ता देवता पदम् ।। १ ।।

सविता देव का हम आह्वान करते हैं । वह रक्षा करने वाला है । वह चैतन्यता युक्त है, देवताओं का घर है तथा सुवर्णहस्त है । सविता से तात्पर्य्य आत्मिक सूर्य्य है, वह हिरण्यपाणि इस वास्ते कहा जाता है, कि सोने के समान उसके शुद्ध दो हाथ जो ज्ञान और क्रियारूप हैं कहे गये हैं ।

विभक्तारं हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः ।
सवितारं नृचक्षसम् ॥ २ ॥

हम निवास के कारण सबके कर्म भाग के विभाजक सविता को बुलाते हैं; वह मनुष्यों के धर्मों कर्मों को देखता है और उनके अनुसार नाना प्रकार के फल देता है ।

ये ते पन्थाः सवितः पूर्व्यासोऽरेणवः सुकृता अन्तरिक्षे ।
तेभिर्नो अद्य पथिभिः सुगेभी रक्षा च नो अधि च ब्रूहि देव ॥ ३ ॥

हे देव ! जो तेरे मार्ग पुरातन, पवित्र, पुण्योपार्जित और सुगम हैं, उन उत्तम मार्गों से आज इस उपासना स्थान में हमें मिल और उपदेश दे ।

इस मंत्र में परमेश्वर के सम्बन्ध का वर्णन अति मधुरता के साथ किया गया है ।

१० ● विष्णुः

अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे ।
पृथिव्याः सप्त धामभिः ॥ १ ॥

विष्णु, परमात्मा, पृथिवी आदि सात धामों को धारण करता है । इस कारण देवों की रक्षा करे । वह सबसे आगे बढ़ा हुआ है ।

यहाँ विष्णु से तात्पर्य व्यापक भगवान् है । वह भूरादि सात लोकों का धारक है ।

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् ।
समूलहमस्य पांसुरे ॥ २ ॥

विष्णु परमात्मा धूलि से मिश्रित तीन पाओं से आगे बढ़ा । इसका तात्पर्य यह कि तीन पाओं से उसने अपनी माया को घेरा, जो सत्त्व, रजस् तमस् गुणमयी है । यही माया योग माया के नाम से वर्णित है ।

त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्य :।
अतो धर्माणि धारयन् ॥ ३ ॥

विष्णु ने तीन पाँव फैलाये, जो हिंसा रहित हैं। वह सब का गोप्ता है। इससे धर्म कर्म को धारण करता है।

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ४ ॥

विष्णु के कर्मों को देखो, जिससे व्रतों का विस्तार है। वह इन्द्र का मनमिला मित्र है।

यहाँ व्रतों का अर्थ धर्म, कर्म से है। इसका विस्तार ईश्वर ही ने किया है। वह जीवात्मा का मन मिलाऊ मित्र अर्थात् अन्तरात्मा है।

११ ● पदार्थ विद्या

अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तये।
देवा भवत वाजिनः ॥ १ ॥

पानियों में अमृत जीवनदायक शक्ति है। उन में औषधि है रोग नाशक बल है। उनकी स्तुति के लिए देवगुण उनको प्राप्त करते हैं।

आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे मम।
ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥ २ ॥

जल हमारे शरीर में वे पदार्थ भरे, जिन से रोग नष्ट हो जाएं। जिससे हम बहुत काल तक सूर्य्य देव को देख सकें। सूर्य को देखने का तात्पर्य यह है कि बहुत वर्षों तक जीवें।

इदमापः प्रवहत यत्किञ्च दुरितं मयि।
यद्वाहमभि दुद्रोह यद्वा शेप उतानृतम् ॥ ३ ॥

पानियो ! जो बुराइयां हम से हुई हों उनको बहा दो। जो हमने दुष्ट द्रोह किया है उसे बहा दो। जो हमें शाप लगा हैं और जो हम में अनृत आया है, उसे भी बहा दो।

पानियों में शारीरिक रोग, मानस रोग, वाणी रोग तथ सामाजिक दुर्व्यवहारों को नष्ट करने का सामर्थ्य है।

आपो अद्यान्वचारिषं रसेन समगस्महि ।
पयस्वानग्न आ गहि तं मा सं सृज वर्चसा ॥ ४ ॥

पानियों में स्नानार्थ प्रवेश करें, उन को उपयोग में लायें। उन में आयु बढ़ाने की शक्ति विद्यमान है। वे हमारे मांस को वसा के साथ प्रवृद्ध करें।

स नो महाँ अनिमानो धूमकेतुः पुरुश्चन्द्रः ।
धिये वाजाय हिन्वतु ॥ ५ ॥

अग्नि हमें धूम्रकेतु की विद्या दान करे कि जिससे हम उसको जान जायें। वह धूम्रकेतु चन्द्रमा से भिन्न नहीं है।

ऊपर के मंत्र में धूम्रकेतु को चन्द्रमा कहा है, सो सर्वथा सत्य है। धूम्रकेतु चन्द्रवत् सूर्य से प्रकाश ग्रहण करता है।

आकृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च ।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥ ६ ॥

सविता देव मनुष्यों में तथा अन्य जड़-जंगम जगत् में अमृत और मृत्यु को अपनी किरणों द्वारा स्थापन करता हुआ प्रतिदिन तेजोमय रथ द्वारा आता जाता है। और लोक लोकान्तरों का अवलोकन करता है।

इस मन्त्र में सूर्य की गति का और उसके प्रकाश से जीवन तथा मृत्यु का होना वर्णन किया है. गतिमान् तो वह है ही, पर है अपनी परिधि में। वह चक्राकार घूमता है, किसी की परिक्रमा नहीं करता। सुवर्णरथ सूर्यलोक ही को कहा गया है।

सूर्यस्येव रश्मयो द्रावयित्नवो मत्सरासः प्रसुपः साकमीरते ।
तन्तुं ततं परि सर्गास आशवो नेन्द्रादृते पवते धाम किंचन ॥ ७ ॥

सूर्य की किरणें मत्सर आदि जन्तुओं को भगा देती हैं। वे प्रसुप्त अर्थात् रोगजनक कीटाणुओं का नाश कर देती हैं। उनके साथ गति, ऊष्मा होती है। वे फैले हुए सूक्ष्मतम तार की भाँति विस्तार वाली हैं, अर्थात् तरंगों से नीचे आती है, उन तरगों का वेग अत्यन्त तीव्र है। ईश्वर के धाम की ही वह रचना है।

उपसर्प मातरं भूमिमेतामुरुव्यचसं पृथिवीं सुशेवाम् ।
ऊर्णम्रदा युवतिर्दक्षिणावत एषा त्वा पातु निर्ऋतेरुपस्थात् ॥ १ ॥

भूमि माता है, उसको पा । वह बड़ी विस्तार वाली है और व्याप्त तथा सुखदायिनी है । रेशम की भांति, कमाई हुई कोमल हो जाती है, तब वह युवती बनी रहती है । उस में धान्य प्रभूत होते हैं । दानी लोग ही तन मन धन देकर इसको दुष्टों से बचाते हैं ।

भूमि रक्षा का इस से बढ़ कर दूसरा उदाहरण देखना दुर्लभ है ।

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति ।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु ॥ २ ॥

सत्य से, ज्ञान से, दीक्षा व्रतों से तप से और ईश्वर पूजा से पृथिवी की रक्षा होती है । ये गुण उसे धारण करते हैं । वह भूमि गत काल और आने वाले समय में सब मनुष्यों की पालना करती रही और करती रहेगी ।

असंबाधं बध्यतो मानवानां यस्या उद्वतः प्रवतः समं बहु ।
नानावीर्या ओषधीर्या बिभर्ति पृथिवी न प्रथतां राध्यतां नः ॥ ३ ॥

जहां मनुष्य बिना विघ्न बाधा के अपने कार्य करते हैं, जिस पर अनेक प्रकार के अन्न उत्पन्न होते हैं, जहां ऊंचे, नीचे सुहावने बहुत स्थल पाये जाते हैं, वह भूमि हमारी मातृभूमि है ।

यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः ।
यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत् सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु ॥ ४ ॥

जिस पर समुद्र है, और जहां अन्न के लहलहाते खेत है, वह भूमि सुखदायक हो, जिस में सब प्राणी अपने जीवन का निर्वाह करते है, वह पृथिवी हमें अन्न-जल देवे ।

यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन् ।
गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा भगं वर्चः पृथिवी नो दधातु ॥ ५ ॥

जिस पर पूर्वज वीर जनों ने म्लेच्छों के मद-मान का मर्दन किया, जो गौओं,

घोड़ों का घर है ; जो ऐश्वर्य और तेज का स्थान है, वह भूमि हमें आश्रय दे।

यां रक्षन्त्यस्वप्ना विश्वदानीं देवा भूमिं पृथिवीमप्रमादम्।
सा नो मधु प्रियं दुहामथो उक्षतु वर्चसा ॥ ६ ॥

जिस की रक्षा, वीरजन, प्रमाद और नींद तक त्याग कर करते हैं, वह भूमि हम को मधुर और प्यारे सुख देवे, तथा तेज से सींचें।

यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यैलबाः।
युध्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्यां वदति दुंदुभि ॥ ७ ॥

जिस पर भद्र प्रजा के लोग गायन, वादन और नृत्य करके आमोद-प्रमोद में काल यापन करते हैं ; और जिस पर समय आने पर योद्धा शत्रुओं के करुणाक्रन्दन की गूंज गुंजा देते हैं, वह भूमि हम को सुख प्रदान करे।

ये ग्रामा यदरण्यं याः सभा अधि भूम्याम्।
ये संग्रामाः समितयस्तेषु चारु वदेम ते ॥ ८ ॥

जो ग्राम, नगर जगल हैं, जो सभाएं हैं और जो सैनिकों के लिए संग्राम-शिक्षा की शालाएं हैं, अथवा युद्ध-सभाएं हैं; वे सब मातृ भूमि को सुशोभित करने के साधन हैं।

ऊपर के मन्त्रों में मातृभूमि का यशोगान बहुत सुन्दरता और बहुत ही उत्तमता से किया गया है।

१३ पुनर्जन्म

कस्य नूनं कतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम।
को नो मह्या अदितये पुनर्दात्पितरं च दृशेयं मातरं च ॥ १ ॥

मैं निश्चय करके किस चारु-सुन्दर-देव को जानूं ; जो मुझे माता-पिता के दर्शन फिर कराये। वह अमृतों का स्वामी है। वह मेरे लिए अदिति के लिए प्यार करता है।

लोग इस मन्त्र का जो अर्थ शुनःशेप के सम्बन्ध में लगाते हैं, वे भारी

भूल करते हैं। क्योंकि शुनःशेप का अर्थ है कुत्ते की भाँति जो दास इतस्ततः भ्रमण करें। जिस का कोई घरघाट न हो। अदिति का अर्थ यहाँ बुद्धि है, क्योंकि वह किसी से खण्डित नहीं की जा सकती।

अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम।
स नो मह्या अदितये पुनर्दात्पितरं च दृशेयं मातरं च ॥ २ ॥

हे प्रकाशमय देव ! हम सब देवों में किस प्रथम मुख्यतम देव को जानें, जो हमें माता-पिता के फिर दर्शन करा कर हमारे कर्मफल को भुगाये।

यहाँ फिर माता-पिता के दर्शन से तात्पर्य पुनर्जन्म का है, वह वाक्यार्थानुकूल है।

अभि त्वा देव सवितरीशानं वार्याणाम्।
सदावन्भागमीमहे ॥ ३ ॥

हम सविता देव की प्रार्थना करते हैं; वह धनों का स्वामी है। वह सदा हमारी रक्षा करे, इस कारण कि वह समर्थ और ईश्वर है।

यह प्रार्थना पुनर्जन्म में ही घटती है, क्योंकि ईश्वर समर्थ का नाम है। उसके सामर्थ्य ही से प्राणी जन्मान्तर को पाते हैं। इसकी संगति ऊपर के दोनों मन्त्रों से भी मेल खाती है।

यश्चिद्धि त इत्था भगः शशमानः पुरानिदः।
अद्वेषो हस्तयोर्दधे ॥ ४ ॥

हे सर्वनियामक ईश्वर ! पुनर्जन्म का देना तेरे हाथों में धृत है। उसे तू प्रशंसा योग्य बना। वह निन्दा का कारण न हो और द्वेष न उत्पन्न करे।

ईश्वर की, ज्ञान और क्रियारूप दो शक्तियां हैं, जिन से पुनर्जन्म का प्रबन्ध होता है। धन का अर्थ यहां धारण करने की वस्तु है, जो पुनर्जन्म ही बनता है। जैसे जन्म की कोई भी भगवद्भक्त कभी प्रार्थना कर सकता है, वह प्रकार इस मन्त्र के, प्रशंसित, अनिन्दित और अद्वेष, इन तीन विशेषणों से प्रकट होता है।

भगभक्तस्य ते वयमुदशेम तवावसा।
मूर्धानं राय आरभे ॥ ५ ॥

हम सविता की प्रार्थना करते हैं कि वह हमें पुनर्जन्म में भगवान् का भक्त बनाये। हम उसकी रक्षा से व्याप्त रहें। वह देव धनों से ऊपर है।

इस मन्त्र में "राये' का अर्थ धन किया गया है, क्योंकि वह धनों का स्वामी है।

नहि ते क्षत्रं न सहो न मन्युं वयश्चनामी पतयन्त आपुः।
नेमा आपो अनिमिषं चरन्तीर्न ये वातस्य प्रमिनन्त्यभ्वम् ॥ ६ ॥

हे देव ! हम तेरे बल को नहीं पहुँच सकते, हम तेरे पराक्रम को नहीं पहुँच सकते। न तेरे ऐश्वर्य को पहुंच सकते हैं। यह तेरी कृपा है, जो मुझ से ऐसे समय में प्रार्थना करा रही है। मैं तो तेरा आश्रित हूँ।

१४ सामाजिकधर्म्मः

गूहता गुह्यं तमो वि यात विश्वमत्रिणम्।
ज्योतिष्कर्ता यदुश्मसि ॥ १ ॥

सभासदों को चाहिये कि गुप्ततम विषयों का कभी भी प्रकाशन न करें। सारा खाने वाले जन भूखे रह जाते हैं, क्योंकि भेद का उद्घाटन होने पर लोग विश्वास नहीं करते। प्रकाशक की निन्दा होने लग जाती है।

ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयतु विद्वान्।
अर्यमा देवैः सजोषाः ॥ २ ॥

मित्र, वरुण और अर्यमा ये तीनों हमें सुन्दर नीति के पथ पर चलायें और नैतिक मार्ग से हमें सफल बनायें। तथा नीति द्वारा देवों के साथ हमारा मेल करायें।

इस मन्त्र में नीति-निपुण मनुष्य की प्रशंसा की गई है।

वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माकमंशमुदवा भरे भरे।
अस्मभ्यमिन्द्र वरिवः सुगं कृधि प्र शत्रूणां मघवन्वृष्ण्या रुज ॥३॥

परमात्मन् ! तेरे साथ जुड़ कर हम विजय-लाभ करें। जो हमारा भाग या हमारे देश का भाग घिर गया है उसकी रक्षा तू कर, अर्थात् हमें ऐसा सामर्थ्य दे कि हम उसे स्वतन्त्रता में ले आयें। ऐसी नीति हमको प्रदान कर, कि हमारी सफलता का मार्ग सुगम हो जाय और शत्रुओं से हम बचे रहें।

त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि परि विश्वानि भूषथः सदांसि ।
अपश्यमत्र मनसा जगन्वान्व्रते गन्धर्वा अपि वायुकेशान् ॥ ४ ॥

हे राजन् ! तेरे तीन सदस्य होंगे । एक गन्धर्व, दूसरे सुकेश और तीसरा राजन्य । इन तीनों को उनके तीन काम हैं ।

एक पुरों के प्रबन्ध, दूसरे देश का प्रवन्ध करना और तीसरा सेना का प्रवन्ध करना । इनमें सब से उत्तम कर्म स्थापित कीजिए ।

अहं भूमिमददामार्यायाहं वृष्टिं दाशुषे मर्त्याय ।
अहमपो अनयं वावशाना मम देवासो अनु केतमायन् ॥ ५ ॥

परमेश्वर कहता है कि आर्य के लिए मैंने भूमि रची है । दानदाता किसान के लिए मैंने वृष्टि का नियम बनाया है । वर्षा में जलों को वरसाता हूं, और अन्त में मैं ही सब सुख प्रदान करता हूं ।

इस मंत्र में ईश्वर की सर्व शक्ति-मत्ता का वर्णन है जो अति स्पष्ट है ।

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यंचौ चरतः सह ।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवा सहाग्निना ॥ ६ ॥

जहां ज्ञान और क्रिया अथवा ब्राह्म बल और क्षात्रबल इकट्ठे चलते हैं—दोनों की यथोचित उन्नति साथ २ होती है, वह देश पुण्य देश कहा गया है । और जहां उत्तम कोटि के मनुष्य भगवद्भक्त हों, वहां इन दोनों शक्तियों का साम्य हो जाता है ।

संगच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥ ७ ॥

मनुष्यों को वेद का आदेश है कि वे लक्ष पर पहुंचने के लिए अपनी गति कर्मों क्रियाओं को बराबर बनायें । सामाजिक नियम ऐसे कड़े कठोर न रचें, जिनसे अधिक जनसंख्या लाभ न ले सके । मौलिक कर्मों में शिथिलता भी न आने दें ।

मनुष्यों को उचित है कि मिलकर बोलें अर्थात् आदर्श प्राप्ति के अर्थ एकवचन होकर बल लगावें । व्यर्थ में वाद विवाद न करें । कलुषित कलह के कुण्ड के कीड़े न बनें । प्रेम से सम्वाद करें ।

मनुष्यों को चाहिए कि मन से जानने योग्य बातों में ऐसे बर्तें, जैसे शान्त स्वभाव ज्ञानी जन वर्त्ता करते हैं । यही देवभाग अर्थात् देवों का कर्म है, जिसकी उपासना-आराधना समझ वाले विद्वान् सदा से करते आते हैं ।

ऊपर के मन्त्र में संगति, सम्वाद और संमनन की शिक्षा की गई है। और यही सामाजिक जीवन की जड़ है। व्यर्थवाद का इससे निषेध सहज से समझा जा सकता है।

समानो मंत्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मंत्रमभि मंत्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ॥ ८॥

तुम्हारे विचार परस्पर मिल जायें। समितियां-उपसभायें एकमत हों। तुम्हारे निर्णय एकता में होवें और चित्त परस्पर मिले-जुले रहें। जो मतामत स्थिर करो, वह समान सब को मान्य हो उसमें पक्षपात न हो और बड़ी भारी संख्याओं में इकट्ठे होकर ईश्वर पूजन करो।

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥ ९ ॥

तुम्हारे अध्यवसाय निश्चय बराबर हों। आपापन्थीपन न हो। हृदयगत भावनाएँ प्रेम प्रीति रीति नीति आदि निर्दोष हों। जिस प्रकार समाज में सुख की मात्रा बढ़े वैसा तुम विचारो।

ऊपर के मन्त्रों में सामाजिक जीवन को सुगठित करने के जो सूत्र वर्णन किए गए हैं, वे कितने सरल, सुन्दर और उपयोगी हैं, यह बात उनके पाठ-मात्र से सहज में समझी जा सकती है।

समानी प्रपा सह वो अन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि।
सम्यंचोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः ॥ १० ॥

मनुष्यों की पनशालायें पानी पीने के बर्त्तन और स्थान अभिन्न हों। भोजन समय आसन और पंक्तियों में भेदभाव न हो। कार्यकाल में एकता की रस्सी में सब आबद्ध हो जायें। ईश्वर की पूजा के निमित्त धर्म-मन्दिरों में इस प्रकार मिल कर बैठें, जैसे चक्र की धुरा में छोटे २ डण्डे लगे हुए होते हैं।

इस मंत्र में उपदेश दिया गया है कि सामाजिक जीवन में भेदबुद्धि सर्वथा नहीं होनी चाहिए। खान पान, पहराव, और वर्त्ताव सब का एक सा हो। ईश्वर की पूजा में सब अपने आप को उस परम प्यारे पिता परमेश्वर के पुत्र मानें और जानें।

अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायो मनोजवेष्वसमा बभूवुः।
आदघ्नास उपकक्षास उ त्वे ह्लदा इव स्नात्वा उ त्वे ददृश्रे ॥ ११ ॥

मित्र मण्डल में कई ऐसे जन होते हैं ज्ञा
हैं, जैसे नदी में कोई किनारे पर स्नान करता है, कोई थोड़ा आगे जाता है और कोई बड़ी गहरी डुबकी लगाकर नहाता हैं। पर हैं सभी स्नातक। इसी प्रकार ज्ञानियों को उचित है कि थोड़ा जानने वाले जनों का अपमान न करें—उनको तुच्छ न समझें। वास्तव में मानस वेगों-विचारों में बराबरी नहीं हो सकती। समानता तो देखी-सुनी बातों में हुआ करती है।

सर्वे नन्दन्ति यशसाऽऽगतेन सभासाहेन सख्या सखायः ॥ १२ ॥

जो यश सभासदों में से एक जन को मिले उसे चाहिए कि वह उस यश को अपने भाइयों में बांट दे। उसका अभिमान न करे। यह समझे कि यह सब की कृपा से मुझे प्राप्त हुआ है।

१५ ● मधुरता

मधुवाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः।
माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः॥ १ ॥

परमेश्वर की कृपा से वायु मधुर-मधुर, मन्द-मन्द बहे। नदियों का बहाव मधुर-शान्त होवे। अन्न मधुर-मीठे और पौष्टिक हों।

मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवं रजः।
मधु द्यौरस्तु नः पिता॥ २ ॥

रात्रि हमारे लिए मधुर-प्रशान्त-हो, प्रभात मधुर बन जाय। पृथिवी-कूपादि-का जल हमारे लिए मधुर बने और सब का पालनकर्त्ता सूर्य अपने प्रकाश से हमें मधुरता दे।

मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमां अस्तु सूर्यः।
माध्वीर्गावो भवन्तु नः॥ ३ ॥

हमारे उद्यानों, वनों, उपवनों की वनस्पतियां मीठी-रसीली हों। हमारी गायें मीठा, नीरोग दूध देने वाली होवें।

मधोर्धारामनु क्षर तीव्रः सधस्थमासदः ।
चारुर्ऋताय पीतये ॥ ४ ॥

हे ईश्वर ! तू हमारे कर्म में मधु-अमृत की धारा प्रवाहित कर । हमारे सभा स्थान में आकर विराजमान हो । सुन्दरता और सत्य की तृप्ति हमें प्रदान कर ।

जिह्वाया अग्रे मधु मे जिह्वामूले मधूलकम् ॥ ५ ॥

मेरी जीभ पर मधुवर्षिणी वाणी वास करे । कण्ठ में मधुर, कोमल, स्वर उत्पन्न हो ।

मधुमन्मे निक्रमणं मधुमन्मे परायणम् ।
वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधुसंदृशः ॥ ६ ॥

मेरा आना-जाना मीठा सुसभ्य हो । मेरा रहना-सहना सुरीतियुक्त हो । मैं वाणी मधुमती बोलूं और इन सारे कामों से सभा-समाज में मधु समान माना जाऊं ।

इन मन्त्रों में यह भलीभांति दर्शाया गया है कि मनुष्य को सामाजिक जीवन में सुसभ्य, सुशील और मधुर कर्मकारी होना चाहिये । परुष जीवन, कठोर वचन, कुचाल-ढाल सामाजिक जीवन के नितान्त विपरीत है ।

१६ ● ईश्वरस्वरूप वर्णन

त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि ।
अप नः शोशुचदघम् ॥ १ ॥

ईश्वर ! तू सारे विश्व में व्यापक है, तू सब का अन्तर्यामी है । और सर्व शक्तिमान् है, इस कारण कृपया हम से पाप दूर कीजिये ।

वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभि श्रीः ।
इतो जातो विश्वमिदं विचष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण ॥ २ ॥

हम, परमेश्वर जो सारे नरों में नारायण है, उस के ज्ञान में लीन हों, वह आनन्द धाम है और सारे भुवनों की शोभा है । उसीसे यह सारा विश्व

उत्पन्न हुआ है। वह सब को देखता है और वह सूर्य द्वारा प्रजाओं का पालन-पोषण करता है।

नाहं तन्तुं न वि जानाम्योतुं न यं वयन्ति समरेऽतमानाः।
कस्य स्वित्पुत्र इह वक्त्वानि परो वदात्यवरेण पित्रा॥ ३॥

मैं उस परमात्मा का पूजन करूं, जो सब का धारक है, सब में ओत प्रोत है, सब में विस्तृत है। मैं उस को जानूं, जो धनों का स्वामी है और जो सब का पिता है।

इस मन्त्र में परमात्मा के स्वरूप का निरूपण है, जो अत्युत्तम है।

अयं होता प्रथमः पश्यतेममिदं ज्योतिरमृतं मर्त्येषु।
अयं स जज्ञे ध्रुव आनिषत्तोऽमर्त्यस्तन्वा वर्धमानः॥ ४॥

परमेश्वर मेरा प्रथम पति है! सूर्य की प्रथम ज्योति है, और मनुष्यों में अमृत है। मैं उसको नमस्कार करता हूं, वह अपने सामर्थ्य के विस्तार से मुझे सुरक्षित रक्खे।

ध्रुवं ज्योतिर्निहितं दृशये कं मनो जविष्ठं पतयत्स्वन्तः।
विश्वे देवाः समनसः सकेता एकं क्रतुमभि वि यन्ति साधु॥ ५॥

परमेश्वर निश्चित प्रकाशमय है। दर्शन के लिए वह हृदयंगमा ज्योति है। वह आनन्द स्वरूप है और मन से भी अधिकतम वेगवान् है। सारी शक्तियां उसके समीप सिर झुकाती हैं वह एक है, कर्मरूप है, और सर्वश्रेष्ठ है।

तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः।
हरिरेति कनिक्रदत्॥ ६॥

तीन प्रकार के जप किये जाते हैं। एक वाणी से, दूसरा मन से, तीसरा चिन्तनरूप से। इन तीनों प्रकार के जपों में हरि नाम गूंजता है।

यहां धेनु से वाणी का जप लक्षित है। "मिमन्ति" से मानस और "ईरते" से चिन्तनजप ग्राह्य है।

समीचीना अनूषत हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः।
योनावृतस्य सीदत॥ ७॥

भद्रजन-सन्त एकत्र हो अपने सत्सगों में हरि को जप द्वारा ऐसे आहूत करते है, जैसे गायें चरने के लिए पर्वत स्थलों पर जाया करती हैं।

मती जुष्टो धिया हितः सोमो हिन्वे परावति।
विप्रस्य धारया कविः॥ ८॥

सर्वज्ञ ईश्वर कर्मों में मिलता है। वह प्रियस्वरूप है। ज्ञानियों का धारण करने वाला तथा कवि है।

इस ऋचा में ईश्वर को कवि कहा है। यहाँ कवि का अर्थ कविता करने वाला ही नहीं है किन्तु सर्वज्ञ भी है।

युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्वि श्लोक एतु पथ्येव सूरेः।
शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः ॥ ९ ॥

हम दोनों जिज्ञासु, जो गुरु शिष्य भाव से परमात्मा को नमस्कार करते हैं, हमारी प्रार्थनायें सूर्य के मार्ग की भाँति बिना रोक-टोक की हो जायें। उनमें कोई दुष्टभाव दुर्वासना न आये। सारे मनुष्य अमृत परमेश्वर के पुत्र हैं, वे सुनें और जो दिव्य धामों में निवास करते हैं; वे भी सुनें अर्थात् सभी परमात्मा की प्रार्थना से अपना कल्याण साधित करें।

ब्रह्मणा भूमिर्विहिता ब्रह्म द्यौरुत्तरा हिता।
ब्रह्मेदमूर्ध्वं तिर्यक् चान्तरिक्षं व्यचो हितम् ॥ १० ॥

ब्रह्म ने भूमि बनाई, उसी ने प्रकाशमय लोक रचे। वही ऊपर और तिरछे लोकों में व्याप्त है। उसीने आकाश का निर्माण किया।

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः। ११ ॥

वही ईश्वर इन्द्र है, मित्र है, वरुण है और अग्नि है। उसी को विचारशील, दिव्य और सुपर्ण कहते हैं। वही गरुत्मान् सबसे बली है। यम और सूत्रात्मा वायु उसीको कहते हैं। वह है एक, परन्तु ज्ञानी जन उसे इन अनेक नामों से पुकारते हैं। उसके अन्य भी अनेक नाम हैं।

सुपर्ण का यहाँ तात्पर्य है ज्ञान और क्रिया जिसके स्वभाव में सम्मिलित हैं। यही दोनों जिसके पंख हैं।

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥ १२ ॥

वह ईश्वर अग्नि है, आदित्य है वायु है और वही चन्द्र है। वही शुक्र शुभ्र तेजोमय है और आपः तथा प्रजापति है।

इस मन्त्र में प्रकट किया है कि सूक्तों में जिन नामों से ईश्वर की स्तुति की गई हैं, वे सभी उस अन्तर्यामी के सार्थक नाम हैं।

अकामो धीरो अमृतः स्वयंभू रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः ।
तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम् ॥ १३ ॥

परमेश्वर पूर्ण है, धीर है, स्वयंभू स्वतन्त्र सत्ता है, आनन्द से तृप्त है और अखण्ड है। ऐसे, सदैव एक रस से रहने वाले आत्मा को जानकर ज्ञानी मृत्यु से भयभीत नहीं होता।

१७ श्रद्धा

श्रद्धा उस आस्तिक बुद्धि का नाम है जो आत्मा, परमात्मा और लोक-परलोक में विश्वास रखती है। जो सत्य धारण करने वाली हो और पाप पुण्य के कर्मफल को मानती हो। श्रद्धा आत्मा की वृत्ति है। जब वह पुष्ट होती है तो मनुष्य श्रद्धालु और विश्वासी बन जाता है तथा अपने धर्म-कर्म पर सर्वस्व वार देता है। प्राय: बलिदान इसी वृत्ति की समुन्नति होने पर होते हैं। यह वृत्ति पारिवारिक प्रेम की भाँति पोषण पाकर मनुष्य को महाराज से मिलाती है। इसका अनुशीलन उसी प्रकार करना चाहिए जिस प्रकार अन्यान्य वृत्तियों का किया जाता है।

जो जन इस वृत्ति का अनुशीलन नहीं करते, वे प्रेम भक्ति हीन हुआ करते हैं। उनके भीतर भावना का भवन नहीं बन पाता। ऐसे जन सदा शुष्क तर्क तथा कुतर्क का अवलम्बन करके काम निकालते हैं, पर अन्दर से नास्तिक, अर्द्धनास्तिक तथा शंकाशील बने रहते हैं। उनको भगवती भक्ति-भागीरथी में स्नान करने का सुअवसर नहीं मिलता।

श्रद्धयाग्निः समिद्ध्यते श्रद्धया हूयते हविः ।
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि ॥ १ ॥

श्रद्धा से अग्निहोत्रादि यज्ञकर्म किये जाते हैं। बलिदान श्रद्धा से होता है। ऐश्वर्य का मस्तक श्रद्धा है। वचन से मैं जानता हूँ कि श्रद्धा सब कार्यों में प्रधानता रखती है।

प्रियं श्रद्धे ददतः प्रियं श्रद्ध दिदासतः ।
प्रियं भोजेषु यज्वस्विदं म उदितं कृधि ॥ २ ॥

श्रद्धा से दाता का भला होता है। दिलाने वाले का भी भला होता है। महाभोजों में श्रद्धा से काम चलता है और बड़े भारी यज्ञ भी श्रद्धा से किये जाते हैं।

इस मंत्र में श्रद्धा का महत्त्व उत्तमता से वर्णन किया है और दर्शाया है कि धार्मिक काम तो दूर रहे, सामाजिक कार्य भी श्रद्धा बिना नहीं निभ सकते हैं।

यथा देवा असुरेषु श्रद्धामुग्रेषु चक्रिरे ।
एवं भोजेषु यज्वस्वस्माकमुदितं कृधि ॥ ३ ॥

जैसे देवगण असुरों में और उग्रों में श्रद्धा करते हैं ऐसे ही सहभोजों और धर्मक्षेत्रों में भी श्रद्धा होनी उचित है। यह मैं जानता हूं।

यहां असुर का अर्थ है जो मनुष्य मादक द्रव्य का सेवन न करता हो। उग्र का अर्थ है तीव्र कर्मचारी। विद्वान् लोग दो ही श्रेणियों को श्रेष्ठ मानते है। एक वह जो अमादक वस्तुओं का सेवन करने वाली है। दूसरी वह जिसके भाव ऊंचे हैं अर्थात् जो जन पक्के और सच्चे हैं। इन्हीं दोनों श्रेणियों के जनों को भद्र जन कहा जाता है।

श्रद्धां देवा यजमाना वायुगोपा उपासते ।
श्रद्धां हृदय्याकूत्या श्रद्धया विन्दते वसु ॥ ४ ॥

श्रद्धा की उपासना तीन प्रकार के जन करते हैं। एक तो वे मनुष्य जो देव हैं। ज्ञान, ध्यान, विचार, विवेक और शुभ गुण युक्त हैं। दूसरे वे जो यजमान हैं। जो यज्ञ करते हैं। सेवा में तत्पर रहते हैं और परहित जिनमें हुआ करता है। तीसरे वे है जो वायु को गुप्त कर लेते हैं अर्थात् जो प्राणायाम, धारणा ध्यान और समाधि तक पहुँच जाते हैं।

श्रद्धा हृदय की वृत्ति है जो पुण्य पाप के विचार तथा उससे होने वाले फल के विचार से उत्पन्न हो जाती है। धन भी इसी से मिलता है।

श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यंदिनं परि ।
श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः ॥ ५ ॥

प्रातःकाल हम श्रद्धा को आहूत करें। मध्याह्न समय उसे निमंत्रित करें और सूर्यास्त काल में भी उसी को बुलायें। हे श्रद्धा ! हमें श्रद्धायुक्त बना।

यहाँ तीन काल से तात्पर्य बहुत वार से है कि हम बार-बार परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना उपासना करके अपनी गति मति को उन्नत करें।

मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम्।
अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुत श्रुधि श्रद्धिवं ते वदामि ॥ ६ ॥

हे न मानन वालो ! मैं तुम्हें कहता हूँ श्रद्धापूर्वक सुनो। मैं तुम्हें श्रद्धा करने योग्य वार्ता कहता हूँ। वह यह है कि प्राणी मुझ ही से अन्न पाते हैं। मैं ही सबका अन्नदाता हूँ। प्राण मुझ से लेते हैं। सुनने की शक्ति भी सबको मैंने दी है। देखने का बल भी मुझ ही से सबको मिला है।

इस मत्र में परमात्मा सबको उपदेश देता है कि सारे कार्यों का तंत्र मेरे आधीन है। मुझ पर विश्वास करो। कुतर्क से काम न लो।

१८ ● पारिवारिक प्रेम

सं वो मनांसि संव्रता समाकूतीर्नं मामसि।
अमी ये विव्रता स्थन तान् वः संनमयामसि ॥ १ ॥

हे मनुष्यो ! मैं ईश्वर तुम को उपदेश करता हूँ कि तुम अपने मनों को सुन्दर बनाओ। अपने विचारों को मलिन न होने दो। तुम्हारे संकल्प श्रेष्ठ हों। उनमें पापवृत्ति का वास न हो। जो जन तुम्हारे में व्रत और आचार से हीन हैं उनको मैं उनके कर्मानुसार दण्ड दूंगा।

इस मन्त्र में ईश्वर आज्ञा देता है कि मनुष्य अपने मनों, विचारों को सुधारें, और यदि न सुधार करेंगे तो दण्ड का भय प्रदर्शित करता है।

अहं गृभ्णामि मनसा मनांसि मम चित्तमनुचित्तभिरेत।
मम वशेषु हृदयानि वः कृणोमि मम यातमनुवर्त्मान एत। २ ॥

मैं तुम्हारे मनों को मन द्वारा ग्रहण करता हूँ। मेरे चित्त के अनुकूल तुम्हारे चित्त चलें, वर्तें। तुम्हारे हृदय मेरे वश में हैं। मेरे चले हुए मार्ग पर तुम चला करो।

इस मंत्र में यह भाव प्रदर्शित किया है कि माता-पिता आदि वृद्ध बन्धु-बान्धव अपने आत्मीय जनों को इस प्रकार की रीति सिखायें कि जिससे पारिवारिक जीवन सुदृढ़ और सुन्दर हो जाये।

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्नया ॥ ३ ॥

तुम्हारे हृदय सरल हों, मन निष्कपट हो जायें। तुम परस्पर द्वेष न करो, किन्तु ऐसा प्रेम करो, जैसा प्रेम नवप्रसूता गाय अपने बछड़े बछड़ियों के साथ करती है।

ऊपर के मन्त्र में गृहस्थ में जैसा सुन्दर, स्वादु, स्नेह होना चाहिए, उसका वर्णन किया गया है।

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम् ॥ ४ ॥

पुत्र पिता के चरण-चिह्नों पर चलें, माताओं का मन प्रेम से परिपूर्ण हो। पत्नी अपने पति के साथ मधुरतामयी तथा शान्ति देने वाली बातचीत करे।

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यंचः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ॥ ५ ॥

भाई अपने भाई के साथ लड़ाई-झगड़ा न करे। बहिनें परस्पर न झगड़ें। सारे कार्य मिल जुल कर करते हुए घरों में भद्र सभ्य भाषा भाषण करें।

ऊपर के दोनों मन्त्रों में पारिवारिक सम्बन्धों को परिपुष्ट करने के जो सर्वोत्तम साधन हैं उनको दर्शाया गया है।

येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः।
तत्कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः ॥ ६ ॥

जिसमें देव आपस में न झगड़ें, और परस्पर द्वेष, वैर न बढ़ायें, वह उपाय ब्रह्मज्ञान अर्थात् ईश्वर पूजन द्वारा जानना चाहिये। वह यथार्थ ज्ञान आत्मा-परमात्मा का ज्ञान वेद में वर्णन किया है।

ऊर्जं बिभ्रद् वसुवनिः सुमेधा अघोरेण चक्षुषा मित्रियेण ।
गृहानैमि सुमना वन्दमानो रमध्वं मा बिभीत मत् ।। १ ।।

वे घर उत्तम हैं और निवास योग्य हैं, जिनमें बल, बुद्धि और धन पुष्कल पाया जाये । जिनमें आते समय प्रशंसा के वाक्य मुख से निकलें । जिनमें बसने वाले बन्धुओं की आँखों में प्यार की कोमलता हो । और जो गृह रमण करने आराम करने के योग्य होवें । जहाँ जाने में मन में आमोद-प्रमोद उत्पन्न हो सके ।

इमे गृहा मयोभुव ऊर्जस्वन्त पयस्वन्तः ।
पूर्णा वामेन तिष्ठन्तस्ते नो जानन्त्वायतः ।। २ ।।

उन हमारे घरों को आगन्तुक अभ्यागत जन जानें कि ये गृहस्थियों के घर हैं जिनमें सुख सम्पत्ति प्रभूत हो, शक्ति सम्पन्न नर-नारी पाये जायें । दूध बहुत और अच्छा मिले । जो धन-धान्य से पूर्ण होवें ।

येषामध्येति प्रवसन् येषु सौमनसो बहुः ।
गृहानुप ह्वयामहे ते नो जानन्त्वायतः ।। ३ ।।

अतिथि गण हमारे गृहों को जानें कि ये लक्षण सद्गृहस्थों के घरों के हैं कि जिनमें परस्पर बहिनों-भाईयों में प्रेम-प्रीति बहुत है, जिन घरों को विदेश में जाकर भी मनुष्य मन में स्मरण करता रहा है ।

उपहूता भूरिधनाः सखायः स्वादुसंमुदः ।
अक्षुध्या अतृष्या गृहा मास्मद बिभीतन ।। ४ ।।

वे आवास स्थान हमें विश्राम दें जिनमें सज्जन मित्र आते हैं । सुस्वादु भोजन पाकर सुख से विश्राम लेते हैं । जहाँ भूखे, प्यासे, धनी-निर्धन को, अवेरे सवेरे खान-पान प्राप्त हो जाता है ।

उपहूता इह गाव उपहूता अजावयः ।
अथो अन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु नः ।। ५ ।।

वे गृह उत्तम हैं जिनमें गायें आ-जा रही हों । जहाँ भेड़, बकरियाँ वास करती हों और जहाँ उत्तम कोटि के भोजन बनते हों ।

सूनृतावन्तः सुभगा इरावन्तो हसामुदाः ॥ ६ ॥

वे घर अत्यन्त अच्छे हैं जहाँ सत्य का व्यवहार है। कोई झूठ से काम नहीं लेता। जहाँ सौभाग्य सूर्य सदा उदित रहता है और भोजन सामग्री प्रचुर विद्यमान होवे। और जो मित्र तथा बन्धुओं के गमनागमन से सुप्रसन्न तथा हँसते हुए दिखाई दें।

ऊपर के मन्त्रों में आर्यगृहों का जो चित्र-चित्रण किया है वह अतीव सुन्दर और अत्यन्त उत्तम है। वास्तव में ऐसे घर ही घर कहे जाने योग्य हैं। आर्यों की गृह-व्यवस्था किस प्रकार होनी चाहिये, उसका दिग्दर्शन इन मन्त्रों में अति मधुरता के साथ किया गया है।

यदन्तरं तद्बाह्यं यद्बाह्यं तदन्तरम् ॥ ७ ॥

घर में जितने भी बन्धु-बान्धव वास करते हों उनका कर्त्तव्य है कि वे छल-कपट रहित व्यवहार, वर्त्ताव करें, विश्वास से काम लें।

२० ● ब्रह्मचर्य महिमा

आर्यों की आश्रम मर्यादा में ब्रह्मचर्य आधार शिला है। उसके सहारे ही सारे आश्रमों को समझना चाहिए। ब्रह्मचर्य के बिना आश्रमों का धर्म निभाना नितान्त कठिन है। मानव जीवन की शक्ति और जड़ भी ब्रह्मचर्य है, जितना कोई जितेन्द्रिय होगा उतना ही वह अधिक जीयेगा, उतना ही अधिक सुखी और सुप्रसन्न रहेगा। जो लोग बाल्यकाल में अपने जीवन को ब्रह्मचर्य के व्रत से पक्का बना लेते हैं वे अन्त तक सामर्थ्य, साहस और पुरुषार्थ के धाम बने रहते हैं।

वेदाध्ययन के लिए जो विनय पालन, संयम धारण, व्रतोपवास आदि क्रिया कलाप किया जाता है वह सब ब्रह्मचर्य है। आत्म-संयम सबसे बड़ा नियम है जिसके पालन करने से मनुष्य सुगमता से ब्रह्मचारी से बन सकता है।

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति।
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते ॥ १ ॥

तपस्वी और जितेन्द्रिय रह कर ही राजा राज्य की रक्षा कर सकता है। आचार्य भी ब्रह्मचर्य के बल से विद्या पढ़ाने में समर्थ होता है और शिष्यों को पवित्र जीवन का उपदेश देने योग्य बनता है, अन्यथा उलटे मार्ग पर ही डालेगा और शिष्य के जीवन का सर्वनाश कर देगा। अब्रह्मचारी राजा भी प्रजाओं में विश्वास और सम्मान का पात्र नहीं बन पाता।

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत् ॥ २ ॥

ब्रह्मचर्य और तप से ही ज्ञानी लोग मृत्यु का हनन करते हैं अर्थात् जन्म-मरण के बन्धनों को काटते हैं। ब्रह्मचारी राजा ही देवों द्वारा पृथिवी को स्वर्गीय सुख से भरपूर कर देता है।

पृथक् सर्वे प्राजापत्याः प्राणानात्मसु बिभ्रति।
तान्त्सर्वान् ब्रह्म रक्षति ब्रह्मचारिण्या भृतम् ॥ ३ ॥

प्रजापति परमेश्वर ने सब प्राणियों में प्राण धारण करने की शक्ति पृथक्-पृथक् दी है, परन्तु ब्रह्मचारी से धारित ब्रह्मचर्य व्रत उन सबको सहायता प्रदान करता है, उनकी रक्षा करता है।

ऊपर के मंत्र में यह भाव दिखाया है कि ईश्वर की प्रजा की रक्षा के निमित्त, मनुष्य के लिए, बल, बुद्धि सम्पन्न होना अत्यावश्यक है। इसी से मनुष्यों की पालना होती है।

ब्रह्मचारी ब्रह्म भ्राजद् बिभर्ति तस्मिन् देवा
अधिविश्वे समेताः ॥ ४ ॥

ब्रह्मचारी इस व्रत के परिपालन से परिपुष्ट और प्रकाशित जान पड़ता है। उसमें सारे ज्ञानी जन श्रद्धा रखते हैं और गुणी जन उसके पास जिज्ञासा करने के लिए दूर-दूर से चलकर आते हैं।

प्राणापानो जनयन्नाद् व्यानं वाचं मनो हृदयं ब्रह्ममेधाम्।
तस्माद्वै ब्राह्मणानां गौदुराधर्षा विजानता ॥ ५ ॥

प्राण और अपान दोनों ठीक होकर उचित मात्रा में वहने लगते हैं, यदि ब्रह्मचर्य व्रत पालन किया जा सके। व्यान जो नाभि प्रदेश में प्राण निवास करता है वह भी इस व्रत से स्वच्छ हो जाता है। वाणी में तेज और मिठास समा जाता है। हृदय खिल जाता है, मन शुद्ध हो जाता है और बुद्धि में प्रतिभा प्रभा चमकने लगती है। इसी कारण ब्राह्मणों की वाणी का निरादर नहीं किया करते, क्योंकि वह ब्रह्मचर्य व्रत के पालन से ओजस्विनी हो जाती है।

२१ ● ईर्ष्या दोष दर्शन

ईर्ष्याया ध्राजिं प्रथमां प्रथमस्या उतापराम् ।
अग्निं हृदयं शोकं तं ते निर्वापयामसि ।। १ ।।

वेद उपदेश करता है, हे मनुष्य ! ईर्ष्या बहुत बुरी है । इसकी गति-वेग पहली आग है, जो स्वात्मा को दहन करती हैं और अपर दूसरे को जलाने में समर्थ यह नहीं हो सकती, क्योंकि यह ऐसी अग्नि है, जो ईर्ष्यायुक्त मनुष्य के हृत्कोश को रात-दिन दग्ध करती रहती है । यही बड़ा भारी शोक है, चिन्ता है । यह दुष्ट वृत्ति तुम में भी नहीं आनी चाहिये ।

यथा भूमिर्मृतमना मृतान्मृतमनस्तरः ।
यथोत मम्रुषो मन एवेर्ष्योर्मृतं मनः ।। २ ।।

जैसे भूमि जड़ ज्ञान विवेक शून्य है ऐसे ही ईर्ष्यावान् मनुष्य भी बुद्धि-विवेक से भ्रष्ट हो जाता है । उसमें जड़ता, कठोरता आ जाती है । मरे हुए मनुष्य से भी ईर्ष्यायुक्त का मन मरा मिटा हुआ माना जाता है । उसमें क्रूरता-कृपणता घर कर लेती है और द्वेष से उसका अन्तःकरण सदा नष्ट सा दिखाई देता है ।

अदो यत् ते हृदि श्रितं मनस्कं पतयिष्णुकम् ।
ततस्ते ईर्ष्यां मुंचामि निरूष्माणं दृतेरिव ।। ३ ।।

वह जो तुम्हारे हृदय में रहने वाला ईर्ष्याभाव है, बड़ा पतित करने वाला है, मन को बिगाड़ने वाला है । इस दुष्ट ईर्ष्या भाव से अपने हृदय को ऐसे खाली कर लो, जैसे वायु निकाल कर मशक को खाली कर लेते हैं ।

दूसरे की वृद्धि को देखकर, शोभा को देखकर, मान प्रतिष्ठा को देखकर, और गुण ज्ञान को अवलोकन करके जो तुच्छ हृदय के मनुष्य में मानस द्वेष उत्पन्न होता है, उसे ईर्ष्या कहा है । इसके दोषों को ऊपर वर्णित मन्त्रों में भली प्रकार दिखाया गया है ।

दान से संसार के सारे काम चलते हैं। दान हृदय की उदारता रूप वृत्ति का प्रकाश है। दीन, दुखी, अंगहीन जन को, भूख प्यास से पीड़ित देखकर, जो करुणा का भाव उत्पन्न होता है उसको उदार भाव से मिलाने पर दान दिया जाता है। ऐसा दान करना प्रत्येक नागरिक का, सभ्य का सामाजिक कर्त्तव्य है। ऐसे ही दान का वर्णन इस आगे उद्धृत सूक्त में किया गया है। और मोक्षप्रद दान का भी एक मन्त्र में अत्युत्तम संकेत है।

न वा उ देवाः क्षुधमिद्वधं ददुरुताशितमुपगच्छन्ति मृत्यवः।
उतो रयिः पृणतो नोपदस्यत्युतापृणन्मर्डितारं न विन्दते ॥ १ ॥

देवों ने भूख नहीं दी किन्तु मृत्यु दी है, जो मनुष्य को सुखा-सुखा कर मारती है। जो खाया जाता है वह मर जाता है अर्थात् भोगा हुआ अन्न नष्ट हो जाता है, तो फिर क्यों न उदार होकर सुदान किया जाये। जो जन, धन से दुःखी जन को पुष्ट करता है, वही सुख पाता है। कृपण जन को स्वर्ग अपवर्ग का सुख नहीं मिलता।

इस मन्त्र में देवों से तात्पर्य ईश्वरीय नियमों से है। उन नियमों के आधीन ही सम्पूर्ण कार्य हो रहे हैं।

य आध्राय चकमानाय पित्वोऽन्नवान्सन्रफितायोपजग्मुषे।
स्थिरं मनः कृणुते सेवते पुरोतोचित्स मर्डितारं न विन्दते ॥ २ ॥

जो मनुष्य दुर्बल, दीन, दुःखी जन को अन्न प्रदान नहीं करता, आगे खड़े को, घर पर आये को देखकर मन कड़ा बना लेता है, अपने काम-धन्धे में मग्न रहता है, ऐसे कठोर अन्तःकरण के मनुष्य को सुख प्राप्त नहीं होता।

न सखा यो न ददाति सख्ये सचाभुवे सचमानाय पित्वः।
अपास्मात्प्रेयान्न तदोको अस्ति पृणन्तमन्यमरणं चिदिच्छेत् ॥ ३ ॥

वह मित्रता के योग्य जन नहीं हो सकता, जो समय आ पड़ने पर मित्रों को अन्न से सहायता नहीं देता। जो सेवा करने वाले को उसका भाग न दे, वह भी दुःख का भागी हो जाता है, और उसे मित्र तथा सेवक त्याग देते हैं। अन्य जनों का आश्रय लेकर अपना निर्वाह कर लेते हैं।

स इद्भोजो यो गृहवे ददात्यन्न कामाय चरते कृशाय ।
अरमस्मै भवति यामहूता उतापरीषु कृणुते सखायम् ।।

वही मनुष्य भोजन वाला है जो अधिकारी, अतिथि को अन्न भेंट करता है, और उस अधिकारी को भेंट करता है जो परोपकार के लिए पर्यटन करता हो और संग्रहशील न हो। ऐसे धार्मिक जन को अन्न प्रदान करने से सारे यज्ञों के फल मिल जाते हैं और उन सन्तों के सत्संग से क्रोध, अहंकार, ईर्ष्या-द्वेष शान्त हो जाते हैं, जिससे वह सत्संगी शत्रुओं को भी प्यारा प्रतीत होने लग जाता है ।

पृणीयादिन्नाधमानाय तव्यान्द्राघीयांसमनुपश्येत पन्थाम् ।
ओहि वर्तन्ते रथ्येव चक्रान्यन्यमन्यमुपतिष्ठन्त रायः ।। ५ ।।

मनुष्य को उचित है कि याचक को जो अन्न का अभिलाषी है, भोजन दे, सुकृत के मार्ग को बहुत लम्बा समझे। यह भी जाने कि न जाने कब यह सामग्री जाती रहे, इस कारण, इससे जो भी लाभ लिया जा सके वह ले ले। धन का आना-जाना तो ठीक गाड़ी के पहियों की गति की भाँति है। जो पासा ऊपर होता है, क्षण में, वह नीचे हो जाता है, और जो नीचे होता है वह ऊपर आ जाता है। धन-धान्य सदा स्थिर बने नहीं रहा करते।

मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य ।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी ।। ६ ।।

जो मनुष्य इतना स्वार्थी, कृपण है कि दीन दुःखी तक पर दया नहीं करता, वह जो खाता है पाप ही खाता है। उस के पास जो अन्न की राशि है वह व्यर्थ है और उसकी धार्मिक मृत्यु का कारण है, यही सत्य है।

समौ चिद्धस्तौ न समं विविष्टः सं मातरः चिन्न समं दुहाते ।
यमयोश्चिन्न समा वीर्याणि ज्ञातीचित्सन्तौ न समं पृणन्तः ।। ७ ।।

दान देने में बराबरी के भाव को नहीं आने देना चाहिए। यह दुर्भाव दान को दूषित कर देता है। देखो ! प्रत्येक व्यक्ति के दोनों बाहू बराबर होते हैं, परन्तु पराक्रम में भारी भेद रहा करता हैं। एक गाय की दो गाय हो जायें तो दूध एकसा नहीं देतीं। बलाबल में एकता नहीं होती है। एक माता के दो बालक हों, तो भी युवा काल में उनकी शक्ति, ज्ञान और विचार आदि एक से नहीं हुआ करते। ऐसे ही एक जाति के जन होने पर भी भक्ति में,

भावना में, श्रद्धा में और विश्वास आदि में न्यूनाधिकता होने के कारण दान एकसा नहीं हो सकता।

ऊपर के मन्त्रों में दान भाव के लिए जो उपदेश है, वह गम्भीर भाव से मनन तथा धारण करने योग्य है।

२३ ● मन्युः

नीचे दिए मन्त्रों में मन्यु का वर्णन है। उस का जो प्रभाव है, उस से जो जो कार्य सिद्ध होते हैं, तथा मानुषी प्रजा में उस के कारण जो सुख तथा शान्ति का संचार होता है, उसका दिग्दर्शन कराया गया है। मन्यु से यहां न्याय से तात्पर्य है। जिस कर्म से मनुष्य समाज की दीप्ति हो, मान मर्यादा सब की बनी रहे, धर्म कर्म सबके पालन होते रहें, कोई किसी को सतावे नहीं, वह दीप्तिमन्त कर्म न्याय है।

यस्ते मन्यो विधद्वज्रसायक सह ओजः पुष्यति विश्वमानुषक्।
साह्याभ दासमायन्त्वयायुजा सहस्कृतेन सहसा सहस्वता॥ १॥

न्याय, मनुष्यों में वज्र के सदृश होता है, जो अपराधी हो उसे सीधा कर देता है। न्याय ही प्रजा का बल है। उसी से सारी मानव प्रजा की रक्षा होती है। वह न्याय ही दुष्ट मनुष्य को दमन करता है और उसी के अनुसार चल कर प्रजा के लोग यथेच्छ घूमते और हास-विलास में रत रहते हैं। न्याय से मनुष्य स्वतन्त्र समझा जाता है।

मन्युरिन्द्रो मन्युरेवास देवो मन्युर्होता वरुणो जातवेदाः।
मन्युं विश इडते मानुषीर्याः पाहि नो मन्यो तपसा सजोषाः॥२॥

तप अर्थात् इन्द्रिय संयम के साथ जुड़ कर न्याय मनुष्यों को सुरक्षित रखता है। वास्तव में राजा न्याय ही है। परमेश्वर भी न्यायकर्त्ता है। यज्ञ में जो जन काम करते हैं वे भी न्याय के आधीन हैं। धर्म रक्षण न्याय ही से होता है। मनुष्यों में जो व्यापारी वर्ग है वह तो सर्वथा न्यायाश्रित ही है।

अभीहि मन्यो तवसस्तवीयान्तपसायुजा विजहि शत्रून्।
अमित्रहा वृत्रहा दस्युहा च विश्वा वसून्या भरा त्वं नः॥ ३॥

वह न्याय हमारे पास आये जो बलों का बल है, जिस के प्रताप से शत्रु दमन किये जाते हैं। मित्रता नाशक देश-घातक तथा दस्युदल जिसके बल से वश में आ जाते हैं, वह न्याय मनुष्य को रत्नों से भर देता है।

अभागः सन्नप परेतो अस्मि तव क्रत्वा तविषस्य प्रचेतः ।
तं त्वा मन्यो अक्रतुर्जिहीडाहं स्वातनूर्बलदेयाय मेहि ॥ ४ ॥

न्याय उस मनुष्य का पालन नहीं करता जो भाग्यहीन की भांति पुरुषार्थ छोड़ कर पड़ा रहता है। उसके कर्म का फल देना न्याय का काम है। इस में न्याय सदा सावधान रहता है। यही उस का बल है। ऐसे न्याय की स्तुति करना अपने तप के बल को बढ़ाना है। स्तुति से तात्पर्य न्याय को मानने से है।

२४ • ईश्वरेच्छा

जितने कार्य संसार में हो रहे हैं, उन में ईश्वरेच्छा भी काम कर रही है। उसी से प्रकृति में प्रथम कम्प तथा संचालन हुआ था, जो आज तक गति के रूप में विद्यमान है। उसी गति से परिवर्त्तन होते रहते हैं। उस ईश्वर इच्छा को नीचे उद्धृत मन्त्रों में काम के नाम से वर्णन किया है। काम शब्द का यौगिक अर्थ संकल्प-इच्छामात्र ही है।

कामस्तदग्रे समवर्तत मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।
सकाम कामेन बृहता सयोनी रायस्पोषं यजमानाय धेहि ॥ १ ॥

ईश्वर की इच्छा आदि में थी। वह एक मानस बीज था, जिससे यह जगत् उत्पन्न हुआ। वह संकल्प अपने बल से बड़े जन्मों की सृष्टि का कारण हो गया और कर्मानुसार फल का कारण बना।

त्वं काम सहसासि प्रतिष्ठितो विभुर्विभावा सख आ सखीयते ।
त्वमुग्रः पृतनासु सासहिः सह ओजो यजमानाय धेहि ॥ २ ॥

ईश्वरेच्छा तुरन्त प्रतिष्ठित होगई। रचना का कार्य उस ने कर लिया। वह सर्व सामर्थ्य युक्त है। उस में प्रेम निहित है, जो प्रजाओं के हित साधित करता है। वह उग्र-तीव्र भी है, जिससे दुष्टों का दमन हो रहा है। वह भगवती इच्छा सुकर्मियों को बल प्रदान करती है।

कामेन मा काम आगन् हृदयाद् हृदयं परि ॥ ३ ॥

ईश्वरीय संकल्प से मनुष्यों में ज्ञान, विचार, विवेक, वीरता धीरता आदि गुण परम्परा से आये हैं। वही सब का प्रेरक है। उसकी प्रेरणा से ही मनुष्य उन्नति के पथ में अग्रसर होते हैं।

नासदासीन्नोसदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत् ।
किमावरीवः कुहकस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम् ॥ १॥

पहले कार्य जगत् न था । कारण भी जाना न जाता था, वह विलक्षण भाव से भगवान् में था । परमाणुमय संसार न था, और आकाश जो कार्य रूप है वह भी न था, किन्तु अवर्णनीय शान्त, गहरा और भाव था जिस का 'कौन' 'किस' का के संकेत से वर्णन नहीं होसकता ।

ऊपर के मन्त्र में परमाणुओं के न होने से तात्पर्य यह है कि परमाणु सृष्टि के आरम्भ में सूक्ष्म पंचतन्मात्राओं के रूप में बनते हैं, जिन का कारण महत्तत्त्व होता है,महत्तत्त्व का कारण प्रकृति होती है, जो भगवान् में भाव रूप में रहती है ।

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेतः ।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किंचनास ॥ २ ॥

उस समय न मृत्यु थी, न ही जन्म था, अर्थात् काल नहीं था क्योंकि काल की उत्पत्ति सूर्य से होती है । इस कारण दिन रात के चिह्न भी न थे । वायुरहित एक शान्त प्राण था जो सुख से एकता में निमग्न था, उससे भिन्न देश काल कुछ न था । यहां प्राण से आशय अस्तित्व का है ।

तम आसीत्तमसा गूढमग्रे प्रकेतं सलिलं सर्व मा इदम् ।
तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसतस्न्महिना जायतैकम् ॥ ३ ॥

उस के अन्नतर परमात्मेच्छा से प्रकृति में स्फुरण होगया । जिससे हिलता हुआ एक तमोराशि का आकार बन गया । उसमें संकेत बनने लगे । फिर वह तमोराशि सूक्ष्म वायु, जिसे यहां सलिल कहा है, बन गया । वह सब परमेश्वर के समीप जो तुच्छ प्रकृति है, उसी का कार्य था जो भगवान् के ज्ञान से आच्छादित होकर उस एक की महिमा से बना था ।

कामस्तदग्रे समवर्ततधिमनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।
स तो बन्धुमसति निरविन्दन् हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ॥४॥

परमेश्वर की इच्छा ही पहले थी । वही जगत् बीज है । उसी से प्रसुप्त प्रकृति में कम्प उत्पन्न हुआ । उसीसे सत् जगत् कार्य जगत् बनता चला गया । उसी से सारी सृष्टि बनी ।

अगला सितम्बर अंक

अद्भुत और प्रचार के लिए अनुपम

शीघ्रता कीजिए !! आज ही मंगाइए

आर्य समाज के महान् कर्मठ चिन्तक और विचारक

श्री ओम्प्रकाश त्यागी (संसद् सदस्य) की

सशक्त लेखनी से लिखित

धर्म-चिन्तन

दार्शनिक सिद्धान्तों पर संवाद रूप में विचार

अपनी ढंग की पहली पुस्तक

प्रत्येक विद्यालय में छात्रों व जिज्ञासुओं के लिए अनुपम

मूल्य १ प्रति २)। १५ की १०), ३५)की २५ प्रति।

६०) की ५० व १००) की १०० प्रति

—व्यवस्थापक—

जन-ज्ञान-प्रकाशन

१५६७ हरध्यानसिंह मार्ग नई दिल्ली-५

अभाव पूरा हो गया : शीघ्र मंगाएं

अंग्रेजी भाषा में

सत्यार्थ प्रकाश

Light of Truth

केवल ५) में ३० सितम्बर तक

प्रसिद्ध स्व० आर्य विद्वान् पं० दुर्गा प्रसाद जी द्वारा अनुवादित

प्रेस में छपने के लिए दे दिया है

सत्यार्थ प्रकाश के सभी अंग्रेजी अनुवादों में सर्वश्रेष्ठ

यह अनुवाद हम लागत से भी कम मूल्य पर देंगे।

इस समय साधारण छपायी व कागज के अंग्रेजी

सत्यार्थ-प्रकाश का मूल्य १२) है।

किन्तु हम बढ़िया कागज ! श्रेष्ठ छपाई और ६०० पृष्ठ २३×३६।१६ साइज का सत्यार्थ-प्रकाश केवल ५) में, ६) में कपड़े की जिल्द का ३० सितम्बर १९७० तक देंगे।

दिवाली से पहले छप जायेगा।

अपना आदेश धन सहित शीघ्र भेजिए

जन - ज्ञान - प्रकाशन

१५६७ हरध्यानसिंह मार्ग नई दिल्ली ५

भाइयो और बहनो!

अरसे से अंग्रेजी सत्यार्थ प्रकाश के सुन्दर संस्करण का अभाव सभी अनुभव कर रहे थे। जो मिलते थे वह विदेश के अयोग्य थे।

महर्षि दयानन्द का प्रभावशाली अंग्रेजी जीवन चरित्र भी प्रचार योग्य उपलब्ध नहीं था जब भी इन ग्रंथों की मांग आती थी तो सिर लज्जा से झुक जाता था।

हम ने सोचा और संकल्प लिया कि यह अभाव हम नहीं रहने देंगे। आगामी दिवाली १९६० तक यह दोनों ग्रन्थ लागत से भी कम मूल्य पर हम आर्य जनता की ओर से भेंट करेंगे।

सर्वश्रेष्ठ अंग्रेजी अनुवाद सत्यार्थ प्रकाश का, स्व० दुर्गाप्रसाद जी कृत ७००/ $\frac{23 \times 36}{16}$ साइज के लगभग पृष्ठों में बढ़िया कागज और छपाई का हम ५) में देंगे और महर्षि जीवन बाबा छज्जूसिंह जी कृत केवल ४) में। यह भी ६०० पृष्ठ का ग्रन्थ है।

निश्चय कर लिया, प्रभु के विश्वास पर, और इन पंक्तियों द्वारा आप को पुकारता हूँ कि यदि यह काम उचित है तो दीवाली के दिन भूखे रह कर भी अपनी आहुति भेजिए। ५० हजार से ऊपर धन चाहिए जो आप ने देना है। १) रुपैया या १०००) पर ज्यादा से भेजिए वेद-प्रचार यज्ञ और महर्षि दयानन्द का लक्ष्य पूरा करने के लिए –

विनीत [illegible]

हमारे नए आजीवन सदस्य

५६. डा. पी. एस. चन्द्रशेखर भट्ट बल्हानूर ५७. श्री डा. भगवन्त सिंह कपूर देवलाली ५८. श्री एस. के. बिश्नोई कैमूर ५९. डा. नारायण दास गोहाटी ६०. श्रीमती शुभकरी जी ज्वालापुर ६१. श्री लखन प्रसाद गणेश प्रसाद, जर्वे ६२. डा. ज्ञानप्रकाश कच्चाहारी कानपुर। ६३. श्री योगेन्द्रसरीन कानपुर ६४. श्री कमलेश प्रकाश गर्ग कानपुर ६५. श्री ओम्प्रकाश कानपुर ६६. श्री अर्जुनदास जी कानपुर ६७. डा. नन्दलाल गाँधी कानपुर ६८. डा. सुखदेव जी कानपुर ६९. श्री देवीप्रसाद जी नानपारा ७०. श्रीमती विनय सपरा दिल्ली ७१. श्री ओम्प्रकाश अग्रवाल झरिया। ७२. श्री वेदप्रकाश शर्मा गोहाटी ७३. श्री अखिलेश कुमार मेरठ ७४. प्रो. हीरालाल पंडित राजकोट।

श्रावणी के पावन पर्व पर

१०१) भेजकर

जन-ज्ञान के आजीवन

सदस्य बनें

आजीवन सदस्य बनिए !

जन-ज्ञान की आजीवन सदस्यता का शुल्क १५१) कर दिया गया था पर अनेक पत्र १०१) के लिए ही आते रहे और हमने भावना का आदर करते हुए एक अवसर और दिया ।

आप सभी का स्नेह इतना प्रबल है कि आपने उदारता से आजीवन सदस्यता ग्रहण कर हमारा उत्साह बढ़ाया ।

कई सुझाव प्राप्त हुए हैं कि श्रावणी वेद प्रचार सप्ताह तक आजीवन सदस्यता शुल्क १०१) ही कर दिया जाए । अत: इस मांग को स्वीकार करते हुए हम घोषणा करते हैं कि ४ सितम्बर १९७१ तक आप १०१) भेज कर 'जन-ज्ञान' के आजीवन सदस्य बन सकते हैं । ४ सितम्बर के बाद आजीवन शुल्क २०१) होगा ।

यह सुविधा देने के साथ ही हमारी यह विनम्र प्रार्थना है कि वेद प्रचार सप्ताह की समाप्ति तक कम से कम २५० आजीवन सदस्य बन जाने चाहिएं ।

जैसे भी हो, यत्न कीजिए और हमारे हाथ मजबूत बनाने के लिए १०१) आज ही भेजिए । 'जन-ज्ञान' आपका अपना पत्र है इसे बढ़ाइए ताकि महर्षि का संदेश विजय वरण करता हुआ फैल सके ।

आपके द्वार पर एक ब्राह्मण आपका पुण्य सहयोग मांगने आया है ।

निराश न कर जैसे भी हो साधन जुटाइए और भिक्षा दीजिए ।

आगे बढ़ने में अर्थाभाव जंजीर बन कर खड़ा है, यह जंजीर आप ही तोड़ सकते हैं ।

शुभ कामनाओं सहित

भारतेन्द्रनाथ

संचालक

प्रत्येक आर्य समाज कालेज, स्कूल तथा वाचनालय
और आर्य परिवार में रहना ही चाहिए

वैदिक धर्म सम्बन्धी साहित्य

1. The Arya Samaj it's cult and creed.

आर्य समाज के गौरव, प्रसिद्ध विद्वान् आचार्य श्री वैद्यनाथ शास्त्री द्वारा लिखित अनमोल ग्रन्थ, जो प्रत्येक विरोधी विचार वाले व्यक्ति को वैदिक विचारधारा का बनाने की सामर्थ्य रखता है। भेंट के लिए सर्वोत्तम।

सजिल्द, पृष्ठ २७०, मूल्य १०)

Gems of Aryan Wisdom **मूल्य २.५०**

आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री लिखित, अंग्रेजी में वैदिक विचारधारा वेद मंत्रों के आधार पर प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत की गई है। शिक्षित वर्ग की आँखें खोलने के लिए अनुपम।

3. Vedic Caste System वैदिक वर्ण व्यवस्था पर आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री लिखित यह पुस्तक अनुपम है। **मूल्य केवल २५ पैसे**

4. **तत्वार्थदर्श। पृष्ठ २७० सजिल्द** **मूल्य ५.००**

आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री ईश्वर, जीव, प्रकृति आदि सभी दार्शनिक विषयों पर विद्वान् लेखक ने अत्यन्त सुलझे और प्रभावशाली ढंग से अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। ग्रन्थ प्रत्येक स्वाध्यायशील के लिए संग्रह योग्य है।

5. **वैदिक इतिहास—विमर्श** **मूल्य ७.२५**

वेद में इतिहास नहीं है, इस विषय पर सबसे अधिक प्रामाणिक ग्रन्थ। विरोधी विद्वानों के मस्तिष्क बदलने में समर्थ आचार्य वैद्यनाथ जी का लिखित,

6. **वैदिकयुग और आदि मानव** 'वैदिक एज में प्रकाशित विचारों का मुँह तोड़ उत्तर : आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री की लेखनी से।

सजिल्द मूल्य ४.००

सार्वदेशिक सभा द्वारा प्रकाशित
आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री द्वारा सम्पादित
अंग्रेजी में आर्य समाज के एक मात्र मासिक
V E D I C—L I G H T
के सदस्य बनिए
नमूना पत्र लिखकर बिना मूल्य मंगाइये
वार्षिक मूल्य १०), विदेश में १ पौंड

प्रकाशन विभाग सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा
रामलीला मैदान नई दिल्ली-१

—भारतेन्द्रनाथ

मैं हृदय मन्दिर से बोल रहा हूँ !

मन बहुत कुछ कहना चाहता है, उसमें ऐसी हिलोरें उठती हैं कि बस क्षरण भर में कुछ ऐसा हो जाए कि यह धरती सारी बदल जाए, किन्तु हिलोरें गति पाने के लिए साधनों की खोज में जुटी हैं।

हम संसार के मस्तिष्कों का चिन्तन बदलना चाहते हैं। हमें राज्य, नाम, शब्द, रूप की चिन्ता नहीं, हमारी क्रान्ति भावनाओं तक सीमित रहना चाहती है। हम मनुष्य को केवल मनुष्य बनने का मार्ग बताना चाहते हैं। उसे पशुता की राह से हटा कर जीवन-मार्ग पर चलाना चाहते हैं।

हम रुदन और क्रन्दन के शत्रु हैं। संगीत और आनन्द हमारा मित्र है। वही, बस वही हमारे अंग संग रहे, प्यार के गीत गाते, मुस्कराते हम संसार के प्रत्येक व्यक्ति के होठों पर मुस्कराहट देखना चाहते हैं।

हमारा कोई शत्रु नहीं, हम सभी से प्यार करते हैं। जो अज्ञानवश हमें शत्रु समझते हैं हम उन्हें भी प्यार करते हैं। वे अपना काम करें, हम अपना, कोई द्वेष करे या घृणा हमें तो केवल प्यार का ही मंत्र आता है।

हमने न डरना सीखा है न झुकना। पीछे हटना तो हमें आता नहीं। हमारे यज्ञ में विघ्न डालने वाले स्वयं नहीं जानते कि वे क्या कर रहे हैं। हमारी स्थिति क्या है। हम शुभचिन्तक हैं उनके भी, हमारी हानि उनकी अपनी हानि है।

हम जीवन के अंतिम क्षरण तक 'ओ३म्' पताका संभाले बढ़ते जायेंगे। इस जीवन में ही नहीं, जन्म-जन्मान्तरों में भी यह पताका हमारे हाथ से नहीं छूटेगी। प्रत्येक मनुष्य के मन मन्दिर पर यह पताका लहराने का आदेश हमें गुरुदेव दयानन्द से मिला है। हम ऋषि दयानन्द के अनुयायी हैं। ऋषि दयानन्द की जय वाणी से ही नहीं कर्म से बोलने का संकल्प हमारा जीवन लक्ष्य है।

बाधाओं का स्वागत ! विघ्न डालने वालों का स्वागत! प्रभु कृपा करेंगे कि कभी उनका भी मन बदलेगा और वे दयानन्द की जय हमारे साथ मिलकर बोलेंगे। मार्ग में अंगारे बिछाओ या कांटे हम ऋषि दयानन्द का कार्य पूरा करने के लिए उन्हें फूल समझ बढ़ेंगे, काल भी हमारी राह नहीं रोक सकता।

'वेद ही जीवन हमारा, वेद प्राणधार है। दयानन्द का काम पूरा करेंगे। उसीके लिए हम जिएंगे मरेंगे।' कभी आपने भी तो यह पंक्तियाँ गाई होंगी? सुनी तो होंगी, पर क्या सोचा कि आप क्या गा रहे हैं ? काश, कि आपने गाते हुए इनके अर्थों को भी समझने का कष्ट किया होता। सोचता हूं सारे ऋषि दयानन्द के अनुयायी यदि इन दो पंक्तियों के अर्थ समझ जाते तो आज धरती पर सर्वत्र 'ओ३म्' पताका लहराती, पर हमारे सोचने से क्या होगा ?

आप दयानन्द के अनुयायी हैं ? आर्य समाज के सभासद हैं ? आपके पास मन भी है और मस्तिष्क भी। फिर क्या आपने आर्य समाज का तीसरा नियम पढ़ा है कभी ? पढ़ा तो होगा पर आप वेद को क्यों भुला रहे हैं ? क्या करते हैं आप वेद-प्रचार के लिए। आखिर यह पतन क्यों ? अपने से ही यह धोखा क्यों ? क्या साहस है आप में मेरे प्रश्न पर सोचने का ?

आपकी आत्मा मर तो नहीं गयी। आपका विवेक नष्ट तो नहीं हो गया ? स्वार्थ ने आपके इन्सान की हत्या कर कहीं शैतान को जन्म तो नहीं दे दिया ? ऊपर और भीतर और आखिर यह सब क्या है ?

आर्य समाज मंदिरों में सब कुछ होता है पर वेद प्रचार नहीं होता। दयानन्द के अनुयायी और सब काम करते हैं पर वेद प्रचार नहीं करते। और सब बातों के लिए हमारे पास समय है नहीं है तो वेद के लिए। शायद ऐसा आत्म-हनन किसी और ने न किया होगा ?

श्रावणी के दिन मैं आपको जगाना चाहता हूँ। आपके मस्तिष्क में बैठे शैतान को निकाल वहाँ देव भावों की प्रतिष्ठा मैं करना चाहता हूँ। मैं आपको दयानन्द के अनुयायी के रूप में देखना चाहता हूँ। भले ही आप मेरी सच बात कहने के लिए हत्या कर दें पर मैं आपको आज के रास्ते से हटाकर आपके एक हाथ में वेद और एक में ऋषि दयानन्द की पाखंड-खंडिनी पताका पकड़ाना चाहता हूँ।

यदि मैं गलत कह रहा हूँ तो कहो कि यह मांग गलत है, नहीं तो रास्ता बदलो। आर्य समाज मंदिरों को वेद मन्दिर बनाओ। वेद की ज्योति फैलाने में सब कुछ लगा दो। सर्वस्व की आहुति देकर जिससे वेद-सौरभ फैले। वैदिक विचारधारा का साम्राज्य प्रत्येक व्यक्ति के मस्तिष्क पर स्थापित करने के लिए हे दयानन्द का नाम लेने वालो ! वेद-प्रसार-यज्ञ आरम्भ करो।

'वेद' आपके घर में हैं क्या ? यदि नहीं तो क्या आपको अपनी इस कमी पर लज्जा अनुभव नहीं होती ? कैसे आप आर्य हैं कि वेद घर में भी नहीं। पहला काम आज ही कीजिए कि 'वेद' अपने घर में लाइए। घर में पैसे न हों तो घर का फालतू सामान बेचकर लाइए, पर आज ही चारों वेद घर में लाइए, और प्रतिदिन वेद का स्वाध्याय कीजिए। ५-१० मिनट वेद-पाठ कीजिए। उनके अर्थ समझिए पढ़िए तो सही फिर देखिए कैसा काया कल्प होता है आपका। 'वेद'के बिना हम जीवित नहीं रह सकते। जो 'वेद' प्रचारक नहीं वह दयानन्द का अनुयायी नहीं। ऋषि दयानन्द का मान करते हो, उनसे प्यार करते हो, उन पर श्रद्धा हो तनिक भी, तो मैं कहता हूँ सारे काम छोड़ दो, केवल वेद-प्रचार करो।

एकै साधे सब सधै, यह सत्य समझो और 'वेद' का महत्व समझो। वह सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। उनका पढ़ना-पढ़ाना परम धर्म है। क्या ऋषि दयानन्द ने यह गलत लिखा था ?

आज श्रावणी का दिन है, इस दिन 'वेद' के प्रचार का व्रत श्रद्धा से लो। उत्साह स्वयं आ जाएगा। आर्य बन्धु ! अपने को टटोलो, अपनी दुर्बलताएँ समाप्त कर आओ, दयानन्द का काम पूरा करने का निश्चय कर हमारे साथ, हम धरती पर वेद-पताका फहराने जा रहे हैं। —भारतेन्द्रनाथ

वेद प्रचार यज्ञ में आहुति देने वाले आर्य महानुभावों का विवरण

— गतांक से आगे —

१. श्री अर्जुन अग्रवाल झरिया २००) । २. श्री सी० डी० आस्वानी सूरत १०१)। ३. श्री माता प्रसाद अस्थाना लोहराई १०) । ४. श्री माधो प्रसाद जी मेरठ १०) । ५. श्री बलवीर सिंह जी इस्माइला ५) । ६. श्री मोहनलाल जी निम्बाहेड़ा ५) । ७. श्री डा० एस० सी० पाटीदार मनावर ५) । ८. श्री सोहन सिंह तोमर हरिद्वार २) । ९. श्री मांगीलाल भटनागर पीपल्या २) । १०. श्रीमती राजरानी विज अमृतसर २१) । ११. श्री नरेन्द्र नाथ जी जुनेजा बंबई १००) । १२. स्वामी सदानन्द जी कलानौर १) । १३. श्री नन्दलाल जी कलानौर २) । १४. माता कौशल्या देवी २) । १५. श्रीमती काको बहन जी २) । १६. धर्म पत्नी राजाराम नारंग २) । १७. श्री काशीराम भाटिया कलानौर १) । १८. श्री राम नारायण कलानौर १) । १९. श्री शशिकान्त छबरही १) । २०. श्री मोहनलाल जी बीदर ४) । २१. जगन्ननाथ प्रसाद डिहरी आन सोन २) । २२. श्री प्रेमनाथ पानीपत २) । २३. श्री सूर्यनाथ बीदर २) । २४. श्री आनन्द प्रकाश भोजपुर २) । २५. श्री सूर्य प्रसाद लौरिया ५) । २६. श्री रामभरोसे सिंह ग्वालियर ५) । २७. श्री बी० पी० गुप्त डालमियाँ नगर ५) । २८. श्री प्रताप बहादुर सिंह तंजौर ५) । २९. श्री के० र० पाटिल चिंचपुर ५) । ३०. श्री रविप्रकाश सदरुद्दीन नगर ५) । ३१. श्री सोहन लाल गढ़ मुक्तेश्वर ५) । ३२. श्री रंजन प्रसाद धमनी बाजार १०) । ३३. श्री परमात्मा सहाय बूंदी १) । ३४. श्री जी० सी० पंवार इन्दौर १) । ३५. श्री इन्द्र सिंह वर्मा वर्मा हिसार १) । ३६. श्री लक्ष्मी नारायण गुप्त धनबाद २) । ३७. डा० कमला भंडारी बीकानेर ५) । ३८. श्री रामकृष्ण दवे लांजी ५) ३९. श्री जनकलाल गुप्त कलकत्ता ५) । ४०. श्री उत्तम मुनि लातूर ५) । ४१. श्री हरगोविन्द धर्मसी बंबई ५) । ४२. श्री धर्म शिरोमणि खांडा ५) । ४३. श्री कृपाशंकर तालग्राम ५) । ४४. श्री आर० एल० मिलर बल्लारपुर ३) । ४५. श्री अब सुबला पाटिल शाहडोल ३) । ४६. श्री रामचन्द्र आर्य कोरद्धा धार १) । ४७. श्री खुशहाल सिंह मधाणा १) । ४८. डा० चन्द्रसेन बरेली १) । ४९. कैप्टेन निरंजन सिंह मेरठ ५) ।

सभी का हार्दिक धन्यवाद !

विनीता

(क्रमशः) राकेश रानी

श्रावणी के दिन

वेद - प्रचार - यज्ञ में

अपनी आहुति भेजिए

अंग्रेजी में सत्यार्थ प्रकाश

और

महर्षि जीवन-चरित्र

छपाने के लिए।

तुरन्त हजारों रुपया चाहिए

रक्षा बंधन के दिन

पवित्र यज्ञ की सफलता के लिए

सहयोग मांग रही हूं।

इस विश्वास के साथ कि मुझे निराश न होना पड़ेगा।

विनीता

राकेश रानी

सम्पादक

ज्ञान-ज्योति के प्रकाशन में आचार्य जगदीश विद्यार्थी का हार्दिक सहयोग मिला, आभारी हूं।

—सम्पादक

'जन-ज्ञान' की सहायता इस तरह भी करें

१. जव भी आपको चन्दा समाप्ति की सूचना मिले, आप अपना शुल्क तुरन्त भेज दें।

२. वी० पी० पी० की प्रतीक्षा न करें। वी० पी० पी०में आपको १)४० अधिक देना पड़ता है जो न हमें मिलता है न आपको। इसलिए धन मनिआर्डर से ही भेजें।

३. यदि किसी कारणवश आप सदस्य न रहना चाहें तो हमें सूचित तो कर ही सकते हैं। आपके १० पैसे का का कार्ड हमारे धन और समय की रक्षा कर सकता है।

४. मनिआर्डर के कूपन पर अपना पूरा नाम और पता अवश्य लिखें। सदस्य संख्या या "**नया सदस्य**" शब्द भी लिख दें।

५. 'जन-ज्ञान' आपका अपना पत्र है। इसमें जो कमी नजर आए वह हमें बताएँ। हम आपके बल पर इसके द्वारा संसार में आर्य समाज का संदेश फैलाना चाहते हैं। आपका सहयोग ही हमारी शक्ति है— **—व्यवस्थापक**

जन-ज्ञान द्वारा प्रकाशित

वैदिक साहित्य

१. **वैदिक सत्संग पद्धति (हिन्दी व अंग्रेजी)**
हिन्दी और अंग्रेजी में एक साथ, प्रत्येक मंत्र के प्रत्येक शब्द की अन्वय सहित व्याख्या:अंग्रेजी और हिन्दी में मूल्य२रु० । सजिल्द का मूल्य२।।रु०

२. **वैदिक सत्संग पद्धति (हिन्दी) नया संस्करण**
(केवल हिन्दी में) इसमें प्रत्येक मंत्र के साथ उसका अर्थ दिया गया है । २८ पौंड बढ़िया कागज, तिरंगा बढ़िया आवरण, महर्षि का तिरंगा चित्र । २८ पौंड कागज, चुने हुए भजन । ८४ पृष्ठ । मूल्य ६० पैसे । ५०) सैकड़ा ।

३. **Ten Commandments of the Arya Samaj** स्व० पण्डित चमूपति एम० ए० लिखित आर्य समाज के दस नियमों की पूर्ण प्रभावकारी व्याख्या, जिसका मूल्य पहले १ : ५० था अब केवल एक रु० प्रति/ ७)५० की १० प्रतियाँ मिल रही हैं । पुस्तक में महर्षि का चार रंग में चित्र अपूर्व है ।

४. **Teachings of Swami Dayanand** ७५) पैसे

५. **Vedic Way of life** —ला० दीवान चन्द कृत—१)

६. **Layers of life** —ला० दीवान चन्द कृत—२)

७. **Message of the Arya Samaj to the Universe**
—भारतेन्द्र नाथ लिखित ३० पैसे । २५) सैंकड़ा

८. **Vedic Sandhya & Prayer** संध्या और प्रार्थना दोनों की हिन्दी अंग्रेजी में व्याख्या। ३० पैसे/२५) सैकड़ा

९. **वैदिक गीता (भाष्य)** २)
महान् विद्वान् स्व० आत्मानन्द जी का यह गीता भाष्य प्रचार की दृष्टि से अनुपम है । कर्म और प्रेरणा के अद्भुत संगम इस भाष्य की अपनी विशेषता है । योगेश्वर कृष्ण का तिरंगा चित्र और उनका वीर वेश देखकर आप मुग्ध हो जायेंगे ।

१०. **योगेश्वर कृष्ण**—भगवान कृष्ण का यह जीवन चरित्र लाखों व्यक्तियों तक पहुँचाना चाहिये । ब्र. जगदीश विद्यार्थी एम.ए. लिखित मूल्य ४० पैसे । ३०)सैकड़ा ।

११. **क्रान्तिकारी दयानन्द**—युग प्रवंतक दयानन्द के क्रांतिकारी स्वरूप से सभी को परिचित कराने हेतु पुस्तक अत्यंत उपयोगी है । प्रोफ़ेसर संतराम एम० एस० सी० लिखित । मूल्य ७५ पैसे ।

१२. **यज्ञ प्रसाद** —महात्मा आनन्द स्वामी कृत मूल्य ४० पैसे । ३०) सैकड़ा आप यज्ञ करते होंगे तो यज्ञ के बाद प्रसाद भी बाँटते ही होंगे । यह प्रेरक महात्मा जी का रचना प्रसाद है । इसे मंगाइये और यज्ञ भावना फैलाने हेतु वितरण कीजिए ।

१३. **गीत मंजरी**·································८० पैसे
ईश्वर भक्ति के गीत और प्रभु से प्रार्थना करते हुए यदि आप सचमुच अपने आप को भुलाना चाहते हैं तो गीत मंजरी का सहारा लीजिए । पुस्तक अपने ढ़ंग की अनूठी है ।

१४. **ज्ञान प्रकाश** —हरिशरण सिद्धाँतालंकार मूल्य १)५० पैसे
—दीनानाथ सिद्धाँतालंकार
आर्य समाज के २ विद्वानों की लेखनी से सत्यार्थ प्रकाश का सार जिस आकर्षक ढंग से प्रस्तुत किया है वह प्रचार के लिए अनुपम हैं । सत्यार्थ प्रकाश के गूढ़ रहस्यों तक पहुंचने के लिए ज्ञान प्रकाश पढ़िए, और प्रसारित कीजिए—१०)की १० प्रति और ७५)सैंकड़ा । शीघ्र मंगाइए, स्टाक बहुत थोड़ा शेष है ।

१५. **वेद ज्योति**—४०० मंत्रों का अर्थ सहित संग्रह—मूल्य ३) ।

१६. **प्रार्थना मंत्र व्याख्या**—पं हरिशरण जी सिद्धांतालंकार लिखित प्रार्थना मंत्रों की अनुपम व्याख्या । मूल्य ४० पैसे

१७. **भारत की अवनति के ७ कारण**—ब्र० जगदीश एम० ए० की लोह लेखनी द्वारा लिखित पृष्ठ ६८ । मूल्य४० पैसे । ३५) । सैकड़ा २५०)हजार

१८. Light of Truth·································७५ पैसे ।

१९. **वैदिक अध्यात्म ज्योति**—४०८ मंत्रों का अर्थ सहित संग्रह मूल्य २)

२०. **योग जीवन** ... ... मूल्य २)

२१. **नीति दोहावली** ... ... मूल्य ८० पैसे

यह सम्पूर्ण साहित्य भारी संख्या में मंगा कर
अपने क्षेत्र पर वेद पताका लहराइए ।

जन ज्ञान प्रकाशन

१५९७, हरध्यान सिंह रोड, (निकट ३१ नाई वाला)
करौल बाग नई दिल्ली-५

अपने आर्य समाज के वार्षिकोत्सव पर कुल व्यय का २०
प्रतिशत साहित्य वितरण पर लगाइए ।

अराष्ट्रीय ईसाई तत्वों के विरुद्ध
११ पुस्तकें तैयार हैं

इन्हें मंगाइए : बांटिए और देश को बचाइए

१. ईसाई पादरी उत्तर दें।	—स्वामी श्रद्धानन्द	३) सैकड़ा
२. A challange to the christian Faith	,,	३) सैकड़ा
३. Bible in the Balance	—चार्ल्स स्मिथ	१५) सैकड़ा
४. ज्ञान विज्ञान के शत्रु ईसाई मत	—ओमप्रकाश त्यागी	१०) सैकड़ा
५. पोप की सेना का भारत पर हमला	—भारतेन्द्रनाथ	१०) सैकड़ा
६. ईसाइयों की प्रचार प्रणाली	—जगत् कुमार	१०) सैकड़ा
७. पादरियों को चुनौती	—स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती	१०) सैकड़ा
८. बाइबल को चुनौती	—ओम्प्रकाश त्यागी	१५) सैकड़ा
९. और पादरी भाग गया	—ओम्प्रकाश त्यागी	१०) सैकड़ा
१०. ईसाइयत की वास्तविकता	—शांति प्रकाश महोपदेशक	१०) सैकड़ा
११. बाइबल कसौटी पर········	चार्ल्स स्मिथ	१५) सैकड़ा

अधिक से अधिक मगांकर बांटें।

जन-ज्ञान प्रकाशन

१५९७, हरध्यान सिंह मार्ग, नई दिल्ली-५

उदारता पूर्वक सहयोग दें

कुछ क्षेत्रों में ईसाई विरोधी साहित्य तो चाहिए पर वे धन नहीं भेज सकते, अतः वहाँ साहित्य भेजने के लिए सहयोग चाहिए। आप अपनी ओर से ईसाई प्रभावित क्षेत्रों में वितरण के लिए अधिक से अधिक साहित्य भिजवायें। यह राष्ट्र की महत्वपूर्ण सेवा होगी। इसके लिए जितनी सहायता हमें प्राप्त होगी उतना ही साहित्य हम भेजते जायेंगे उदारता पूर्वक सहयोग दीजिए।

राकेश रानी

—सम्पादक

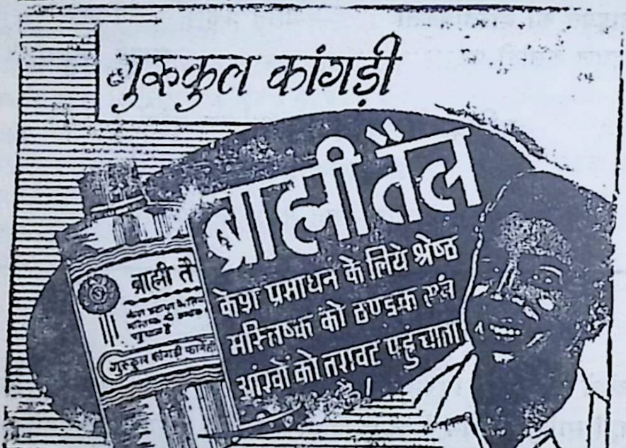

सभी आयुर्वेदिक औषधियों के लिए गुरुकुल काँगड़ी फार्मेसी

सदा स्मरण रखें

बड़ा सूचि पत्र व एजेंसी नियम मँगाएँ।

व्यवस्थापक-गुरुकुल काँगड़ी फार्मेसी P.O. गुरुकुल काँगड़ी(सहारनपुर)

मेरी मां पर

प्रबल प्रहार हो रहे हैं....

— भारतेन्द्र नाथ —

मेरी मां को कोई आततायी पीटे, उसे सताए तो क्या मैं मौन रहूंगा ? मेरा रक्त क्या तब शांत रह सकेगा, कायरता क्या मेरे पास फटक सकेगी ?

सोचता हूं तो सोचता ही रह जाता हूं। भारत हमारी मां है। हमने इसे मां के पवित्र नाम से पुकारा था। तभी तो इसकी गुलामी की जंजीरें तोड़ने के लिए हमने गोलियां भी खाईं और फांसी के फन्दे भी हंस-हंस कर चूमे।

मां की जंजीरें तो हमने तोड़ दीं पर जंजीरें तोड़ने के बाद हम मां की सेवा न कर सके। कृषकाय, निर्बल, अंगहीन मां का पोषण करने के स्थान पर मां से अपने पोषण की लालसा हमारी जागी। मां का ध्यान भी किसी को न रहा।

परिणाम निकला कि चारों ओर से मेरी मां को दुर्बल बनाने के लिए प्रहार होने लगे। शिक्षा बिगड़ी तो भक्ति गयी। भक्ति गयी तो स्वार्थ आया, और स्वार्थ ने ऐसा डेरा जमाया कि सारे शत्रु चारों ओर इकट्ठे हो चुके हैं।

भारत के धर्म, गौरव, संस्कृति परम्परा और एकता की समाप्ति के लिए असुर सेनाएँ सजधज से बढ़ रही हैं। सांप्रदायिकता, प्रांतीयता, जातीयता, स्वार्थ, पश्चिमी भोगवाद, और गृह कलह, हिंसा और घृणा का वातावरण सर्वत्र पनप रहा है।

शासन मौन है जनता निराश, नेता पथ भ्रष्ट हैं और षडयन्त्र लीन। चारों ओर आग है, पर आग को बुझाने वाला कोई नहीं। हर घर में विष

वृक्ष पनप रहा है। द्वार-द्वार पर मृत्यु का स्वर गूंज रहा है। शांति आनन्द और प्रेम की गंगा लुप्त हो रही है।

प्रश्न उभरता है तो क्या हम मां को मर जाने दें ?

शत्रु के षड़यन्त्र सफल होने दें। हाथों पर हाथ रख हम निराश हताश-बैठ जाएं, हम हार जाएं ?

किन्तु यह तो आत्म हत्या होगी। मां को मरने दें ?यह कायरता होगी।

इस प्रश्न पर बहुत सोचा है और निर्णय केवल 'यही' कर सके हैं कि हम लड़ेंगे।

मां पर आक्रमण करने वालों का हम सिर कुचलेंगे। हम अकेले भले ही हों पर आततायी की विशाल सेना का हम सामना करेंगे। शासन विरोधी हो, जनता साथ दे या न दे, हम लड़ेंगे, अकेले, अपने प्राणों की अंतिम सांस तक लड़ेंगे।

हो सकता है कि आप इसे पागलपन कहैं, कोई चिन्ता नहीं, हम ने असुर दल से धर्म रक्षा के लिए युद्ध करने का संकल्प ले लिया है। माँ पर आक्रमण करने वालों से हमें निबटना है।

आज श्रावणी है, ज्ञान का पर्व, अच्छा है कि धर्म के प्रत्येक अनुयायी को आज यह ज्ञान हो जाए कि 'ज्ञान' का अस्तित्व खतरे में है। राम–कृष्ण का नाम लेने वाले यह जान जाएं कि अब राम–कृष्ण की संपूर्ण गरिमा को मिटाने रावण और कंस की सेनाएं कूच कर चुकी हैं।

इच्छा होती है कि प्रभु कृपा करें और भारत मां के ४० कोटि आर्य धर्म के प्रहरी अपने ८० करोड़ हाथों में मां की रक्षा के लिए सुदर्शन चक्र संभालें।

मैं तो लड़ रहा हूं, लड़ता रहूंगा, मां की, धर्म और ज्ञान की रक्षा के लिए सारे संसार की आसुरी शक्तियों से मैं लड़ूंगा। हमारे गुरु देव दयानन्द ने हमें वह शक्ति दी है कि तूफानों और आंधियों में अडिग बढ़ते जाना भी हमें आता है।

किन्तु मन तो यह कर रहा है कि हमारे साथ भारत के ८० करोड़ हाथ आ जाएं। मां पर होने वाले प्रहार को देख उन का भी खून खौल उठे। और वे सब हमारे साथ आकर ऋषि दयानन्द की सेना में भरती होकर करें उन सबका संहार जिन्होंने मेरी भारत, मां पर प्रहार किया है।

आज धर्म अधर्म की समाप्ति के लिए आप का आवाहन कर रहा है। ज्ञान–अज्ञान पर विजय के लिए आपको बुला रहा है। सर्वनाश पर नियंत्रण के लिए निर्माण आप को निमंत्रित कर रहा है।

आप भारत को मां कहते हो तो वह माँ रुदन, क्रन्दन करती हुई अपने बेटों को बुला रही है। धर्म, सत्य, ज्ञान सब पर संकट है। गंगा-गायत्री, राम–कृष्ण पर काल मंडरा रहा है। मां के वीर बेटो !

ज्ञान के पर्व पर मैं एक ब्राह्मण के रूप में तुम्हें जगा रहा हूं। मृत्यु तो आएगी ही, यह धन संपत्ति सब यहीं रह जाएगी, फिर माया के मोह में कर्तव्य भ्रष्ट मत बनो। उठो, ऐसे अवसर जीवर में बार बार नहीं आते।

सब कुछ दांव पर लगा कर भी मां की रक्षा करो। एक हाथ में धर्म एक में सुदर्शन चक्र संभालो। अधर्म से डरो नहीं उस की समाप्ति का व्रत लो।

लड़ो और विजय वरो। सर्वत्र धर्म ध्वजा फहराओ

मां की रक्षा का एकमात्र यही मार्ग है--

—भारतेन्द्र नाथ

श्रावणी-रक्षा बन्धन के दिन

'जन - ज्ञान' आगे बढ़ने के लिए

आपका सहयोग चाहता है

१. आप १०१) भेजकर आजीवन सदस्य बनें। यह सुविधा केवल ४) सितम्बर तक है। ४ सितम्बर के बाद आजीवन शुल्क २०१) होगा।

२. कम से कम ५ नए सदस्य बना कर भेजें। ५ नए सदस्यों का एक साथ शुल्क ५०) के स्थान पर केवल ३५) ४ सितम्बर तक है।

३. वैदिक विचारधारा प्रसार के पवित्र यज्ञ में व्रत रखकर भी आज ही अपनी आहुति अवश्य भेजिए।

आपका सहयोग ही हमारी शक्ति है–

राकेश रानी

संपादक

भारी संख्या में उत्सवों, पर्वों और विशेष अवसरों पर बाँटिए

१. **आर्य समाज क्या मानता है?**—पंडित मदनमोहन विद्यासागर लिखित
२. **आर्य समाज की मान्यताएँ**—स्व० पं रामचन्द्र जी देहलवी की भेंट
३. **मूर्ति पूजा की हानियाँ** महर्षि दयानन्द की प्रभावपूर्ण लेखनी से
४. **विश्व को वेद का संदेश** भारतेन्द्रनाथ साहित्यालंकार लिखित
५. **महर्षि दयानन्द की विशेषताएँ**—स्व० महात्मा नारायण स्वामी जी लिखित

इन सभी आकर्षक आवरण, बढ़िया कागज)
वाले ट्रैक्टों का मूल्य है केवल **१०) सैकड़ा।**

६. **वैदिक भक्तिवाद**—पं० जगत् कुमार शास्त्री लिखित, १५) सैकड़ा

घर-घर में दयानन्द का संदेश गुंजाने के लिए प्रभावशाली रूप में साहित्य का प्रयोग कीजिए।

जन-ज्ञान-प्रकाशन
१५६७, हरध्यान सिंह रोड़ करोल बाग नई दिल्ली-५

सत्यार्थ प्रकाश की परीक्षा दें

गत वर्षों की भांति इस वर्ष भी ६ सितम्बर १९७० को सत्यार्थ रत्न, भूषण, विशारद तथा शास्त्री परीक्षायें सारे देश में होंगी। परीक्षा शुल्क नाममात्र, प्रमाण पत्र आकर्षक तथा प्रत्येक परीक्षा व केन्द्र में कई तरह के पारितोषिक दिये जाते हैं। परीक्षाओं सम्बन्धी सभी प्रकार की जानकारी के लिये **श्री चमन लाल एम० ए० परीक्षा मन्त्री, आर्य समाज दरियागंज, २ अन्सारी रोड़, दिल्ली ६** के पते पर पत्र व्यवहार करें।

देवव्रतः धर्मेन्दु आर्योपदेशक प्रधान
आर्य युवक परिषद दिल्ली

उत्तर प्रदेशीय प्रांतीय आर्य महिला सम्मेलन कानपुर की आयोजिका श्रीमती शशिकान्ता शास्त्री

आपने उत्तर प्रदेश की महिलाओं को संगठित कर उनके द्वारा राष्ट्रीय जागरण का संकल्प लिया, बधाई ।

आर्य परिवार के योग्य युवक श्री विद्यासागर जी जयपुर

आपने राजस्थान विश्वविद्यालय से एम० ए० (सांख्यकि) में प्रथम रह कर परिवार का गौरव बढ़ाया। प्रभु ! इन्हें देश सेवा की प्रेरणा करें ।

पाकिस्तान से आया एक पत्र

महोदय,

मैंने बहुत दिनों से आपके प्रकाशन के सम्बन्ध में पढ़ा था। एक दिन मां गायत्री पढ़ी तो जीवन बदल गया। मैं यहाँ बच्चों को धर्म शिक्षा देता रहता हूं और आर्य समाज का प्रचार भी करता हूं।

आपके साहित्य से बड़ा लाभ हो रहा है। सभी को प्रणाम कहें। धन्यवाद भगवान का आप इसी तरह मदद करते हैं।

आप जो सत्य प्रचार के लिये यत्न कर रहे हैं और वेदों को फैलाना चाहते हैं उसके लिए यहाँ सभी आपको हृदय से याद करते रहते हैं।

सिन्ध **--कन्हैलाल जे खेमलानी**

मैं इतने सुन्दर और सुनियोजित प्रकार के लिए आपको धन्यवाद देता हूं। एक वाक्य ही में मैं कहता हूँ कि आर्य-जगत् में 'जन-ज्ञान' से बढ़कर कोई मासिक या साप्ताहिक पत्र नहीं है। हम विद्यार्थी इससे काफी लाभान्वित हो रहे हैं। हम पाठक आप लोगों की की कर्मशीलता पर मुग्ध हैं।

—बलराम तिवारी कलकत्ता

आदरणीया,

आपका उत्साह, परिश्रम स्वच्छ एवं महान है, आपने कुछ समय में ही सभी आर्य पत्रों से आगे ही नहीं निकली अपितु आपने महान साहित्य आर्य जीवन निर्माण हेतु दिया है। थोड़े समय में ही गागर में सागर भर दिया है। यह जनज्ञान पूर्णमा चन्द्रमा की भान्ति शीतल शुभ्र ज्योत्सना फैलाता हुआ बढ़ता चला जाये तथा आपको युगों रहने वाली आयु प्रदान करे। **—पाठक**

महोदय,

जन ज्ञान का अंक प्राप्त हुआ, बहुत बहुत धन्यवाद। आप दम्पति अपनी लेखनी के द्वारा वेद का सन्देश फैलाने का जो कार्य कर रहे हैं वह केवल स्तुत्य ही नहीं वरन् वन्दनीय है। महर्षि दयानन्द के ऋण को चुकाने का प्रयास अनुकरणीय है। मैं आप के विचारों से पूर्ण सहमत हूं। आर्य समाज आज अपने मार्ग से भटक गया है। वेद के पवित्र ज्ञान को घर घर फैलाने का कार्य बिल्कुल अछूता ही पड़ा हुआ है यहां भी अवसर वादी नेता घुस आये हैं जो आर्य समाज को माध्यम बनाकर अपनी महत्व कांक्षाओं को पूर्ण करने में लगे हुए हैं। कई शीर्षस्थ नेता एम० पी० बन कर ही समझते हैं कि उन का उद्देश्य पूर्ण हो गया। 'जनज्ञान' इस समय आर्य स्वागत् में ज्ञान की किरणें प्रसारित कर उसे उद् बुद्ध करने में समर्थ होगा ऐसा मेरा विश्वास है। आप ने मुझे याद रखा, यह स्नेह सम्बन्ध बनाये रक्खें। **--सुनीति हैदराबाद**

आर्य बहनें अश्लीलता के विरुद्ध तीव्र आन्दोलन आरंभ करें

प्रान्तीय आर्य महिला सम्मेलन का निर्णय

कानपुर, प्रान्तीय आर्य महिला सम्मेलन कानपुर के अश्लीलता विरोधी सम्मेलन में अध्यक्ष पद से भाषण करते हुए जन-ज्ञान की संपादिका श्रीमती राकेश रानी ने कहा कि-

अश्लीलता की बाढ़ हमारे राष्ट्र को खोखला कर चुकी है और यदि समय रहते इसे न रोका गया तो देश का सब भांति पतन हो जाएगा।

आप ने कहा कि देश सीता-सावित्री का देश है। यहां पश्चिम का विलासितापूर्ण वातावरण फैलाने का कुत्सित षड़यन्त्र हमारी सभ्यता संस्कृति और धर्म को समाप्त करने की दृष्टि से किया जा रहा है।

बहनों का कर्तव्य है कि वे इस दिशा में जागें और यत्न करें कि हम पश्चिम के भौतिकवादी वातावरण से बच सकें। आपने इस विषय में अपने घर से ही कार्य आरंभ करने की आवश्यकता पर बल दिया।

श्रीमती राकेश रानी ने रचनात्मक सुझाव देते हुए कहा कि—

१. हमें अपने परिवारों में सादगी का वातावरण बनाना चाहिए।
२. प्रदर्शन के लिए नारी चित्रों का सर्वथा बहिष्कार करना चाहिए।
३. गन्दे गीत् साहित्य, पत्र पत्रिकाओं से अपने परिवार को बचाएं।
४. संगठित होकर अश्लीलता की बाढ़ के विरुद्ध बहने मोर्चा बनाएं।
५. आकाशवाणी से अश्लील गीतों के प्रसारण पर रोक लगायी जाने की माँग बहनें करें।

अध्यक्ष महोदय ने बहनों का कार्य क्षेत्र में आवाहन करते हुए कहा कि संकट में वीराँगना बन हमने सदा धर्म और देश को बचाया है और आज भी बहनें पूरी शक्ति से कार्य कर राष्ट्र को गढ़े में गिराने से बचा सकती हैं।

सम्मेलन में श्रीमती विद्योत्तमा यति, श्री पं० प्रभावती जी, कु० कन्चनलता सब्रवाल, व श्रीमती शान्तिदेवी एम० ए० ने भी भाग लिया। सभी के भाषण प्रभावशाली रहे।

सम्मेलन की आयोजिका श्रीमती शशिकान्ता शास्त्री ने अपने एक वक्तव्य में कहा कि सम्मेलन हर तरह सफल रहा है और भविष्य में भी महिलाओं के जागरण में महत्वपूर्ण भाग महिलाएं ले सकें इसके लिए प्रयत्न जारी रहेगा।

गायत्री मन्त्र का अर्थ

'ओ३म्' सच्चिदानन्द दयामय सकल सृष्टि का है त्राता ।
'भू' अस्तित्वनिकन्द चराकर के जीवन का हैं दाता ॥
'भुवः' चेतना का स्वामी ओ' चेतन रूप कहाता है ।
'स्वः' आनन्द स्वरूप परम सुख स्वर्ग दिव्य का दाता है ॥
'तत्' पद वाचक दिव्य तेज का व्यापक जो है सृष्टि में ।
'सवितुः' देव जनक जगती का ओ' करुणा का सृष्टि में ॥
'वरेण्यं' तेज जगद्धाता का सफल सृष्टि का जो स्रष्टा ।
'भर्गः' ज्ञान रूप वह ईश्वर ज्ञानागार सर्व स्रष्टा ॥
'देवस्य' देव वह महादेव है देवों का भी अधिनायक ।
'धीमहि' हम ध्याते उस को जो सब सुखों का दायक ॥
'धियः' मनीषा का स्वामी ओ' सद्‌बुद्धि का दाता है ।
'यो' जो व्यापक विश्व सकल में विश्वाधार कहाता है ॥
'नः' हमारा सब का गुरुवर ज्ञान सर्वविध का दाता ।
'प्रचोदयात्' करे वह प्रेरित कल्याणी-मति-वर-दाता ॥
सर्व शक्ति सम्पन्न सच्चिदानन्द देव को ध्यावें ।
करुणा-सागर की करुणा से शुभ मति का वर पावें ॥
उस के दिव्य तेज को देखें पा प्रेरणा उस से ।
उसी तेज से तेजस्वी बन पाएं सब सुख उस से ॥

—रतन चन्द्र शर्मा

एम० ए (संस्कृत, हिन्दी और इंगलिश)

(एम०ओ०एल० करनाल)

ज्ञान ज्योति के प्रकाशन हेतु रा० सा० चौ० प्रतापसिंह जी ने ५००) दान दिया है । हम उन के आभारी हैं--सं.

❀ ओ३म् ❀

माँ—गायत्री

१०१ गायत्री मंत्रों की
अर्थ सहित आध्यात्मिक व्याख्या

—: ❀ :—

—लेखक—

श्री पं० शिवदयालु जी

—

जन—ज्ञान—प्रकाशन
नई दिल्ली-५

भूमिका

प्रस्तुत पुस्तक में गायत्री छन्द वाले १०१ वेद-मन्त्रों का संग्रह किया गया है।

गायत्री छन्द तीन पाद वाला होता है और प्रत्येक पाठ में ८ अक्षर होते हैं। किसी-किसी मन्त्र में एक अक्षर न्यून वा अधिक होता है ऐसे मन्त्रों को निचृद् वा बृहती गायत्री छन्द वाला क्रमशः माना जाता है।

इस पुस्तक में हमने ऐसे मन्त्रों को ही चुना है जो प्रधानरूप से आध्यात्मिक अर्थों के बोधक हैं और ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना एवं उपासना की दृष्टि से उनकी विशेष उपयोगिता है।

मन्त्र-चयन करते समय इस बात का भी ध्यान रखा गया है कि मन्त्र सुबोध हों, सुगमता से उनका अर्थ हृदयंगम हो सके और पाठक उनको सरलता से कण्ठस्थ कर सकें।

मन्त्रों को अकारादि क्रम से रखना भी हमारा प्रयास रहा है।

प्रत्येक मन्त्र का शब्दार्थ देकर हमने उसका भावार्थ भी सरल भाषा में अंकित किया है जिससे सर्वसाधारण जनता इससे लाभ उठा सके। हमें विश्वास है कि यह "गायत्री शतकम्" वेदाभिमानियों के स्वाध्याय के लिए विशेषरूप से लाभकारी होगा।

आर्य वानप्रस्थाश्रम — **शिवदयालु आर्य**

ज्वालापुर (सहारनपुर)

१

ओ३म् तत्सवितुर्वरेण्यम् ।
भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ।।

शब्दार्थ—(सवितुः देवस्य) सब जगत् की उत्पत्ति करने वाले, सूर्यादि प्रकाशकों के भी प्रकाशक, समग्र ऐश्वर्य के दाता, कामना करने योग्य, सर्वत्र विजय कराने हारे परमात्मा का (वरेण्यं भर्गः) जो अति श्रेष्ठ, ग्रहण और ध्यान करने योग्य, सब क्लेशों को भस्म करने हारा, पवित्र शुद्ध स्वरूप है (तत्) उसको हम लोग (धीमहि) धारण करें (यः) यह परमात्मा (नः धियः) हमारी बुद्धियों को उत्तम गुण-कर्म स्वभावों में (प्रचोदयात्) प्रेरणा करे ।

भावार्थ—वह प्यारा प्रभु सकल दिव्य गुणों का केन्द्र है । उसका दान-सत्र अपनी शाश्वत प्रजाओं के लिए निरन्तर चल रहा है । वही सकल जगत् का सृजनहार है । सूर्य, ध्रुव, स्वाति आदि नक्षत्रों को प्रकाशयुक्त करता और उनके माध्यम से असंख्य ग्रह-उपग्रहों को भी प्रकाशयुक्त करता है, सब प्रकार के आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक ऐश्वर्यों का वही दाता है वही एकमात्र कमनीय, बन्दनीय, अर्चनीय और उपासनीय है । उसकी भक्ति और उपासना मानव के जीवन को विजयी बनाती है । काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि असुरों पर विजय प्राप्त करने की क्षमता मानवों को उसकी सच्ची उपासना से प्राप्त होती है । उस प्रभु का तेज महान् है, मानव की सकल दुर्वासनाओं, कुवृत्तियों को दग्ध करने वाला है । उसका सच्चा उपासक इन वासना वृत्तियों से ऊपर उठ जाता है, और अत्यन्त स्पृहणीय उसके दिव्य तेज के पावन आलोक में दैवत्व को प्राप्त होता है । पावन प्रभु का पावन भर्ग मानव के सकल कलमषों को दूर करता और दिव्य गुणों का उसमें सञ्चार करता है । जीवन के सर्व पापतापों को हरने वाला उसका यह महान् तेज ही है । इसी तेज के बल पर संसार में बड़े-बड़े अन्यायी अत्याचारियों से हम लोहा लेने में समर्थ होते हैं । प्रभु का तेज अन्याय, अनीति, अनाचार पर न्याय,

नीति और सदाचार की विजय कराने हारा है। हम ध्यान योग में अवस्थित हो उस प्राणप्रिय सखा के दिव्य तेज का सतत चिन्तन करेंगे उसकी आभा, दीप्ति व कान्ति से अपनी अन्तरात्मा को चमत्कृत करेंगे। दैवी प्रकाश की किरणें हमारी जीवन नौका को देदीप्यमयी बनावेंगी। उसी दिव्य प्रकाश के आधार पर हम अपनी इस आठ चक्र और नौ दरवाजे वाली पुरी को अयोध्या बनावेंगे। प्रभु के दिव्य तेज का सम्बल पा हम इस दैवी नौका को भवसागर से पार खेकर ले जावेंगे जहाँ दिव्य आनन्द, मोद, प्रमोद, हर्ष और शान्ति का साम्राज्य है।

हमारी उस अनाथों के नाथ, अबलों के सम्बल, पतितों के पावनहार प्रभु से यही एकमात्र विनय है कि वह हमारी बुद्धियों को शुद्ध करें, पवित्र करें। बुद्धियों पर अज्ञान का आवरण आ गया है परमात्म-देव उसको दूर हटादो। हमारी बुद्धि को ज्योतिष्मती बनादो दिव्य प्रकाश से युक्त करदो। हम इस बुद्धि की सहायता से साधना में रत होकर दिव्य देव के आनन्द धाम में प्रवेश पाने के अधिकारी बनेंगे। यह हमारी बुद्धि ऋतम्भरा बन जाए। परमात्मा के सत्यज्ञान से प्रदीप्त हो उठें और हम अपने हृदय की गुफा में उसके दिव्य दर्शन करने वाले बन जायें।

मानव की विशेषता बुद्धितत्त्व ही के कारण है। जितनी अधिक यह हमारी बुद्धि शुद्ध, पवित्र व परिष्कृत होगी उतना ही अधिक हमारा यह जीवन पवित्र बनेगा। ज्योतिष्मती बुद्धि हमें ब्रह्म के दिव्य आलोक का दर्शन करने की क्षमता प्रदान करेगी। अतः हमारी उस प्राणप्रिय चिरन्तन सखा से केवल यही विनति है कि वह हमारी बुद्धि को निर्मल बना दें। हम निरन्तर बुद्धि की निर्मलता के निमित्त ही अपने उस प्यारे पूज्य पिता से सायं प्रातः सन्धि वेला में विशेष रूप से विनति करेंगे।

नाथ! कृपा करो अपने उपासकों की विनति स्वीकार करो, स्वीकार करो।

२

ओं अग्न आयूंषि पवस ।
आ सुवोर्जमिषं च नः ।
आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ।। साम ६ । ५ । १

शब्दार्थ—(अग्ने) हे पूजनीय, विश्व-नियन्ता, सर्वव्यापक, प्रकाश स्वरूप परमात्मा (नः) हम सब अपने उपासकों की (आयूँषि) जीवनों की (पवस) रक्षा करो (ऊर्जं) उत्तम जीवन शक्ति एवं मनोबल तथा (इषं) अन्न हमें (आसुव) प्रदान करो और (दुच्छुनाम्) दुष्टजनों को हमसे (आरे) दूर (बाधस्व) रखो।

भावार्थ—घट-घट व्यापी परमात्मदेव सदा मानवों को दुष्ट कर्मों से बचने और श्रेष्ठ कर्मों के आचरण करने की प्रेरणा देने वाले हैं। वह अहेतुक दयासिन्धु प्रभु हमारे जीवनों को निश्चय पवित्र करने वाले और हमें पाप-प्रवृत्तियों से रोकने वाले हैं किन्तु हम अपने अज्ञान के कारण तथा इन्द्रियों की दासता के वशीभूत होने के कारण उलटे मार्ग पर चलने लगते और निन्दित कर्मों को करने लगते हैं और इस प्रकार अपने जीवनों को नष्ट कर डालते हैं। अतः हम अपने भीतर आस्तिक बुद्धि जागृत कर और उस प्यारे प्रभु की शरण में पहुँच कर अपने जीवनों को पवित्र बनाने का संकल्प धारण करें और उससे दिव्य शक्ति की याचना करें जिससे हमारे जीवन निष्कलंक बन जाए और हम पतन के गर्त में गिरने से बच जायें। वह प्राणनाथ प्रभु निश्चय आत्मिक बल के देने हारे हैं। हमारी आत्माओं की सुपुप्त शक्तियों को जागृत करने वाले हैं। प्रभु की सच्ची उपासना हमारे जीवन को सरसाने वाली और उसे दिव्य शक्तियों से संयुक्त करने वाली है।

वह प्रभु तो निश्चय ही संसार यात्रा के समस्त आवश्यक पदार्थों को अपनी सन्तान के निमित्त जुटाने वाले हैं। उनकी अतुलित सम्पत्तियों का यह भण्डार तो उसकी सन्तान के निमित्त ही है। इस समस्त सम्पत्ति एवं ऐश्वर्य का निर्माण उस दयालु पिता ने अपनी सन्तान के निमित्त ही तो किया है। अतः वह निश्चय ही अपने ऐश्वर्य भण्डार का द्वार हमारे लिए खोलने वाले हैं। हम भी शुद्ध और पवित्र बनकर उसमें प्रवेश करें और जो चाहें प्राप्त करें।

पवित्रता के महान् केन्द्र परमात्मा देव अपने स्वभाव से ही बुराइयों को हमसे दूर भगाने वाले हैं किन्तु हम उसको विसार कर स्वयं बुराइयों के शिकार बन बैठते हैं। यदि एक बार दृढ़तापूर्वक बुराइयों से दूर हटने का हम संकल्प धारण कर लें तो निश्चय ही वह पतितपावन प्रभु उन बुराइयों से हमें मुक्त कर देंगे।

३

अग्न आयाहि वीतये।
गृणानो हव्यदातये ॥
निहोता सत्सि बर्हिषि ॥ साम० १-१-१

शब्दार्थ—(अग्ने) हे ज्योतिः स्वरूप दिव्य प्रकाश के केन्द्र (वीतये) पवित्रता, ज्योतिः गति व आनन्द की प्राप्ति के निमित्त (गृणानः) हम अपने उपासकों के (हव्यदातये) स्वत्व-त्याग की भावना के निमित्त (सत्सि) श्रेष्ठ सत्यता पूरित (बर्हिषि) यज्ञ में, यज्ञ वेदि में (निहोता) निश्चय पूर्वक पूर्णतया हवन करने वालों के (आयाहि) हृदय मन्दिर प्रकाशित में होवो।

भावार्थ—हे प्यारे प्रभो। हम अपने जीवन को सत्यता से परिपूरित करेंगे और अपनी पावन यज्ञ वेदी में बैठकर अर्थात् आपकी उपासना में रत होकर अहंकार का त्याग करेंगे। संसार की सकल सम्पत्ति, विभूति और ऐश्वर्य तो आपका है हम उस पर से अपना अधिकार और ममत्व हटावेंगे। आपकी घरोहर को अपनी सम्पत्ति समझने रूप पाप से बचेगें। यह सब कुछ हमारे लिए है किन्तु है तो आपका। हम को तो केवल उसका उचित उपभोग करने मात्र का अधिकार है। 'हम उसके स्वामी हैं और उसका मनमाना उपभोग करेगें' इस दुष्ट पाप भावना से हम निश्चय दूर रहेंगे।

हम सच्चे हृदय से आपके उपासक बनकर आपके शरण।गत बनकर अज्ञान के कारण उत्पन्न हुए अपने ममत्व को दूर भगावेंगे। जो अनधिकार चेष्टाएँ हमने अपने जीवन में की हैं उनसे अपने को मुक्त करेंगे। आप अहेतुक दया-सिन्धु हैं। हम अपने उपासकों पर अपनी दया प्रसारित करो। और पर्दे से निकलकर प्रकट हो जाओ। हमारी मनोकामना पूर्ण करो। हमें अपने पावन दर्शन दो।

आपका दर्शन ही हमारे लिए सब कुछ हैं। हम उसकी प्राप्ति के लिए सच्चे हृदय से लालायित हैं। आप दर्शन देगें यह हमें विश्वास है। किन्तु न जाने क्यों अभी प्रकट होते नहीं। प्रभो हमारे धैर्य के बाँध को टूटने न दो। अब अधीरता अधिक न बढ़ने दो।

आप पवित्रता, ज्योति, गति और आनन्द के दिव्य केन्द्र है। हमें भी पवित्र जीवन वाला बना दो। प्रकाश से हमारी आत्माओं को चमत्कृत कर दो।

हमारे जीवनों को प्रगतिशील बनादो और दिव्य आनन्द रस का पान करने का हमें अधिकारी बना दो।

४

अग्निना रयिमश्नवत्।
पोषमेव दिवे दिवे।
यशसं वीरवत्तमम्॥ ऋग० १-१-३

शब्दार्थ—(अग्निना) परमात्म देव द्वारा उत्पन्न (रयिं) ऐश्वर्य सम्पत्ति को (अश्नवत्) भोग करूँ जो (दिवे-दिवे) दिन प्रतिदिन (पोषं) पुष्टि करने वाला (एवं) ही (यशसं) यश के देने वाला (वीरवत्तमम्) एवं श्रेष्ठ बल के देने वाला है।

भावार्थ—परमात्मदेव ने जीवों के कल्याण के निमित नाना प्रकार के पदार्थों को रचा हुआ है। संसार के सर्व भोग उस प्यारे प्रभु की कृपा के द्वारा ही प्राणिमात्र के कल्याण के निमित पैदा किये गये हैं। संसार का यह सब ऐश्वर्य उस ही का है। मैंने इनको उत्पन्न किया है या मैं इनका स्वामी हूँ यह अहंमन्यता मानव के पतन का कारण है। यह जो कुछ है सब उसका है। इसमें मेरा पन कुछ भी नहीं। अतः मानव का इन भोग्य पदार्थों पर अपना अधिकार जमाना मूर्खता है। मानव को ममत्व त्याग कर आवश्यकतानुसार इन पदार्थों का सेवन करना चाहिये। आवश्यकता से अधिक भोग करना वा जोड़कर रखना या अन्यों को उसका भोग न करने देना अनुचित है और पाप है। ईश्वर का रचा कोई भी पदार्थ हानिकारक नहीं किन्तु मानव अपनी मूर्खता से अनुचित प्रयोग करके उसको हानि प्रद बना लेता है। अपने और दूसरों के विनाश का

कारण तक इन भोगों को बनाना निश्चय मानव की पामरता है। ज्ञान ग्रौर त्याग पूर्वक किये हुए उपभोग निश्चय व्यक्ति ग्रौर समष्टि को लाभ ही पहुँचाने वाले हैं।

परमात्मा के रचे पदार्थों का सही उपभोग मानव को शान्त बनाने वाला है। दान ग्रौर त्याग पूर्वक किया गया उपभोग मानव को यश ग्रौर कीर्ति के देने वाला है। यह उपभोग मानव की साँसारिक जीवन यात्रा के सुन्दर ग्राधार हैं। ग्रतः मानव को सदा उस प्यारे प्रभु के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए इनका त्यागपूर्वक उपभोग करना चाहिए।

५

ग्रग्नि पूर्वेभि ऋषिभिः।
ईड्यो नूतनैरुत।
स देवाँ एह वक्षतु। ऋग० १-१-२

शब्दार्थ—(ग्रग्निः) परमात्मदेव (पूर्वेभिः) सिद्ध पुरुषों (ऋषिभिः) ग्रन्तर्द्रष्टज्ञानी जनों द्वारा (उत) तथा (नूतनैः) साधना पथ के पथिक साधकों द्वारा (ईड्यः) उपासनीय है। (इह) इस जीवन में (सः) वह (देवाँ) दिव्य गुणों को (वक्षतु) सरसावे।

भावार्थ—इस संसार में जितने भी महान् तपस्वी ज्ञानी सिद्ध पुरुष हुए हैं ग्रौर होंगे तथा जितने सच्ची साधना के पथ के पान्थ हुए हैं ग्रौर होंगे उन सबके एक मात्र परमात्मदेव ही उपास्य रहे हैं ग्रौर रहेंगे। उनसे भिन्न कभी किसी ज्ञानी, सिद्ध वा साधनारत मानव ने कभी ग्रन्य किसी वस्तु को ग्रपना उपास्य देव माना है ग्रौर न भविष्य में मानेंगे। परमात्मा से भिन्न किसी जड़ चेतन वस्तु की उपासना वास्तव में तर्क से सिद्ध ही नहीं होती ग्रौर यदि हो भी जाय तो पूर्ण बल शक्ति ज्ञान व दिव्य सुख की प्राप्ति सम्भव नहीं। उस महान् बल, शक्ति, ज्ञान एवं प्रकाश के केन्द्र से सम्पर्क स्थापित किये विना मानव का पूर्ण विकास ग्रसम्भव है ग्रतः उससे सम्बन्ध स्थापित करने का ही सर्वथा सिद्ध साधकों का एक मात्र लक्ष रहता है।

उस दिव्य देव के गुणों का कीर्तन, स्तवन ग्रौर संकल्पपूर्वक उनका ग्रपने

अन्दर आह्वान करने से ही मानव की परम उन्नति सम्भव है। उस प्रभु की उपासना द्वारा ही मानव में दिव्य गुणों का विकास होता है। दिव्य शक्ति संचार होता है और दिव्य कर्मों का अनुष्ठान सम्भव और सरल हो जाता है।

हमने महान् ज्ञानी बनना है तो हमें निश्चय ही उस परम ज्ञानी की शरण में जाना होगा। हमें महान् क्रान्तिकारी बनना है तो निश्चय ही हमें उस परम बल व शक्ति के केन्द्र की उपासना करनी होगी। हमें अपने जीवन में दया, करुणा, अहिंसा, परोपकार, दान, त्याग आदि सरसाने हैं तो हमें निश्चय ही उस परम दयालु परम कारुणिक, परम अहिंसक, परमोपकारी, परम दानी, परमत्यागी परमात्म देव की ही उपासना करनी होगी। उनकी उपासना से निश्चय ही हमारे जीवनों में दिव्य गुणों का संचार हो सकेगा। अतः हम श्रद्धा समन्वित हो उसकी उपासना द्वारा अपने जीवन को सफल करने वाले बन जायें बस यही हमारी सबकी बलवती आकांक्षा होनी चाहिए।

६

अग्निमिन्धानो मनसा ।
धियं सचेत मर्त्यः ।
अग्निमिन्धे विवस्वभिः ॥ साम० २-९

शब्दार्थ—(मनसा) मन के द्वारा (अग्निं) दिव्य ज्योति को (इन्धानः) प्रकाशित करते हुए (मर्त्यः) मरण धर्मा मानव (धियं) बुद्धि का (सचेत) अनुकरण करे। (विवस्वभिः) नाना प्रकाशों की सहायता से (अग्निं) परम आत्मतत्व को (इन्धे) प्रकाशित करता है।

भावार्थ—परमात्मा ने इन्द्रियों को बहिर्मुखी बनाया है इनकी अन्दर की ओर गति नहीं है। यह तो बाह्य संसार के पदार्थों का ही केवल ज्ञान प्राप्त करा सकती हैं। प्रभु दर्शन कराने में ये इन्द्रियाँ सर्वथा असमर्थ हैं। इन इन्द्रियों का नियामक मन जब अपनी चंचलता त्यागकर एकाग्र होता है और भृकुटी, नासाग्र भाग आदि किसी निश्चित स्थान में आसन जमाकर बैठ जाता है तब वह उस दिव्य परम ज्योतिः को उद्बुद्ध करने में आत्मा का साधक बन जाता है।

यह जन्म-मरण के चक्र में फंसा हुआ और आत्मस्वरूप को न जानने वाला मानव इस पाञ्चभौतिक शरीर को ही अहं मानकर व्यवहार करता और इस शरीर के नष्ट हो जाने पर अपने को नष्ट हुआ मानता है। किन्तु यथार्थ में यह आत्मा अविनाशी चेतन एवं महती शक्ति का पुञ्ज है। आत्मा को अपने इस यथार्थ स्वरूप का बोध बुद्धि द्वारा ही हो पाता है। किन्तु बुद्धि भी तब हीं सपायक होती है जब उसको मलीन संस्कारों से पृथक् राखा जाय और पक्षपात से बचाकर सत्य की खोज में लगाया जाय। मतान्धता और अन्धविश्वासों के झंझावात में फंस कर यह वृद्धि सर्वथा निकम्भी बन जाती है।

जिस समय मनुष्य पक्षपातशून्य होकर और मतान्धता से ऊपर उठकर इस बुद्धि को परिष्कृत करता है तब यह चमकने लगती है अर्थात् ज्योतिष्मती बन जाती है और इसके द्वारा आत्मदेव सत्य के दिव्य स्रोत के सन्निकट पहुँच जाता है। दिव्य प्रकाश की प्राप्ति से पूर्व इस बुद्धि की सहायता से साधक को अनेक अन्य प्रकाशों का भान होता है किन्तु इन प्रकाशों को प्राप्तव्य दिव्यतम प्रकाश न मानकर आगे ही आगे साधना करते चले जाने से एक समय वह आयेगा और निश्चय आयेगा जब मानव को उस दिव्य परम ज्योतिः के दर्शन अपने अन्दर होंगे। उस दिव्य प्रकाश की अभिव्यक्ति में यह बुद्धि और मन केवल सहायक मात्र होते हैं। किन्तु उस पावन प्रकाश का दर्शन तो यह आत्मा ही कर पाता है। किन्तु उस दिव्या प्रकाश के प्रकट होने पर यह आत्मा स्वयं खो-सा जाता है। इसको अपनेपन का ज्ञान ही नहीं रहता यह तो उस दिव्य आनन्दसागर में निमज्जित हो जाता है।

७

अग्निमीले पुरोहितं।
यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम्॥ ऋ० १-१-१

शब्दार्थ—(पुरोहितं) सदा हितकारी (यज्ञस्य) यज्ञों के (देवं) प्रकाशित करने वाले (ऋत्विजम्) प्रत्येक ऋतु में यजन करने वाले

(रं) यज्ञों में सतत आहुति डालने वाले (रत्नधातमम्) रत्नों की महान् खान (अग्निं) दिव्य प्रकाश पुञ्ज परमात्मदेव की (ईले) मैं वन्दना करता हूँ।

भावार्थ—परमात्म देव के असंख्य नामों में से एक पावन नाम अग्नि है। यह दिव्य अग्नि निश्चय ही पापों को, मन के मैलों को भस्म करने वाला है। सर्वव्यापक होने के कारण स्वयं गतिशून्य होकर भी विश्व को गति देना अग्निदेव का महान् कार्य है। अग्नि देव सर्वज्ञ होने से अतुलित ज्ञान के भण्डार हैं और सर्व व्यापक होने से कण-कण में रमे हुए हैं। वह विश्व के नियन्ता और नियामक हैं और इस सृजना के पूर्व भी अपने सर्व गुणों से एवं रससंयुक्त रहते हैं।

सदा सबका कल्याण करना उस अग्नि देव का स्वभाव है जिस हेतु उसको पुरोहित कहा जाता है। वह यज्ञों में अर्थात् श्रेष्ठ परोपकारादि शुभ कर्मों में प्रकाशित होने वाले हैं। दीन-दुखियों की सेवा, अनाथों की रक्षा, पतितों का उद्धार और निर्बलों की सहायता करने में उस प्यारे प्रभु की अनुभूति होने लगती है। वह तो सब शुभ कर्मों के अनुष्ठान में मानव को अन्दर बैठे हुए बल एवं शक्ति प्रदान करने वाले हैं।

अग्निदेव ऋत्विज हैं। नाना ऋतुओं का निर्माण कर इस सृष्टि में भारी यजन कर रहे हैं अर्थात् प्राणिमात्र के हित नाना उपयुक्त वस्तुओं का निर्माण कर रहे हैं। गर्मी हो या शीत, वसन्त हो या वर्षा, शरद हो या हेमन्त सब ही ऋतुओं में मानव को भक्तिभाव से उनका यजन अर्थात् वन्दन पूजन करना चाहिए।

अग्निदेव तो स्वयं होता भी हैं। इस सृष्टि में नाना दिव्य पदार्थों का निर्माण कर और प्राणि मात्र के हित निरन्तर उनका दान कर अग्निदेव सतत अपना यज्ञ चलाते हैं। पर्दे में बैठ कर मानव के हृदयों में उनके शुभ कर्मों के अनुष्ठान में बल का सञ्चार करना और उन शुभ कर्मों की ओर सदा मानव को प्रेरित करना उस दयालु देव का महान् कार्य है। अग्नि देव तो रत्नों के भण्डार हैं। वायु, जल, प्रकाश, अन्न, दुग्ध, फल, मोती, माणिक्य आदि संख्य दिव्य पदार्थों की सृजना, संरक्षण और दान द्वारा वह प्राणिमात्र के हित करने वाले हैं। अतः हम सब भक्ति-भाव से उस प्राणनाथ को नमन करते हैं। वस वही एकमात्र हमारे उपास्यदेव हैं।

अग्निः शुचिव्रततमः ।
शुचिर्विप्रः शुचिः कविः ।
शुची रोचत आहुतः ।। ऋ० ८ । ४४ । २१

शब्दार्थ—(अग्निः) विश्वनियन्ता परमात्मा (शुचिव्रततमः) परम पवित्रता कारक (शुचिःविप्रः) पवित्र ज्ञान का दाता (आहुतः) मन मन्दिर में पुकारा हुआ (शुची रोचते) पूर्ण पवित्रता के साथ प्रकाशित होता है ।

भावार्थ—सारे संसार का नियन्त्रण करने वाला परमात्मा परम पवित्रता का केन्द्र है । उसमें किसी भी प्रकार की अपवित्रता अथवा पापों का सम्पर्क नहीं है । वह तो सदा अपापविद्ध रहने वाला है । पवित्र ज्ञान के द्वारा परमात्मा संसार में पवित्रता का परम प्रसारक है । मानवों को पापों से युद्ध करने की सतत प्रेरणा देने वाला है । परमात्मा विप्र है अर्थात् ज्ञान का दाता है । उसका ज्ञान पूर्ण और पवित्र है । जो भी मानव उसके ज्ञान से आलोकित होगा निश्चय वह पवित्र बन जायेगा । उससे अपवित्रता अशुचिता, मलीनता और प्रमाद दूर भागने लगेंगे । उसके आत्मा पर पड़ा अज्ञान का पर्दा हटने लगेगा और वह निश्चय तत्त्वद्रष्टा बनकर संसार में चमकने लगेगा ।

परमात्मदेव अमर काव्य वेद के प्रकाशक हैं । उनके वेद अर्थात् ज्ञान का कोष अक्षय और अनन्त है । परमात्मा का ज्ञान पूर्णतया पवित्र है और पवित्रता का मानवों में सञ्चार करने वाला है । वह प्रभु क्रान्तदर्शी है । हृदय की गुह्यतम बातों को जानने वाला है ।

जो जन श्रद्धापूर्वक अर्थात् सत्य ज्ञान के आलोक से आलोकित होकर उसको पुकारते हैं अर्थात् मन मन्दिर में उसके पवित्रतम गुण, कर्म, तथा स्वभावों का कीर्तन करते और उनको अपने अन्दर धारण करने का संकल्प एवं प्रयत्न करते हैं उनको उस प्रभु की पावन ज्योतिः का दर्शन होता है । कणकण में उस प्यारे प्रभु की ज्योतिः समाई हुई है । सूर्य की किरणों और चन्द्र की शीतल ज्योत्स्ना में उस प्राणनाथ प्रभु की ज्योतिः चमक रही

है। सागर की लहरों, नदियों के कलकल निनाद और विजली की कड़क में उसकी ध्वनि गुंजारित है।

परमात्मा की ज्योतिः अन्धकार विनाशक और परम पवित्रता की कारक है। पाप और अज्ञान का अन्धकार उसके सामने टिकने वाला नहीं है।

प्रभो! हम श्रद्धा पूर्वक आपका आवाहन करते हैं। हमें अपनी उस दिव्य ज्योतिः की झलक दिखला दो। हमें अज्ञानान्धकार के गर्त से निकाल कर अपने दिव्य ज्ञान के पावन आलोक में जीवन नौका खेने वाला बना दो। अपनी कृपा से हम उपासकों को अलंकृत कर दो। अब तक हम बहुत भटके और ठोकरें खाते रहे। प्रभो! अब तो अपनी दया का वरद हस्त हम अपने उपासकों के ऊपर प्रसारित कर दो।

६

अग्निर्होता कविक्रतुः।
सत्यश्चित्रश्रवस्तमः।
देवो देवेभिरागमत्॥ ऋ० १। १। ५

शब्दार्थ—(अग्निः) सर्वदृक् (होता) अन्तर्बोध कराने वाला (कविः) क्रान्तदर्शी परमज्ञानी (क्रतुः) संसार को उत्पन्न करने वाला (सत्यः) अविनाशी सदा एक रस विद्यमान रहने वाला (चित्रश्रवस्तमः) अद्भुत श्रवणादि गुणों से युक्त (देवः) दिव्य गुणों का भण्डार (देवेभिः) दिव्य शक्तियों से युक्त (आगमत्) सदा प्रकाशित होता है।

भावार्थ—हे सर्वदृक् अर्थात् सब कुछ जानने वाले प्रभो। आपसे इस संसार में कुछ भी तो छिपा हुआ नहीं है। घट-घट वासी होने से प्रत्येक प्राणी के हृदय में उठने वाले संकल्प-विकल्प आपसे ओझल नहीं हैं। आपसे छिपाकर हम अपने मनों में कोई विचार भी नहीं रख सकते। निष्काम भावना से किये गये प्रत्येक शुभ कार्य में आप प्रकाशित होने वाले और कार्यकर्त्ता को शक्ति के देने वाले हैं। आप तो परमज्ञानी, ज्ञान के अनन्त भण्डार हो। आपके ज्ञान का कोष अक्षय और अपार है!

यह सारा संसार आपने ही अपने परम सामर्थ्य से रचा है। प्रभो! आप सर्वशक्तिमान् हो। आपको इस महान् रचना कार्य के सम्पन्न करने में किसी भी प्रकार के सहायक वा साधन की आवश्यकता नहीं है। अनादि प्रकृति को इस महती संसृति में परिवर्तित करने वाले आप ही हो। आप सदा अखण्ड एकरस विद्यमान हो। आप जन्म मरण के बन्धन से सदा मुक्त रहने वाले अच्युत अविनाशी हो। आप स्वयम् अर्थात् अपनी सत्ता से सदा वर्तमान रहने वाले हो।

आपके श्रवण, ईक्षण, मनन आदि गुण अद्भुत, पूर्ण और महान् हैं। विना भौतिक साधनों के आप सब कुछ सुनने देखने और मनन करने वाले हो। आपकी कीर्ति व महिमा भी अद्भुत और महान् है, महत्तम है जिसका कोई अन्त ही नहीं हैं। आप सर्व दिव्य गुणों के आगार हो। वह गुण-गुण ही नहीं जो आप में पूर्णता को प्राप्त न हो। आप इन दैवी गुणों के ऐसे केन्द्र हो कि जिसको पाकर मानव कृतकृत्य हो जाता है और उसकी सब कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। आपके उपासक के अन्दर इन दिव्य गुणों की मात्रा प्रतिबिम्बित होने लगती है। जिस प्रकार अग्नि के सान्निध्य से लोहा दीप्तिमान बन जाता है वैसे ही आपका उपासक भी तेजोमय बनकर संसार में चमकने लगता है।

प्रभो! अपने इन महान् दिव्य गुणों को मुझ उपासक के अन्दर प्रस्फुटित कर दो। मुझ शरणागत को तेजोमय बना दो जिससे मैं आपकी आज्ञाओं का वाहन बन कर सतत उनका जगत् में विस्तार कर अपने जीवन को सफल बना सकूं।

१०

अग्ने यं यज्ञमध्वरम्।
विश्वतः परिभूरसि॥
स इद्देवेषु गच्छति॥ ऋ० १-१-४॥

शब्दार्थ—(अग्ने) ज्योतिः स्वरूप परमात्मन् जिस (अध्वरं) हिंसा रहित (ययं) यज्ञ के (विश्वतः) सर्व प्रकार से (परिभूः)

रक्षक (अीस) हो (सः) वह यज्ञ (इत) निश्चय पूर्वक (देवेषु) दिव्य-गुणों को (गच्छति) प्राप्त करता है।

भावार्थ—अग्नि में किये जाने वाले यजनों तथा देश, जाति समाज एवं प्राणिमात्र के हित की कामना से किये जाने वाले उपकार कर्मों का नाम यज्ञ है। अग्निहोत्र में तो केवल सात्त्विक औषधियाँ, अन्न, घृत, फलादि ही आहुत किये जाते हैं। और इन पदार्थों के सर्वथा हिंसा रहित होने से ही यज्ञ को अध्वर नाम से पुकारा जाता है। किन्तु अन्यायी, अत्याचारी आक्रान्ता आदि के विरुद्ध राष्ट्रहित वा जनहित की दृष्टि से शस्त्रों का प्रयोग भी किया जाता है और इसमें हिंसा भी होती है किन्तु इस वेद विहित हिंसा की गणना हिंसा की कोटि में नहीं की जाती। राष्ट्र कल्याणार्थ रचा गया यह अश्वमेध भी निश्चय अध्वर है।

स्वार्थ साधना से सर्वथा शून्य और जनकल्याण की दृष्टि से किये गये समस्त यज्ञों में उस पावन प्रभु की रक्षा का हाथ सदा साथ रहता है। वह प्रभु तो निश्चय ही इन यज्ञों की रक्षा करने हारे हैं। परोपकार की उज्ज्वल भावना से किये गये इन यज्ञों के द्वारा याज्ञिकों को आत्यान्तिक सुख, सन्तोष और शान्ति का अनुभव होता है। परहित अथवा राष्ट्रहित सहे गये कष्ट आत्मा में स्वाभिमान की भावनाएँ जाग्रत करते हैं इनसे मानव मर्त्य से देव बनने लगता है। किन्तु यदि वह अपनी सेवाओं के बदले पुरस्कार, पारितोषिक, ख्याति आदि प्राप्त करने की भावना को किञ्चित मात्र भी पास फटकने देता है तो उसका तेज नष्ट हो जाता और उसका पतन होने लगता है।

जो मानव कर्त्तव्य कर्म समझकर ही इन यज्ञों को अपपे जीवन में करता रहता और अपनी सेवाओं को प्रभु को समर्पित करता चला जाता है निश्चय वह एक दिन देवत्व को प्राप्त करेगा और दिव्य सुख एवं शान्ति को उपलब्ध करेगा।

प्रभो हमें बुद्धि दो कि हम निष्काम भावना से अपने जीवन में उपकार एवं सेवा रूपी यज्ञ को करने वाले बन जाएँ और अपने जीवन को सफल बनाएँ।

अग्ने रक्षाणो अंहसः ।
प्रतिष्म देव रीषतः ।।
तपिष्ठैरजरो दह ।। ऋ० ७-१५-१३ ।।

शब्दार्थ—(अग्ने) हे सर्वव्यापक प्रभो ! (नः) हम सबकी (अंहस) पापों से (रक्षा) रक्षा करो (देव) हे देव (रीषतः) हानि पहुँचाने वालों के (प्रतिष्म) हम विरोध में खड़े होवें (अजरः) आप कभी जीर्ण न होने वाले प्रभो (तपिष्ठै) घोर सन्तापों द्वारा उनको (दह) पीडित करो ।

भावार्थ—हे घट-घट वासी प्राणनाथ प्रभो ! हमें ऐसी सद्‌बुद्धि प्रदान करो कि हम अपने जीवन में कभी पाप न करें । सदा पापाचरण से बचे रहें । पाप करने वालों के सम्पर्क व सहवास से हम अपने को सदा पृथक् रखें । जब कभी यह पाप बर्बस हमको घेरने लगें तो आप उस समय अपनी रक्षा का हाथ बढ़ाओ और इनसे हमारी रक्षा करो । हमारे अन्दर पापों के प्रति तीव्र घृणा का भाव जागृत करो और शक्ति दो कि हम उनसे डटकर लोहा ले सकें । जीवन को नष्ट करने वाले पापों और पापियों से संघर्ष करने में हमारी विजय हो । आपकी अद्‌भुत रक्षण शक्ति हमारे अन्दर स्फूर्ति, तेज और पराक्रम को जागृत करने वाली होवें ।

यदि महान् शक्तिशाली पापी सम्राट् भी अपनी विशाल सेनाओं द्वारा हम पर आक्रमण करे और हमको मिटाना चाहे तो हम निर्भय और निःशंक होकर प्राणपण से उससे टक्कर लेवें, उसकी संहार कारिणी सेना के सामने जूझने वाले बनें और अपने जीवन की अन्तिम घड़ी तक उस पापी का सामना करते रहें। रण में पीठ दिखाकर भागने वाले हम कभी न बनें ।

प्रभो ! आपकी शक्ति तो अजेय है, कभी उसका ह्रास नहीं होता वह तो सदा पूर्ण ही रहने वाली है उसके क्षय होने की तो कभी कल्पना भी नहीं की जा सकती ।

आपकी पापसंहारिणी शक्ति अद्‌भुत और महान् है, उसके सामने संसार

की बड़ी-से-बड़ी आसुरी शक्ति ठहर नहीं सकती ।

प्रभो ! अपनी उस अद्भुत शक्ति का संचार धर्मनिष्ठ पवित्र आत्माओं में करदो जिससे वह पापियों और पापों का दहन करने में समर्थ हो सकें ।

१२

अग्ने शुक्रेण शोचिषा ।
विश्वाभि देव हूतिभिः ।।
इमं स्तोमं जुषस्व नः ।। ऋ० १-१२-१२

शब्दार्थ—(अग्ने) हे घट-घट वासी ज्योतिःस्वरूप परमात्मान् ! (शुक्रेण) शुद्ध पवित्र प्रकाशयुक्त (शोचिषा) तेज के द्वारा (विश्वाभिः) समस्त (देवहूतिभिः) दिव्य आन्तरिक प्रेरणाओं द्वारा (नः) हमारे (इमं) इस (स्तोमं) यज्ञ को (जुषस्व) चमकृत कर दो ।

भावार्थ—परमात्मदेव घट-घट के वासी अविनाशी दिव्य प्रकाश के महान् पुत्र हैं उनकी आत्म-ज्योतिः वा तेज अकथनीय है जो पापियों को दग्ध करने वाला, पापों को दूर भगाने वाला, मलिनता नाशक और अन्तःकरण को पवित्र करने वाला है । उस ज्योति की थोड़ी-सी भी झलक मानव को भयङ्कर पाप गति से बचाने वाली, जीवन-पथ के अन्धकार को दूर भगाने वाली, पापों की घनघोर निशा में बिजली की भाँति कौंद कर मार्ग दर्शन कराने वाली है । भूले राही को रास्ता दिखलाने वाली है ।

उस प्रभु की रक्षा के साधन महान और दिव्य हैं । भयङ्कर कान्तारों, तूफानों और संग्रामों में भी वह रक्षा करने वाला है । रक्षा करने वाले उसके असंख्य हस्त सर्वत्र फैले हुए हैं । ऊँचे पर्वतों के हिमपात में सागर की लहरों और अग्नि की भयङ्कर ज्वालाओं में भी वह अपने चक्र से कर्त्तव्यनिष्ठ मानव की रक्षा करता है । अन्तस्तल से निकली हुई उसकी वास्तविक प्रार्थनाओं को वह निश्चय सुनने वाला है ।

हम निरन्तर त्याग और बलिदान के पथ पर चलते हुए अपने को यज्ञमय बनाने वाले बन जाएँ । हम अपने जीवन को उस प्राणनाथ प्रभु की आशाओं

का वाहन बना डालें। बस उस प्रभु की आज्ञाओं और आदेशों का पालन करना ही हमारे जीवन की साधना और व्रत हो। हमारी साधना स्वार्थ शून्य और हमारा त्याग दया से पूर हो। हमारे दान में ख्याति की कामना का लेश न हो। हमारे बलिदान में केवल मात्र कर्त्तव्य पालन की भावना ही विद्यमान हो। हम जो यज्ञ करते हैं, अथवा परोपकार के जो कुछ भी कार्य करते हैं उसमें आत्मत्याग की पूरी पुट हो। हमने अपने जीवन में जो कुछ भी देश जाति के कल्याण एवं मानव के उत्थान हित तप और त्याग किया है वह तो केवल मात्र अपने कर्त्तव्य का पालन किया है उसके बदले में किसी पुरस्कार की कामना करना अपने तप त्याग के तेज को नष्ट करना है। प्रभो! हमारी आप से यह ही विनती है कि हमारे तप और त्याग को अधिक-से-अधिक तेजोमय बना दो। तप, त्याग, नेकी और परोपकार करने के उपरान्त उसकी तो स्मृति मात्र भी हमारे से दूर हो जावें और इस प्रकार हमारे जीवन का यह यज्ञ चमत्कृत हो उठे।

१३

अग्ने सुखतमे रथे।
देवां ईडित आ वह।
असि होता मनुर्हितः॥ ऋ० १-१३-४

शब्दार्थ—(अग्ने) परम प्रकाशपूर्णप्रभो! (देवां ईडित) देवों द्वारा स्तुति किये हुए (सुखतमे) अत्यन्त सुखों से भरपूर (रथे) जीवन रथपर (आ वह) हमको चढ़ाये (होता) आप इस सृष्टि-यज्ञ के महान होता (मनुः) सब कुछ जानने वाले (हितः) परम हितकारक (असि) हो।

भावार्थ—परमात्म देवने मानव जीवन यात्रा के निमित्त इस सुन्दर शरीर रूपी रथ की रचना की है। यह रचना इतनी विचित्र, आश्चर्यजनक एवं पूर्ण है कि मानव इसके एक-एक कल पुर्जे को लखकर आश्चर्य चकित हो जाता है। यदि इस प्रकार रथ का माता पिता द्वारा सही प्रकार से रक्षण किया जाय

और बाल्यकाल से ही ब्रह्मचर्य के पूर्ण संरक्षण द्वारा इसको पुष्ट किया जाय तो इसमें आश्चर्यजनक शक्ति एवं बल का विकास होता है और मानव अपनी संसार यात्रा अत्यन्त सुख के साथ पूरी कर सकता है। संसार के तपस्वी, योगी मानव इस रथ को सदा सम्यक् प्रकार से रक्षण करते, रथ के इन्द्रिय रूपी घोड़ों को सदा साधकर रखते, इसके प्रग्रह (लगभग) और सरथी अर्थात् मन और बुद्धि पर भी सदा नियन्त्रण रखते उनको कभी गाफिल नहीं होने देते क्यों कि वे जानते हैं कि यह रथ पूर्व जन्मों के पुण्य के प्रताप से प्राप्त होता है और इस ही रथ के द्वारा संसार की यात्रा पूरी करके जीवन के ध्येय को प्राप्त किया जा सकता है। यह मानव शरीर ही है जो आत्मा को दिव्य धाम तक पहुँचा सकता है अर्थात् मुक्ति तक की प्राप्त कर सकता है।

प्रभो ! आप इस संसार रूपी महान् यज्ञ के रचयिता हो और आपने हमारे कल्याण के हेतु ही यह महान् यज्ञ रचा है।

प्रभो ! आप परमज्ञानी हो। आपका ज्ञान सदा एक रस विद्यमान रहता है। आपके ज्ञान में भ्रम का लेश भी नहीं है इसलिए आपकी यह रचना भी निर्दोष एवं पूर्ण है।

आप तो महान् मनस्वी हो। अतः आपने इस रथ और संसार की रचना भी अत्यन्त बुद्धिमत्ता के साथ की है। प्रभो ! आप परम करुणानीर, दयालु हो अपनी सन्तात पर आपकी कृपा व दया सदा बनी रहती है। आपने अपनी सन्तान अर्थात् प्राणीमात्र के कल्याण हेतु ही इस संसार की और संसार के प्रत्येक पदार्थ की रचना की है। नाथ ! आपसे बढ़कर कौन हमारा हितैषी है आप जैसे परम हितु को पाकर अब और किस की हम याचना करें।

१४

अतो विश्वान्यद्भुता।
चिकित्वाँ अभिपश्यति।
कृतानि या च कर्त्वा ॥ ऋ० १। २५। ११

शब्दार्थ—(अतः) उस परमात्मा के (विश्वानि) समस्त (अद्-

भुता) विचित्र आश्चर्यजनक (कृतानि) सृष्टि रचनादि कार्य हैं (या) जिनको (आङ्‌ चिकित्वा) सम्यक्‌ ज्ञान पूर्वक जानकर (कर्त्वा) और रचकर (अभिपश्यति) उन पर सम्यक्‌ दृष्टि रखता है।

भावार्थ—सृष्टि रचना का प्रत्येक कार्य अत्यन्त अद्‌भुत विचित्र और महान्‌ है। पृथिवी, आपः तेज, वायु, आकाश तत्वों की रचना, सूर्य, ध्रुव आदि नक्षत्रों, मंगल, बुध, बृहस्पति आदि ग्रहों और चन्द्रमादि उपग्रहो की सृजना आश्चर्यजनक और महान्‌ है। परमात्मा के अतिरिक्त अन्य किसी की सामर्थ्य नहीं कि उनकी रचना कर सके।

प्राणी के कल्याण के लिये इन पञ्चतत्वों के योग से विभिन्न प्रकार के अन्न, वनस्पति, शाक, फल ओषधियों को उत्पन्न करने वाला भी वही परमात्मा है।

प्रत्येक प्राणी के शरीर की रचना और शरीर के अन्दर नाना नस नाड़ी, अस्थि, मज्जा आदि धातुओं की सर्व सृजना भी परमात्मा द्वारा ही होती है। इस सारी-की-सारी सृष्टि रचना को परमात्मा से भिन्न अन्य कोई कर ही नहीं सकता।

परमात्मा पूर्ण ज्ञानी है अतः उसकी रचना भी पूर्ण है। उसमें कहीं कोई त्रुटि नहीं। परमात्मा को अपनी सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ का सम्यक्‌ ज्ञान रहता है। कोई भी पदार्थ उसके ज्ञान से एक क्षण के लिये भी ओझल नहीं रहता। परमात्मा अपनी सृजना का संरक्षण सहज स्वभाव से करते हैं। प्रत्येक कार्य पर पूर्ण दृष्टि उनकी सदा रहती है। ऐसे उस परम ज्ञानी, परम दयावान्‌ परमोपकारी स्रष्टा को विसारना महान्‌ कृतघ्नता और पाप है। वह प्रभु हम को कभी भी नहीं विसारता, अतः हम क्यों उसको विसार कर कृतघ्न और पापी बनें।

१५

अपां मध्ये तस्थिवान्सं।
तृष्णाविदत्‌ जरितारम्‌।
मृडा सुक्षत्र मृडय॥ ऋ० ७।८९।४,

शब्दार्थ—(अपां) कर्मों के (मध्ये) बीच में (तस्थिवान्सँ) बैठे

हुए, बन्धे हुए (जरितारं) स्तुति कर्त्ता को (तृष्णा) सांसारिक लालसा (विदत्) घेरे रहती है (सुक्षत्र) हे सम्यक् प्रकार से पालन करने वाले (मृड) अपनी कृपा द्वारा (मृडय) कृतार्थ करो।

भावार्थ—कर्मबन्धन में जकड़ा हुआ यह सारा संसार चल रहा है। जीवात्मा अपने पूर्वजन्म के कर्मों के कारण ही नाना अच्छी बुरी योनियों को प्राप्त होता है। नरतन को पाकर भी जीव को कर्म-बन्धन सुगमता से छोड़ने वाला नहीं। निज अज्ञान एवं पूर्व-संस्कारों के कारण उत्पन्न हुई भोगों की लालसा मानव को मर्कट की भान्ति निरन्तर नचाती रहती है। भोगों को भोगकर वह आत्मिक शान्ति की कामना करता है किन्तु भोगों के द्वारा इस शान्ति का मिलना सम्भव नहीं। शान्ति-पथ के पथिक के लिये विरक्ति और त्याग का होना अनिवार्य है '

त्यागमय जीवन व्यतीत करते हुए वैराग्य वृत्ति को दृढ़ करते जाने से और ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना व उपासना का निरन्तर अभ्यास करने से चित्त को डाँवा डोल न होने देकर ईश-ध्यान में निरन्तर नियमपूर्वक लगाते रहने से मानव एक दिन इस तृष्णा के सागर के पार पहुँच सकता है। इस आसक्ति से उसका छुटकारा हो सकता है किन्तु केवल अभ्यास मात्र पर्याप्त नहीं होता। जिस समय तक उस अतुलित दया के भण्डार प्राणनाथ प्रभु की दया वा कृपा का साया उस पर नहीं पड़ता इस लालसा के बन्धन से छुटकारा पाने में समर्थ नहीं होता। नाथ! आप ही हमारे एकमात्र सहायक और सम्बल हो। आपसे बढ़कर अन्य कोई हमारा सहारा नहीं। अपनी कृपा हम पर प्रसारित करो।

दया-सिन्धो! अपनी दया का द्वार हम अपने उपासकों के लिये खोल दो। हमें आसक्ति से दूर हटाओ और कर्म-बन्धनों से हमें छुटकारा दिलाओ। हमें अपने दिव्य धाम में प्रवेश पाने का अधिकारी बना दो।

१६

अस्माँ अवन्तु ते शतम् ।

अस्मान्त्सहस्रमूतयः ।

अस्मान्विश्वा अभिष्टयः ।। ऋ० ४-३१-१०

शब्दार्थ—(अस्माँ) हम सब का (ते) आपके (शतं) सैकड़ों (अस्माँ) हम सबका (सहस्रं) हजारों (ऊतयः) रक्षा के साधन (अवन्तु) त्राण करने वाले हों (अस्माँ) हम सब को (विश्वा) समस्त प्रकार के (अभिष्टयः) कल्याण प्राप्त होवें।

भावार्थ— हे परमेश्वर्यवान् जगन्नियन्ता जगदीश्वर ! आपके पास प्राणी-मात्र की रक्षा करने के साधनों का भण्डार अक्षय अद्वितीय और महान् है। आप प्रत्येक प्राणी की हर अवस्था में तथा हर स्थान में रक्षा करने वाले हो। आपकी रक्षा के हाथ भयंकर असाध्य रोगों व आपत्तियों से त्राण करने में तथा युद्ध क्षेत्रों में भी रक्षा करने के निमित्त विस्तृत रहते हैं। निश्चय ही आप सहस्रों प्रकार से रक्षा करने वाले हो। हम इन भौतिक नेत्रों से आपके दर्शन तो नहीं कर पाते किन्तु मानस नेत्रों द्वारा आपके महान् त्राणकर्त्ता हस्तों का सर्वत्र अनुभव करते हैं।

पर्वतों के शिखरों और कन्दराओं में, निर्जन बीहड़ वनों और कान्तारों में, सागर की उत्ताल तरंगों, भयंकर भूकम्पों और झञ्झावातों में भी आप अपने भक्तों और अनुचरों की रक्षा करने वाले हो। न्याय नियमों के आधार पर जिन को आप बचाना चाहते हो, संसार की कोई शक्ति उनका संहार नहीं कर सकती और जो आपकी न्याय-व्यवस्था में सन्ताप और मृत्यु का ग्रास बनने वाले हैं उनको कोई बचा नहीं सकता। प्यारे प्रभो ! आप तो जीवों का नाना विधि कल्याण करने वाले हो। आपने अपनी चिरन्तन प्रजाओं के लिये सर्व प्रकार की आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक सम्पदाओं का भण्डार खोला हुआ है। किन्तु मानव अपनी ही भूलों के कारण आँखें होते हुए भी इन विभूतियों को नहीं देखता और इनसे आवश्यक लाभ भी नहीं उठाने पाता

है। कृपा करो कि हम आपकी इन विभूतियों की अनुभूति लेने वाले बन जायें और आसक्ति त्याग कर इनसे अपने जीवन को कृतकृत्य करने में संलग्न हो जायें। हम आपकी दिव्य अनुकम्पा के साये में रहते हुए अपने सर्वतोमुखी उत्थान एवं कल्याण के सम्पादन करने में पूर्ण प्रयत्न से जुट जायें। बस यही हमारी कामना और जीवन की सच्ची साधना बन जाय।

१७

अहमिद्धि पितु:परि।
मेधामृतस्य जग्रभा।
अहं सूर्य इवाजनि॥

ऋ० ८। ६। १० सा०। २। २। ३। ८ अथर्व २०-११५

शब्दार्थ—(अहं) मैं उपासक (इद् हि) विशेष निश्चयपूर्वक (पितु:) पालन कर्त्ता परमात्मा की (परि) सम्यक् प्रकार से उपासना में संलग्न हूँ (ऋतस्य) सत्य की (मेधां) धारणावती बुद्धि को (जग्रभा) मैंने धारण किया हुआ है (अहं) मैं (सूर्य इव) प्रकाशमान सूर्य की भाँति (आजनि) हो गया हूँ।

भावार्थ—प्रभु की उपासना में जिसने पूर्ण सिद्धि प्राप्त कर ली है तथा जिसने अपने और परमात्मा के बीच के भेदकारक पर्दे को सर्वथा उठा दिया है, जो सम्यक् प्रकार से उस पतित पावन, विश्व का संरक्षण करने हारे परमपिता के दर्शन करने का अभ्यासी बन गया है और कण-कण में ज्ञान दृष्टि से उसकी छटा निरखने लगा है तथा जो मानव ऐसी अनुभूति लेने लगा है कि वह "ब्रह्म सर्वत्र परिपूर्ण हो रहा है और उससे कोई भी स्थान शून्य नहीं है", ऐसे अभ्यासी मानव की ज्योतिष्मती बुद्धि सत्य और केवल सत्य को ही धारण करने लगती है। ऐसा मानव अनृत से सर्वथा पृथक् रहकर मनसा-वाचा कर्मणा एकमात्र सत्य का ही प्रकाश करने लगता है। ऐसा मानव पक्षपात से ऊपर उठकर नग्न सत्य का ही सर्वथा प्रकाश करना अपने जीवन का ध्येय बना लेता है। सत्य के प्रकाश करने में ही वह मानवमात्र का हित

ग्रौर कल्याण देखने लगता है ! मतवाद से ऊपर उठकर एकमात्र धर्म का दिव्य दर्शन, बखान एवं ग्राचरण करना उसके जीवन का लक्ष्य बन जाता है। कैसी भी विपरीत परिस्थिति क्यों न ग्राए वह सत्य को कभी त्यागता नहीं। सत्य का प्रकाश करने में उसको ग्रपने प्राणों की भी चिन्ता नहीं रहती। यह नाशवान् शरीर ग्राज रहे या न रहे इसकी उसे चिन्ता नहीं। उसको चिन्ता है तो केवल चिरन्तन व शाश्वत सत्य को सदा दृढ़तापूर्वक धारण किये रहने की। "सत्य ही जीवन ग्रौर ग्रनृत मृत्यु है" यह उसके जीवन का ग्रन्तरा बन जाता है, वह ग्रपने क्रियात्मक जीवन द्वारा इस ग्रन्तरे की सतत घोषणा करता रहता है। ऐसा सिद्ध पुरुष सूर्य के समान ससार में प्रकाशित होता है संसार के ग्रज्ञान ग्रन्धकार को, पक्षपातपूर्ण मत-मतान्तरों को विदीर्ण कर दिव्य सत्य का प्रकाश करना ग्रौर संसार की ग्रात्माग्रों के कलमष को धोकर उनको सत्यता का पथिक बनाना उसके जीवन का पवित्र लक्ष्य वन जाता है।

हे जगत्पावन प्रभो ! हम ग्रपने उपासकों पर कृपा करो। हमारे हृदयों में सत्य के प्रति ग्रगाध प्रीति जागृत कर दो। हमारे हृदयों को श्रद्धा से पूर्ण कर दो। हम ग्रनृत से ऊपर उठकर मनसा वाचा कर्मणा सत्य मार्ग पर चलने वाले बन जायें ग्रौर सतत साधना द्वारा ग्रापके दिव्य दर्शन कर ग्रौर ग्रापके दिव्य तेज से युक्त होकर संसार में ग्रापके ग्रादेशों के वाहन बन जायँ।

१८

ग्रात एतु मनः पुनः।
क्रत्वे दक्षाय जीवसे।
ज्योक् च सूर्यं दृशे॥ ऋ० १०-५७-४

शब्दार्थ—(ग्रात) चारों ग्रोर फैला हुग्रा (मनः) मनस्तत्व (पुनः) बारंबार (क्रत्वे) त्यागपूर्ण (दक्षाय) दाक्षिण्य संयुक्त (जीवसे) जीवन के निमित्त (एतु) प्राप्त होवे (च) तथा (ज्योक्) सम्यक् प्रकार से (सूर्यं) दिव्य प्रकाश के केन्द्र परमात्मा के (दृशे) दर्शन करें।

भावार्थ—यह मनस्तत्व चारों ओर फैला हुआ है। मैं भौतिक साधनाओं द्वारा इस व्यापक तत्त्व के साथ सम्बन्ध स्थापित करूँगा। और इस सम्बन्ध द्वारा दूसरों के मनों में भद्र भावनाओं का सञ्चार करूँगा। इसी मनस्तत्व के योग से मैं विश्व में दिव्य भावनाओं का विस्तार करूँगा।

मैं अपने मन का पूर्ण संयम करते हुए आदर्श त्यागपूर्ण दिव्य यज्ञीय जीवन व्यतीत करूँगा और अपने जीवन में ज्ञान योग की साधना द्वारा दक्षता संपादित करूँगा। मेरा जीवन दाक्षिण्य, विलक्षण बुद्धिमत्ता एवं दूरदर्शिता से संयुक्त रहेगा। मैं अपने विवेक से सतत कार्य करता हुआ विश्व में दिव्य जीवन की ज्योति जगाने वाला बनूंगा। मैं भली प्रकार साधना का धनी बन कर अपने अन्दर उस दिव्य परम ज्योति का साक्षात् करूँगा। उस अकथनीय अलौकिक ज्योतिः के पावन प्रकाश में स्वयं प्रकाशमान एवं ज्योतिमय बनकर दिव्य आनन्द का भोग करूँगा। सांसारिक सुख तो उस आनन्द के सम्मुख तुच्छ एवं हेय हैं, मैं कभी भूलकर भी सांसारिक सुख भोगने में लिप्त न हूँगा। यह सांसारिक भोग मुझे उत्थान के पुण्य मार्ग से भ्रष्ट कर पतन की ओर ले जाने वाले हैं अतः मैं दृढ़ संकल्प के साथ इन भोगों से ऊपर उठकर दिव्य सुख अर्थात् आनन्द की पावनी गंगा में ही अवगाहन करूँगा और संसार के मानवों को दिव्य सुधा का रसास्वादन कराऊँगा। दिव्य ज्योतिः के सान्निध्य से स्वयं ज्योतिर्मय बनकर विश्व को ज्योतिर्मय बनाऊँगा। बस यह ही मेरे जीवन की एकमात्र साधना हो, यही उस प्यारे प्रभु से मेरी विनति है कि मेरी यह साधना पूर्ण हो।

१६

इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं
न स्वप्नाय स्पृहन्ति ।।
यन्ति प्रमादमतन्द्राः ।। ऋ० ८ । २ । १८

शब्दार्थ—(देवाः) विद्वान् मनस्वी मानव (सुन्वन्तं) परोपकार, निर्माण एवं उत्पादन करने वाले को (इच्छन्ति) कामना वा

सराहना करते हैं (स्वप्नाय) स्वप्नलोक में विचरने वाले कर्मयोग से दूर रहने वाले की (न) नहीं (स्पृहन्ति) कामना वा चाहना करते हैं। (अतन्द्राः) निद्रा, आलस्य, कर्म-हीनता से दूर रहने वाले अर्थात् जागरूक, उद्यमी, कर्मनिष्ठ मानव (प्रमादं) प्रमाद को (यन्ति) पार कर जाते हैं।

भावार्थ—यह संसार मानव के लिये महान् कर्मक्षेत्र है। निरन्तर कर्मयोग में लगे रहना और जीवन में अच्छे-से-अच्छे कर्मों का करना मानव का धर्म है। "चरन्वैति चरन्वैति" अर्थात् चलते रहने में ही मानव का कल्याण है। थक कर अर्थात् हिम्मत हार कर बैठ जाना कायरता है।

संसार में आकर अपने को बनाना और समाज के हित कुछ निर्माण करना मानव का पुनीत कर्त्तव्य है। केवल संसार के भोगों को भोगते जाना और प्रत्युपकार लेशमात्र न करना तथा निर्माण व उत्पादन से दूर रहना मानवता नहीं पशुता है। ऐसा भोगवादी मानव तो समाज के लिये भार रूप ही बन जाता है। यज्ञीय जीवन ही मानवता और यज्ञ शून्य जीवन यापन करना पशुता है।

स्वप्नों की दुनिया में विचरना और कर्त्तव्य कर्मों के अनुष्ठान से परे भागना मूर्खता है। देवों का प्यारा बनने के लिये आवश्यक है कि मानव निरन्तर प्रगति पथ पर आरूढ़ रहे और वास्तविकता को हृदयंगम कर जीवन में आगे बढ़ जाय।

जो मानव भोगवाद में लिप्त नहीं होते और आलसी कर्महीन बनकर जीवन यापन नहीं करते अपितु सतत कर्मयोग का अनुष्ठान करते हैं वे प्रमाद, मिथ्या अभिमान, दम्भ और आत्मवञ्चना से वचकर अपने जीवन का सही विकास करते और उसको धन्य वनाते हैं।

२०

इन्द्र आशाभ्यस्परि।
सर्वाभ्यो अभयं करत्।
जेता शत्रून् विचर्षणिः॥ ऋ० २-४१-१२

शब्दार्थ—(सर्वभ्यः) सर्व (आशाभ्यस्परि) दिशाओं में (इन्द्र)

परमेश्वर्यवान परमात्वदेव (अभयंकरत्) अभय कर दे वह (विचर्षणि) सर्वद्दष्टा एवं सर्वत्र विद्यमाम हैं और (शत्रून्) धर्म और मानवता के शत्रुओं को (जेता) जीतने वाले हैं ।

भावार्थ—परमात्मदेव किसी लोक वा धाम विशेष में ही रहने वाले नहीं । किसी चौथे वा सातवें कल्पित आकाश में ही उनका निवास हो, सो बात भी नहीं है । वह तो पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊपर, नीचे सब दिशाओं तथा दिशाओं के कोणों में निवास करने वाले हैं । संसार का ऐसा कोई लोक नहीं, कोई नक्षत्र, ग्रह वा उपग्रह नहीं, जिसमें उनकी सत्ता समाई न हो । वह तो कण-कण में घट-घट में निवास करने वाले हैं । वह सर्वशक्तिमान् सकल सम्पदाओं के स्वामी हैं । धनी, श्रेष्ठी, राजा, महाराजाओं के भवनों, प्रासादों में वह विद्यमान हैं । दीन दुःखी, दरिद्री, कंगाल की टूटी कुटिया में भी उनका चरण पहुँचा हुआ है । वह केवल समर्थों के ही नाथ नहीं अपितु असमर्थों महा-अनाथों के भी नाथ है । वह तो केवल समर्थों के ही बल हों सो बात नहीं । वह तो असमर्थों, अनाथों, दीनों, दुखियाओं के परम बल और सहारे हैं ।

वह हमें सब दिशाओं में प्रदिशाओं में अभय का दान देने हारे हैं । परमात्मा का भक्त संसार में कभी भय नहीं खाता, संकटों की घनघोर घटाओं में भी वह निर्भय होकर प्रगति करता, निवड़ अन्धकार में आन्तरिक प्रकाश के बल पर सदा आगे ही आगे बढ़ता चला जाता है । धर्म पथ पर चलते हुए यदि उसका कोई साथ नहीं देता तो वह निराश होकर बैठ नहीं जाता अपितु एकाकी ही आन्तरिक ज्योति के बल पर जो प्रभुभक्ति के कारण उसको प्राप्त हुई है आगे की ओर ही अपना कदम बढ़ाता चला जाता है ।

परमात्मदेव अपनी असंख्य दर्शन शक्तियों द्वारा संसार की हर वस्तु को देखते-प्राणीमात्र के प्रत्येक कार्य का ज्ञान रखते निश्चय ही सर्वत्र उनकी पहुँच है । वह मानवता के शत्रुओं का विनाश करते उनके बल की हानि करते उनके तेज को मन्द करते और उनको अपने न्यायनियम में जकड़ कर यथावत् दण्डित करने वाले हैं । उस परम-सखा, हितु, कल्याण कर्ता स्वामी को छोड़कर हम और किसकी उपासना करें । किसका सहारा पकड़ें । बस वह ही हमारे एकमात्र उपास्य देव हैं । हमारी वन्दना, अर्चना स्तुति के एकमात्र वही पात्र हैं ।

२१

इन्द्रायेन्दो मरूत्वते ।
पवस्व मधुमत्तमः ।
अर्कस्य योनिमासदम् ।। साम ५ । ६ ।६

शब्दार्थ—(इन्दो) हे दिव्य ऐश्वर्य के प्रदाता स्वामिन् ! आप (मधुमत्तमः) परम माधुर्य युक्त हो मुझ में (मरूत्वते) जीवन शक्ति प्रदान करने वाले (इन्द्राय) ऐश्वर्य के निमित्त (पवस्व) पवित्रता उत्पन्न कीजिए (अर्कस्य) महान् प्रकाश पुञ्ज भास्कर की (योनिं) निमित्त कारण आपके (आसदम्) निकट बैठता हूँ ।

भावार्थ—प्राणनाथ प्रभो ! आप इन्द्र हो, दिव्य ऐश्वर्य के केन्द्र हो, मानव को आत्मिक विभूति आपके द्वारा ही उपलब्ध होती है । आप ही मानव के हृदय में प्रकाशित होकर उससे सच्चा सुख दिव्य सुख अर्थात् आनन्द प्रदान, करते हो ।

आप माधुर्य के भण्डार हो । आपसे अधिक मीठी, प्यारी वस्तु संसार में अन्य कोई नहीं है, आपकी उपासना द्वारा मैं माधुर्य में सराबोर हो जाता हूँ, जिधर देखता हूँ माधुर्य चहुँ ओर सरसता है ।

आपका यह दिव्य मधु जीवनी शक्ति का संचार करने वाला है । इस मधु का पानकर, इस आध्यात्मिकता के मद का आस्वादन कर मैं अपने को आत्मिक बल, शक्ति और तेज से संयुक्त करता हूँ और दिव्य विभूति अर्थात् ऐश्वर्य का धनी बन जाता हूँ । आप तो मधु के अगाध सरोवर हो बताओ उसके तीर को छोड़कर अब मैं कहाँ भटकता फिरूं । मैं इस सरोवर के किनारे बैठकर अक्षय मधु का जी भर पान करूँगा अपने रोम-रोम को माधुर्य युक्त करूँगा, मेरे जीवन की नीरसता दूर भागेगी और दिव्य मद की मस्ती सर्वत्र छा जावेगी ।

प्रभो ! आप महान् प्रकाश के पुञ्ज हो । इस जगत् में प्रकाशमान् सूर्य भी आपके प्रकाश से ही प्रकाशित है । यही क्यों समस्त प्रकाशमय लोकलोकान्तर आपसे ही प्रकाश पाते हैं । आप तो इन सबके निर्माता और प्रकाश

युक्त करने वाले हो। मैं फिर इस भौतिक सूर्य की उपासना में अपने जीवन को क्यों खपाऊँ क्यों न उस प्रकाशों के प्रकाश ज्योतियों की महान् ज्योति की उपासना में संलग्न हो जाऊँ। यह सूर्यादि तो भौतिक प्रकाश के ही पुञ्ज हैं किन्तु आप तो दिव्य आध्यात्मिक प्रकाश के केन्द्र हो। भौतिक प्रकाश से तो मेरा भौतिक शरीर इन्द्रियाँ आदि ही उपकृत हो सकती हैं। मेरे आत्मा का अन्धेरा इनसे मिटने वाला नहीं। मुझे तो आवश्यकता है आत्मिक प्रकाश की। आपसे भिन्न अन्य आध्यात्मिक प्रकाश का केन्द्र इस संसार में है नहीं। अतः मैं आपके अतिरिक्त अन्य किसी की उपासना में कभी भूलकर भी अपने समय और शक्ति का क्षय न करूँगा।

२२

इन्द्र वाजेषु नोऽव।
सहस्र प्रधनेषु च।
उग्र उग्राभिरूतिभिः॥ ऋ० १-७-४

शब्दार्थ—(इन्द्र) हे परमैश्वर्यवान् दुःख दारिद्रय विनाशक परमात्मदेव (नः) हमारी (उग्राभिः) तेजस्विनी (ऊतिभिः) रक्षा के साधनों द्वारा (वाजेषु) यज्ञों में (अव) रक्षा करो (च) और (सहस्र) असंख्य (प्रधनेषु) संग्रामों में रक्षा करो।

भावार्थ—हे सकल ब्रह्माण्ड के स्वामी, परम ऐश्वर्य के भण्डार, दुःख दरिद्रता का विनाश करने हारे परमेश्वर! आप उग्र हैं परम तेजवान हैं आपकी किसी से तुलना नहीं की जा सकती। आपके दिव्य तेज के सामने कोई ठहर ही नहीं सकता। आप तो प्राणीमात्र के दुःख दैन्य और दरिद्रता का विनाश करने वाले हो। अपने ही दुष्ट कर्मों के कारण हम दुःखादि में फंसते हैं। आप तो हमारे हृदय मन्दिर में विशेष रूप से विराजमान होते हुए सदा श्रेष्ठ कर्मों के करने की हमको प्रेरणा देने वाले हैं। हम अपना जीवन यज्ञीय अर्थात् त्याग एवं परोपकारमय बनावें, यह ही आपकी सतत प्रेरणा हमारे लिए रहती है। और जिस समय भी हम त्याग और परोपकार

के पथ पर चलना आरम्भ कर देते हैं आप असंख्य प्रकार से अनगिनत रूपों में हमारी रक्षा करते और हमें उस पथ पर चलने की शक्ति और साहस प्रदान करते हो।

हमारे जीवन में नाना प्रकार के संकट, भय और आपत्तियाँ आ आकर हमको घेर लेती हैं और सत्पथ से विचलित करने का प्रयत्न करती हैं किन्तु आप हमें बल, शक्ति और साहस प्रदान कर उनका सामना करने की प्रेरणा देते और सामना करने में समर्थ बनाते हो। भयङ्कर-से-भयङ्कर संग्रामों में, दुष्ट अत्याचारी आततायी के आक्रमणों में आपकी रक्षा का वरदहस्त हमारे ऊपर रहता है। अत्याचारियों के बल को निस्तेज बनाना, उनके साहस को क्षीण करना और उनके अन्दर भय, लज्जा, संकोच को उत्पन्न करना आपका ही कार्य है।

प्रभो! हमें बल दो, शक्ति दो, साहस और धैर्य दो जिससे हम पुण्य मार्ग से कभी विचलित न हों और प्रबल एव भयङ्कर शत्रु का सामना करने में समर्थ हों। आप ही हमारे सबसे बड़े सम्बल, सहायक और सखा हो।

२३

इन्द्रं प्रातर्हवामहे।
इन्द्रं प्रयत्यध्वरे।
सुते हि त्वा हवामहे॥ ऋ० १-१६-३

शब्दार्थ—(इन्द्रं) परमैश्वर्यवान् दुःख विनाशक परमात्मा को (प्रातः) प्रभात वेला में (हवामहे) हम सब मिलकर प्रेम पूर्वक पुकारें (इन्द्रं) परमात्मा को (प्रयति) पवित्र (अध्वरे) हिंसा रहित यज्ञों में पुकारें (सुते) निष्पन्न किए हुए, ध्यान योग द्वारा प्रत्यक्ष किये जाने वाले (हि) निश्चय पूर्वक (त्वा) तुझको (हवामहे) हम सब पुकारते हैं।

भावार्थ—निशीथकाल में गाढ़ निद्रा लेने के उपरान्त ऊषाकाल की आगमन वेला में उठकर शौचादि से निवृत हो एवं स्वस्थचित्त होकर उस

परश्मैवर्यवान् सर्व-व्यापक प्राणनाथ प्रभु का आवाहन करना चाहिये। चित के चलायमान रहने पर परमात्मा का आवाहन सिद्ध नहीं होता। सन्ध्या सफल तब ही होती है जब चित्त स्वस्थ और एकाग्र हो।

सर्वहित कामना से युक्त होकर दूसरों को किसी प्रकार की हानि न पहुँचाते हुए और सबके भले में अपना भला समझते हुए निरन्तर परोपकार के कार्यों में मानव को युक्त रहना चाहिये। अपने लाभ के लिये दूसरों को हानि पहुँचाना पामरता और ईश्वर द्रोह है, नास्तिकता और शठता है। अपने से यदि किसी को लाभ नहीं पहुँच सकता तो कम-से-कम किसी को हानि तो पहुँचानी ही नहीं चाहिए। श्रेष्ठ आस्तिक मनुष्य का धर्म तो यह है कि वह स्वयं हानि उठाकर और आवश्यकता पड़ने पर अपने जीवन तक को खतरे में डाल कर परहित साधन करे। धर्म के परवानों का काम तो पराई आग में स्वयं जल मरना है। अपने को मिटाकर दूसरों को उठाना मानव का श्रेष्ठ धर्म है।

इस श्रेष्ठ धर्म का पालन करने वाला मानव ही यथार्थ में उस इन्द्र के आवाहन करने का विशेष अधिकारी है। जो स्वयं परोपकार की अग्नि में तपा है वह ही तो उस दिव्य अग्नि की सच्ची उपासना कर सकता है।

केवल शाब्दिक आवाहन अथवा नाम कीर्तन से प्रयोजन सिद्ध होने वाला नहीं। ज्ञानयोग द्वारा उस प्राणनाथ प्रभु के गुणकर्म एवं स्वभावों को हृदयंगम करना होगा। परमात्मदेव के पावन स्वरूप का दर्शन अपने मानस नेत्रों से करना होगा। ध्यान योग के संघर्षण से दही में अन्तर्हित घृत की भाँति उसका मन्थन करना होगा। काष्ठ में छिपी अग्नि की भान्ति ध्यान के संघर्ष से प्रदीप्त करना होगा और इस प्रकार प्रदीप्त उस दिव्य अग्नि का, परमैश्वर्यवान् इन्द्र का, आवाहन करने से भक्तिभाव से गदगद होकर उसको पुकारने से वह प्यारे प्रभु निश्चय भक्त के हृदय में प्रकट होंगे और उसको अपना दिव्य दर्शन देकर उसके जीवन को सफल करेंगे। आओ हम सब मिलकर सच्ची साधना और भक्ति से उसका आवाहन करें और अपने जीवन को सफल बनावें।

२४

इन्द्र सौमस्य पीतये ।
स्तोमैरिह हवामहे ।
उक्थेभिः कुविदागमत् ।। ऋ० ३ । २७ । २

शब्दार्थ—(सोमस्य) जीवन रस के (पीतये) पान करने के लिये अथवा संरक्षण करने के हेतु (इह) इस जीवन में (स्तोमैः) स्तुति गान द्वारा (इन्द्रं) सर्वव्यापक परमात्मदेव का (हवामहे) हम आवाहन करते हैं। (उक्थेभिः) वैदिक ऋचाओं द्वारा (कुविद्) वेदज्ञ विद्वान् (आगमत्) वेदवाणी के रहस्य को प्राप्त होता है।

भावार्थ—जीवन-रस अर्थात् आध्यात्मिक सुधा को, वेहदानियत के सरूर को, प्राप्त करने के लिये, इस रूहानी मस्ती को हासिल करने के लिये अथवा इस आध्यात्मिक मधु का पान करने के लिये मानवों को चाहिये कि वह भक्ति-रस में डूबे हुए मधुर जीवन-संगीतों का, जीवन को तरंगित करने वाले गीतों का गान करें और इस संगीत द्वारा विश्वव्यापक, प्राणाधार प्रभु का अपने मन मन्दिर में आवाहन करें। उसकी पावन ज्योति को जागृत करें।

यह मानव-जीवन यदि इस भक्तिरस से शून्य है, इस वहदानियत के सरूर से खाली है और आध्यात्मिक मधु का इस जीवन में यदि आस्वादन नहीं किया और इस मस्ती में झूम-झूम कर यदि उस प्यारे मनमोहक का आवाहन नहीं किया गया तो मानव-जीवन निस्सार है।

विश्व के प्राचीनतम नैसर्गिक अमर काव्य वेद की पावनी ऋचाओं द्वारा यदि मानव ने अपने आपको परिष्कृत नहीं किया, वेद मंत्रों के रहस्य को हृदयंगम कर यदि उसका प्रेम पूर्वक मनन नहीं किया तो केवल मंत्र पाठ से उसका कोई विशेष हित होने वाला नहीं। वेदों के मंत्र तो संसार की समस्त भाषाओं की जननी संस्कृत भाषा में हैं जो भाषा पूर्ण वैज्ञानिक एवं ध्वन्यात्मक हैं। थोड़ा-सा ही प्रयत्न मानव को उसके रहस्य के समीप पहुँचा देने वाला है। वेद किसी देशविशेष की वा जाति विशेष की सम्पत्ति नहीं हैं। वह तो

मानव मात्र की चिरन्तन सम्पत्ति है। उससे लाभ उठाने का अधिकार मानव-मात्र को है। अतः आओ हम वेद की पावनी ऋचाओं के रहस्य को हृदयंगम करने में प्रयत्नशील हों, और गायत्री आदि छन्दों में उन ऋचाओं का गान करें, और गान करते-करते उसके रहस्य को मानस नेत्रों से देखें और आध्यात्मिक मस्ती में सराबोर हो जाएँ।

२५

इन्द्रं वो विश्वतस्परि।
हवामहे जनेभ्यः।
अस्माकमस्तु केवलः॥ ऋ० १। ७। १०

शब्दार्थ—(वः) हम सबों के जो (विश्वतस्परि) सब ओर विराजमान हैं ऐसे (इन्द्रं) परमात्मदेव को (जनेभ्यः) प्राणीमात्र के कल्याण लिये (हवामहे) हम आवाहन करते हैं बस (केवल.) वह अद्वितीय परम ब्रह्म परमात्मा (अस्माकं) हम सबों के (अस्तु) उपास्य देव हों।

भावार्थ—परमात्मदेव कण-कण में समाए हुए हैं संसार का कोई कोना ऐसा नहीं जहाँ वह स्वयं अपनी सत्ता से विद्यमान न हों। सर्वव्यापी प्रभु अपनी शक्ति से ही केवल नहीं, अपितु अपनी सत्ता से सर्वत्र विद्यमान हैं।

परमात्मदेव अपने सहज स्वभाव से प्राणीमात्र का भला करने वाले हैं किसी की सिफारिश की उनके दरबार में पहुँच नहीं और न किसी की खुशामद से वह द्रवित होने वाले हैं। पुण्य-आत्मा से लेकर दीन अनाथ असहायों तक का कल्याण करना और पापात्मा समर्थ शक्तिशाली तक को दण्ड देना उनका नियम है। वह तो पूर्ण न्यायकारी हैं। उनके न्याय में उनकी अपार दया ओतप्रोत है, अप्रसन्न होकर अथवा बदले की भावना से कभी किसी को दण्ड नहीं देते; अपितु जीव के हित उसके उत्थान एवं कल्याण के निमित्त ही उसको दण्ड देते हैं।

हमें केवल अपने कल्याण के लिये ही नहीं अपितु संसार के कल्याण के

लिये उस प्रभु का आवाहन करना है। जब वह प्राणीमात्र के पिता हैं अर्थात् पालन करने हारे हैं तब हम केवल अपने लिये उनको पुकारें, यह तो संकुचित भावना है और इस संकुचित भावना के साथ उस भूमा अर्थात् महान् विशालतम प्रभु का कोई सम्बन्ध नहीं।

वह प्रभु एक और अद्वितीय हैं। उन जैसा अथवा उनसे महान् अन्य कोई द्रव्य संसार में नहीं। उनकी उपासना त्याग कर अन्य किसी जड़ पदार्थ की उपासना करना अथवा जीव को अपना इष्टदेव बनाना मूर्खता है। विश्व-व्यापक अग्नि को त्यागकर कंकर की उपासना करना हमारे लिये शोभा नहीं देता। उस दिव्य अग्नि की उपासना से ही हमें आध्यात्मिक तेज, ज्योतिः प्रकाश उपलब्ध होगा। जड़ कंकर की उपासना से सिवा जड़त्व के अन्य कुछ मिलनेवाला नहीं। चैतन्य जीवों की उपासना से जहाँ उनके गुणों को हम धारण कर सकेंगे, वहाँ उनके अवगुणों का भी प्रभाव हमारे ऊपर निश्चित पड़ने वाला है। अतः उस निष्कलंक, दोष-रहित परमात्मतत्त्व की उपासना से ही हमारा यथार्थ कल्याण सिद्ध होने वाला है। अतः आओ हम सब केवल उस एक पवित्रतम प्रभु के ही उपासक बनने का सदा प्रयत्न करें।

२६

इन्दुः पविष्ट चेतनः।
प्रियः कवीनां मतिः।
सृजदश्वं रथीरिव।। सा० ५-१०-५

शब्दार्थ—(इन्दुः) आह्लाद के देने वाला (चेतनः) सत्कर्मों की ओर प्रेरणा देने वाला (पविष्टः) हमारे अन्दर पवित्रता का सञ्चार करने वाला है। (प्रियः) प्राणों का प्यारा (कवीनां मतिः) क्रान्त-दर्शी योगी जनों के मननका केन्द्र बिन्दु (रथीः) वीर योद्धा की (इव) भाँति (अश्वं) घोड़े को (सृजत्) साधने वाला है।

भावार्थ—संसार में उस प्राणनाथ प्रभु से भिन्न अन्य कोई वस्तु अधिक प्रिय नही है। संसार का सकल ऐश्वर्य तथा सारे सगे-सम्बन्धी जो मानव के

प्रिय होते हैं सब अस्थायी हैं और मोह मिश्रित प्रेम के कारण यह विछोहे के समय दुःख के कारण बन जाते हैं किन्तु वह प्रियतम नाथ तो हमारा सनातन सगा सम्बन्धी है उसका कभी विछोह होता ही नहीं और विशुद्ध प्रेम का आधार होने के कारण वह तो जीवन में सदा ही आन्तरिक हर्ष उल्लास और आनन्द का देने हारा है।

वह प्रभु स्वयं सनातन से परमपवित्र और मानव को पवित्रता की ओर सदा प्रेरणा देने वाला है। सत्कर्मों के अनुष्ठान में बल एवं शक्ति का सञ्चार करने वाला और उत्तरोत्तर हर्ष और आनन्द से युक्त करने वाला है।

संसार के समस्त क्रान्तदर्शी तत्ववेत्ता ध्यानी योगी जनों की साधना का वह केन्द्र विन्दु है। उनके लिये तो वह निश्चय ही एकमात्र ध्यान एवं मनन किया जाने वाला दिव्यतत्व है, उसको छोड़कर अन्य किसी जड़-चेतन वस्तु का ध्यान एवं चिन्तन कभी कोई क्रान्तदर्शी मानव नहीं करता।

चतुर सवार जिस प्रकार अपने अश्व को साधता है और निर्दिष्ट मार्ग पर उसको द्रुतगति से दौड़ाता है उसी प्रकार वह परम चतुर सारथी सत्कर्मों के पवित्र पथ पर दौड़ लगाते हुए ध्यान एवं कर्मयोग के साधक जनों को सदा साधे रहता है और उनको आत्मिक बल से युक्त करता है। जब कभी वह मानव प्रमादवश पथ से विचलित होने लगता है तो वह परमदयालु सखा अपनी प्रेरणारूपी लगाम से उसको पथभ्रष्ट होने से बचाता है।

२७

इमं मे वरुण श्रुधी ।
हवमद्या च मृडय ।
त्वामवस्युराचके ।। ऋ० १-२५-२९

शब्दार्थ—(वरुणः) वरण करने योग्य सर्वश्रेष्ठ (इमं) इस (मे) मेरी (हवं) प्रार्थना वा पुकार को (श्रुधी) श्रवण करो (अद्य च) और अविलम्ब (आ मृडय) सम्यक् प्रकार से आनन्दयुक्त करदो। (अवस्युः) दया, कृपा वा सहायता की याचना करने वाला

(त्वां) तुझ को (आचके) सम्यक् प्रकार से याचना करता है।

भावार्थ—उस प्यारे प्रभु की खोज में अपने जीवन में न जाने मैं कहाँ-कहाँ भटकता फिरा हूँ। अनेक गिरि-कन्दरा, कान्तारों एवं जड़-तीर्थों को छाना किन्तु उसका कहीं पता नहीं पाया। अनेक नामों से और उच्च स्वर से उसे पुकारा किन्तु उस विचित्र मीत ने कहीं सुनवाई न की। मैंने उसको ही एकमात्र अपना उपास्यदेव माना और सब से किनारा किया किन्तु इस पर भी उसको तरस न आया। आज मुझे यह पता चल गया है कि वह प्यारा मीत मेरे अन्दर ही विशेषरूप से छिपा बैठा है अतः बाहिर न पुकार कर अब मैं अन्दर-ही-अन्दर उसका भक्ति भावना से आवाहन करूंगा। मुझे विश्वास है कि अब वह मेरी पुकार सुनेगा और अवश्य सुनेगा और मुझे अपने दिव्य-दर्शन से कृतार्थ कर आनन्दित करेगा।

अब तो मैं अपने जीवन की अनेक घड़ियाँ प्रतिदिन उसकी उपासना में लगाऊँगा और उसकी दिव्य ज्योतिः का दर्शन कर प्रकाश युक्त बनूंगा। मैंने बस अब एकमात्र उसका ही सहारा पकड़ लिया है। रक्षा की याचना करूंगा तो बस उसी से, कृपा और सहायता की कामना करूंगा तो उसी से। बल, तेज, विक्रम और ओज की भीख मांगूंगा तो केवल उसी से। असली दाता तो वही है और उसी के दान से मेरा कल्याण होने वाला है।

२८

इह त्वष्टारमग्रियम् ।
विश्वरूपमुपह्वये ।
अस्माकमस्तु केवलः ॥ ऋ० १·२५·१०

शब्दार्थ—(इह) इस जीवन में (विश्वरूपं) सारे विश्व को रूप के देने हारे अथवा सारे विश्व में प्रकाशित होने वाले (अग्रियं) सबसे श्रेष्ठ एवं महान् अथवा सृष्टि-रचना के पूर्व भी एकरस विद्यमान रहने वाले (त्वष्टारं) विश्व का निर्माण करने हारे तथा निज सत्ता से उसको ढाँपने वाले को (उपह्वये) निकटतम पहुँचकर अर्थात्

अन्तरात्मा में पुकारता हूँ (केवल:) एक अद्वितीय प्रभु (अस्माकं) हम सबका (अस्तु) उपास्य हो जावे ।

भावार्थ—सतत सत्प्रयत्नों द्वारा मैं निश्चय अपने इसी जीवन में उसी सकल ब्रह्माण्ड के निर्माणकर्त्ता, असंख्य योनियों के विधाता और कण-कण में निजसत्ता से विद्यमान प्यारे प्रभु का जो सब से श्रेष्ठ और महान् है सब का नेता और नियन्ता है और सृष्टि रचना के पूर्व भी निज सत्ता से सदा एक-रस विद्यमान रहने वाला है उसका अपनी अन्तरात्मा में सफल आवाहन करूँगा। उसका दिव्य-दर्शन कर जीवन के सकल पाशों का उन्मूलन करूँगा। अब मैं बाह्य संसार में अधिक न भटकूँगा। संसार की चकाचौंध मुझे अब अन्धा न बना सकेगी। नाना योनियों में भटकता फिरा हूँ और अनेक जीवनों में अनगिनत यातनाएँ मैंने सहन की हैं। अब उनसे त्राण पाने के लिये मैं इस नरतन में जो उस अहेतुक दयासिन्धु की अनुपम कृपा से मुझे उपलब्ध हुआ है, निश्चय सच्चे हृदय से शक्ति-भर प्रयत्न करूँगा।

वह मेरा प्यारा सच्चा सखा निश्चय एक है, उस जैसा दूसरा अन्य कोई नहीं है। वह पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, नीचे ऊपर सर्वत्र एकरस निज-सत्ता से व्याप रहा है।

उसके स्वाभाविक ज्ञान, बल एवं क्रियाएँ असीम और महान् हैं। वह हमारा है। हमारा रक्षक और पालनकर्त्ता है। उसकी दया का हाथ सर्वत्र व्याप रहा है। मुझे वह अपनी दया से कभी वंचित करने वाला नहीं। मैंने अब दृढ़तापूर्वक उसका सहारा पकड़ लिया है, वह छुड़ाकर भागने वाला नहीं। वह तो मुझे अपनी आनन्दमयी गोद में बिठाने वाला है। अतः मैं अब एकमना उसकी उपासना करूँगा और निश्चय इस जीवन में अपने अभीष्ट को सिद्ध करके ही रहूँगा।

२६

ईडे अग्निं विपश्चितम् ।
गिरा यज्ञस्य साधनम् ।
श्रुष्टिवानं धितावानम् ॥ ऋ०-३-२७-२११

शब्दार्थ—(गिरा) अपनी वाणी द्वारा (विपश्चितं)परम विद्वान्, ज्ञानी

(यज्ञस्य साधनम्) दिव्य कर्मों को सिद्ध कराने वाले (श्रुष्टिवानं) अत्यन्त पवित्रता कारक (धितावानम्) महान् हितकारी (अग्निं) सर्वज्ञ सर्वव्यापक परमात्मदेव का मैं (इडे) स्तवन करता हूँ।

भावार्थ—परमात्मदेव गुरुओं के गुरु और ज्ञानियों के परम ज्ञानी हैं अर्थात् ज्ञानियों के भी ज्ञान के पावन स्रोत हैं। उनका ज्ञान पूर्ण और अनन्त है। प्रभु का ज्ञान तो कभी घटने-बढ़ने वाला भी नहीं। वह तो सदा एकरस विद्यमान रहता है। अज्ञान का उस पर कभी आवरण भी आने वाला नहीं। देश, जाति, राष्ट्र एवं मानव के कल्याण के निमित्त किये जाने वाले स्वार्थ एवं द्वेष भावना से सर्वथा रहित दिव्यकर्मों के अनुष्ठान में वह मानव को सदा शक्ति व बल का प्रदाता है। वह प्रभु तो निश्चय मानव की पापवृत्तियों अज्ञान, मलिनता तथा अशुचिता का निवारण करने वाला है। सदा प्रगति पथ पर मानव को चलने की प्रेरणा देना उस परमदयालु पिता का स्वभाव है। किन्तु मानव यदि अपनी मलिनतावश उस प्रेरणा की अवज्ञा करे तो यह उसका दुर्भाग्य है। परमात्म देव तो स्वभाव से ही प्राणी मात्र का हित साधने वाले हैं। जीव के लिए अपने निज पाप कर्मों का फल भोग अनिवार्य है। कोई भी इस फल भोग के बन्धन से बच ही नहीं सकता किन्तु इस फल भोग में भी तो उस प्यारे प्रभु की दया अन्तर्हित है। प्रभु के न्याय में निश्चय ही दिव्य दया का वास है।

उस परम ज्ञानी में अखिल ब्रह्माण्ड का ज्ञान अन्तर्हित है। वह प्रत्येक जीव के अन्दर निवास करने के कारण उसकी समस्त भावनाओं और कृत् कर्मों को जानने वाला है। अतः मैं निष्कपट भाव से पवित्र की हुई अपनी वाणी द्वारा उसका स्तवन, वन्दन और कीर्तन करने वाला बन जाऊँ अर्थात् प्रभु के सगुण व निर्गुण रूप का दृष्टा बन जाऊँ।

बस यही मेरे इस जीवन की साधना है।

३०

उदुत्यं जातवेदसम् ।
देवं वहन्ति केतवः ।
दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ ऋ० १-३-११

शब्दार्थ—(उत्) निश्चय (उ) ही (त्यं) उस (जातवेदसं) समस्त उत्पत्तिमान विश्व का ज्ञान रखने वाले (सूर्यं देवं) महान् ज्ञान के केन्द्र एवं प्रकाश के महान् स्तम्भ दिव्य देव के (विश्वाय दृशे) सम्यक् दर्शन करने में (केतवः) मलिनता से ऊपर उठी हुई हमारी बुद्धियाँ (वहन्ति) हमारा वहन करती हैं ।

भावार्थ—मानव के अपने इस जीवन में उस परमात्मा का दर्शन नहीं-नहीं सम्यक् दर्शन असम्भव नहीं । आवश्यकता केवल इस बात की है कि मानव को उसके दर्शन की चाह हो और तदनुसार उसका सत्प्रयत्न भी हो । वह प्रभु तो घट-घट वासी हैं और हमारे कर्मों एवं भावों के जानने वाले हैं । उनसे हमारा कोई भी संकल्प छिपा नहीं । जब उनके दर्शन की चाह वास्तविक होगी तो निश्चय वह हमारे अन्दर अपनी दिव्य ज्योति का प्रकाश करेंगे । वह प्रभु तो प्रकाश के महान् स्तम्भ हैं । उनका प्रकाश सर्वत्र समाया हुआ है । ज्ञानचक्षु द्वारा हम उसकी अनुभूति सर्वत्र कर सकते हैं । अपने तथा उनके मिलन स्थान हृदय में हम उनकी ज्योतिः का दिव्य दर्शन भी कर सकते हैं ।

आवश्यकता केवल इस बात की है कि हम अपनी बुद्धियों को निर्मल बनावें । पाप वासनाओं एवं कुटिलताओं से उनको ऊपर उठावें । यह पवित्र परिष्कृत आभायुक्त बुद्धियाँ निश्चय हमको उन तक पहुँचाने में हमारी साधक होंगी । उस प्रभु के द्वार पर ले जाकर ये बुद्धियाँ हमें खड़ा कर देने वाली होंगी । आगे उस द्वार में प्रवेश करना हमारा अपना कार्य होगा । हम प्रवेश करेंगे तो प्रभु दर्शन हमें निश्चय उपलब्ध होगा ।

३१

उपत्वाग्ने दिवे दिवे ।
दोषावस्तर्धिया वयम् ।
नमो भरन्त एमसि ।। ऋ० १-१-७ ।।

शब्दार्थ—(अग्ने) हे सर्वज्ञ, सर्वव्यापक परम ज्योतिस्वरूप प्रभो ! (वयं) हम उपासकजन (दिवे दिवे) प्रतिदिन (दोषावस्तः) रात्रि एवं दिन के समय में (नमो भरन्तः) श्रद्धा एवं भक्ति भावना को धारण करते हुए (धिया) ध्यानयोग द्वारा (त्वा) तेरे (उप एमसि) समीप में पहुँचने का प्रयत्न करें ।

भावार्थ—प्रभु को पाने के लिए मानव को निरन्तर अभ्यास करना होगा रात्रि और दिन तथा इन दोनों की सन्धि वेलाओं में विशेष रूप से अभ्यास में संलग्न होना होगा । यह रजनियाँ जिनमें मानव पाप वासनाओं में प्रायः रत होता और निकृष्ट आमोद प्रमोदों में फँस जाता है हमें इनमें जागरूक रहना होगा । दिवास की वेला जिसमें मानव सांसारिक कार्यों में निरत रहता है और धर्माधर्म का भी प्रायः विचार न कर जीवन के क्रियाकलाप रचता रहता है उसमें भी सावधान होना होगा ।

मानव को अपनी बुद्धि की मलिनता को दूर हटाना होगा । बुद्धि पर जिन कार्यों के करने से मलिनता का आवरण छा जाता है उनसे उसे बचाना होगा । बुद्धि को परिष्कृत एवं ज्योतिष्मती बनाए बिना मानव का कल्याण नहीं । श्रद्धा एवं भक्तिभावों से हृदय को भरने का भी मानव को प्रयत्न करना होगा ?

जैसे ही बुद्धि परिष्कृत हुई और हृदय भक्ति भावनाओं से युक्त हुआ कि फिर उस पावन प्रभु के पास पहुँचने में देर का काम नहीं । यह ज्योतिष्मती बुद्धि हमको निश्चय उस परम प्रकाश पुञ्ज के द्वार तक ले जाने वाली है । पवित्र हृदय की भक्तिभावना हमें उसके अत्यन्त समीप पहुँचा देने वाली है ।

३२

उप त्वा सातये नरो ।
विप्रासो यन्ति धीतिभिः ।
उपाक्षरा सहस्त्रिणी ।। ऋ० ८-१५-६

शब्दार्थ—(विप्रासः) ज्ञान के धनी (नरः) कर्त्तव्य निष्ठ मानव (त्वा) तुझ को (सातये) दिव्य ऐश्वर्य की प्राप्ति के निमित्त धीतिभिः) भक्ति एवं ज्ञान की प्रखर किरणों द्वारा (उप-यन्ति) प्राप्त होते हैं (उप) तेरे सामीप्य को प्राप्त होकर (सहस्त्रिणी) असंख्य (अक्षरा) दिव्य अमृत धाराओं में अवगाहन करते हैं।

भावार्थ—मानव को कर्त्तव्य कर्मों के अनुष्ठान में पूर्ण मनोयोग से संलग्न रहना चाहिए। और साथ ही ज्ञान योग की उपासना भी करते जाना चाहिये। बिना ज्ञान के उस प्रभु का दर्शन सम्भव नहीं। ज्ञान एवं कर्म की सतत उपासना करते हुए भक्तियोग की साधना भी करनी होगी। बिना ज्ञान एवं कर्म के भक्ति योग की सिद्धि सम्भव नहीं। अर्थात् ज्ञान-कर्म-भक्ति की युगपत् साधना द्वारा मानव दिव्य ऐश्वर्य को प्राप्त करने मे समर्थ हो सकता है।

वह प्रभु असंख्य दिव्य ज्योति की किरणों का अद्वितीय पुंज है। असंख्य अमृतधाराओं का दिव्य स्रोत है।

बाहर के पट बन्द होने पर ही अन्तर्पट खुल पाता है। जब तक यह बाहर का पट खुला रहता है अर्थात् ज्ञान इन्द्रियाँ बाह्य विषयों की ओर भागती रहती हैं और मनवा भी उन्हीं के व्यापार में सन्नद्ध रहता है प्रभु के समीप में आत्म-देव का पहुँचना अर्थात् आवरण के पर्दे को हटाना सम्भव नहीं। अभ्यास के द्वारा जब मनवा ज्ञानेन्द्रियों पर अपना पूर्ण नियन्त्रण स्थापित कर लेता है और आन्तरिक जगत् में अपने राजा आत्मा के साथ चलने लगता है तब निश्चय अन्तर्पट हटने लगता है। पवित्र कर्मों के संस्कार एवं निष्कपट भक्ति की धारा आत्मदेव को परम प्रभु के साम्राज्य में पहुँचा देती है जहाँ वह

दिव्य ज्योति (जलाल) एवं अमृत अर्थात् आनन्ददायिनी अजस्र धारा में निमग्न हो जाता है।

३३

एक इत् तमुष्टुहि।
कृष्टीनां विचर्षणि।
पति र्जज्ञे वृषक्रतुः ॥ ऋ० ६-४५-१६ ।

शब्दार्थ—परमात्म देव (एकः) अद्वितीय है (इत्) निश्चय करके (तं) उसका (स्तुहि) स्तवन करो। वह (कृष्टीनां) ज्ञानी मानवों का (विचर्षणिः) प्यारा सखा है (पतिः) प्रतिपालक है (वृषक्रतुः) श्रेष्ठ-तम उपास्यदेव है। (जज्ञे) निरन्तर उनका हित करता है।

भावार्थ—परमात्मदेव एक है, अद्वितीय है। उसके समान अथवा उससे महान् अन्य कोई दूसरा नहीं है। वह कण-कण में रमा हुआ है। प्रत्येक जीव के अन्दर भी सूक्ष्मतम होने से विद्यमान है। ज्ञानी मानवों का वह परम सखा है और ऐसा सखा है कि जिसका कभी विछोह नहीं होता। ज्ञानी मानव ही अपने ज्ञान चक्षु द्वारा अपने अन्दर उसकी अनुभूति ले सकता है। ज्ञानी जनों को वह सदा निकट तम है और अज्ञानी जनों से वह दूरातिदूर है। अज्ञानका पर्दा पड़ा रहने के कारण निकटतम होते हुए भी वह उनको दिखलाई नहीं देता। अज्ञानी मानव बाह्य संसार में उसको खोजता फिरता है किन्तु कहीं उसका पता नहीं पाता। जब ज्ञान चक्षु खुल जाता है और अपने अभ्यास द्वारा वह उसकी खोज करता है तो निश्चय वह उसको अपने समीप विराज-मान पाता है।

परमात्मदेव कीड़ी से कुञ्जर तक प्राणीमात्रका पालन करने वाले हैं और अपने उपासकों को तो वह नानाविधि भयंकर पतन के गर्तों से बचाने वाले हैं। परमात्मदेव की उपासना ही मानव का यथार्थ त्राण करने वाली है।

वह प्यारा प्रभु तो अहेतुक दयासिन्धु है। यह सारा संसार और संसार की नाना वस्तुएँ प्राणियों के कल्याणार्थ ही उसने रची हैं। ज्ञानी-जन इन

वस्तुओं का सदुपयोग कर अपने जीवन को सफल बना लेते हैं और अज्ञानी दुरुपयोग कर दुःख सागर में गोते खाते हैं। बस, वह प्रभु ही एकमात्र सबका उपास देव है। अतः आओ हम सब मिलकर उसकी उपासना करें और अपने जीवनों को सफल बनावें।

३४

कया नश्चित्र आभुवत्।
ऊती सदावृधः सखा।
कया शचिष्ठयावृताः ।। यजु० २७-३९

शब्दार्थ—(नः) हम सब प्राणियों के निमित्त (चित्र ऊती) विचित्र संरक्षण शक्ति (कया) किसके द्वारा (आभुवत्) प्रकट हुई (सदावृधः) सदा पूर्ण महत्व के साथ एक रस विद्यमान (सखा) सबका मित्र परमात्मा (कया) अपनी आनन्ददायिनी (शचिष्ठया) शक्ति द्वारा (वृता) आवृत हैं।

भावार्थ—असंख्य लोकलोकान्तरों को धारण करने वाली, असंख्य योनियों में असंख्य जीवों का संरक्षण करने वाली, प्रत्येक देहधारी के निमित्त जीवन की आवश्यक वस्तुओं को जुटा कर उनका संरक्षण करने वाली, विचित्र अद्भुत महती शक्ति का प्रादुर्भाव किससे हुआ अथवा उसका आधार क्या है? इस प्रश्न का उत्तर एकमात्र सनातन आधार सदा अपने पूर्ण महत्व के साथ एकरस विद्यमान प्राणीमात्र का सखा प्राणीमात्र का मित्र अर्थात् विनाश से प्राणियों को बचाने हारा और सत्पथ की प्रेरणा देने वाला वह प्यारा प्रभु ही है। वह प्यारा प्रभु तो अपनी असख्य भुजाओं द्वारा अपनी संरक्षण शक्तियों द्वारा प्राणीमात्र का उनके असंख्य स्थूल व सूक्ष्मशरीरों में सदा पृथिवी, अन्तरिक्ष एवं द्युलोको में संरक्षण करने वाला है।

उस प्यारे प्रभु की यह संरक्षण शक्ति दिव्य महती और कल्याणकारिणी है। हम सदा उस अहेतुक दयासिन्धु की दिव्य संरक्षणशक्ति द्वारा इस ब्रह्माण्ड में सुरक्षित हैं।

जीवन के प्रत्येक क्षण में उसकी महती संरक्षण-शक्ति हमारे साथ विद्यमान रहती है। हमें चहुँ ओर से उस शक्ति ने आच्छादित किया हुआ है। हम उस अपने परम सखा की संरक्षण शक्ति की अनुभूति लेने वाले यदि बन जायें तो फिर हमें संसार में किसका भय सता सकता है! समस्त दिशाएँ और प्रदिशाएँ हमारे लिये निर्भयता का सन्देश देने लगती हैं। भयंकर शत्रु के संहार में भी निर्भयता हमारा साथ देने लगती है हम तो मृत्यु तक का भी आलिंगन निर्भयतापूर्वक करने वाले बन जाते हैं।

३५

कविमग्निमुपस्तुहि।
सत्यधर्माणमध्वरे।
देवममीव चातनम् ।। साम० १-३-१२

शब्दार्थ—(कविं) क्रान्तदर्शी (अग्निं) प्रकाश एवं ज्ञान के पुञ्ज की (अध्वरे) हिंसाशून्य यज्ञीय कर्मों में (सत्यधर्माणं) सन्मार्ग के प्रदर्शक की (देवं) दिव्य गुणनिधान की (अमीवचातनम्) सदा अमृतकी वर्षा करने हारे की (उपस्तुहि) समीप में पहुँचकर स्तुति करो।

भावार्थ—वह प्राण प्यारा प्रभु क्रान्तदर्शी है। हमारे आन्तरिक भावों और संकल्पों तक को जानने वाला है। उससे कुछ भी छिपा नहीं है। वह ज्ञान एवं प्रकाश का महान् पुञ्ज है। हिंसाशून्य परोपकारमय पवित्र कर्मों के अनुष्ठान में वह सदा हमारा मार्गदर्शक है। सत्कर्मों के अनुष्ठान करने में रत मानव का वह निरन्तर मार्ग-दर्शन करता है और साथ ही उनको विशेष शक्ति और बल भी प्रदान करता है। वह प्यारा सखा दिव्य गुणों का महान् आगार है। सत्पथ के पथिक के अन्दर अपने दैवी गुणों का सञ्चार करने वाला है। वह कभी किसी प्राणी पर कहर (कोप) की वर्षा नहीं करता, अपितु सतत अमृत की ही वर्षा करना उसका स्वभाव है। अप्रशस्त कर्मों के अनुष्ठान से दीन दुःखी दरिद्री बने मानवों पर भी वह सदा अमृत की ही वर्षा करता है। उसके दण्ड-विधान में भी तो अमृत की परमपुट

विद्यमान रहती है।

अतः आओ ! हम सब एक मात्र उसका ही वन्दन कर अपने जीवन को सफल बनावें। उसकी उपासना से ही हमारे अन्दर दैवी गुणों का सञ्चार होने वाला है और दुर्गुणों से हमारा निस्तार सम्भव है। उसका स्तवन वाह्य शब्दजाल से न करके हमें सच्चे हृदय से श्रद्धा समन्वित हो अपने अन्दर ही करना है, अपने मनमन्दिर में उसकी आराधना करनी है। पुनीत भावनाओं से किये गये आराधन, स्तवन वा वन्दन को वह प्रभु निश्चय सुनने वाला है।

३६

केतुं कृण्वन् अकेतवे ।
पेशं मर्या अपेश से ।
समुषद्भिः अजयथाः ॥ ऋ० १-६-३

शब्दार्थ—(मर्या) मर्यादा का जीवन वा आत्मसयम (अकेतवे) यश, प्रतिष्ठा वा मानशून्य व्यक्ति को (केतुं) यशस्वी सम्मानित (कृण्वन्) बना देता है (अपेशसे) दीन अकिञ्चन आभाहीन को (पेशं) अदीन तेजोमय बना देता है। (सं) सम्यक् प्रकार से (उषद्भिः) ऊषाकाल के सेवन द्वारा (अजायथाः) जीवन का विकास होता है।

भावार्थ – नियमित आहार-विहार एवं आत्म-संयम अर्थात् इन्द्रिय-निग्रह के सतत अभ्यास द्वारा साधारण मनुष्य यश प्रतिष्ठा एवं सम्मान का समाज में पात्र बन जाता है। समाज के निम्नस्तर का व्यक्ति भी ऊपर उठ जाता है। दीन, हीन, पतित वा दलित मानव भी समाज में समुचित मान प्राप्त करने लगता है। निज को हेय मानने की भावना लुप्त होने लगती है और आत्मतेज जागृत हो उठता है।

अधिकारवाद की रट लगाने से पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष का जन्म होता और समाज का जीवन अशान्त बन जाता है और मानव का सही विकास भी रुक जाता है किन्तु इस कर्त्तव्य पालन द्वारा परस्पर में सौमनस्य का अभ्युदय

होता तथा समाज में शान्ति का विस्तार होता है।

ऊषा काल में जागना और आत्मतत्त्वका विवेचन करना तथा प्राणायामादिका अभ्यास करना मानव के उत्थान के, मानवता के सही विकास के सुन्दर साधन हैं। आत्मवान् बने बिना मानव व पशु में भेद भी क्या रहता है। पशुत्व से ऊपर उठना और दैवीवृत्तियों को जागृत करना मानव के जीवन की परम साधना है। अविकारवाद के भ्रमजाल में लेशमात्र भी न फँसते हुए कर्त्तव्य-पालन में रत होने में ही निश्चय मानव का और समाज का विकास हुआ करता है।

३७

गूहता गुह्यं तमो ।
वियात विश्वमत्रिणम् ।
ज्योतिष्कर्त्ता यदुश्मसि ।। ऋ० १-८६-१०

शब्दार्थ—(गुह्यं तमः) गहरे अन्धकार को (आ गूहत) हमारे से सर्वथा तिरोहित करदो (विश्वं) सब (अत्रिणं) सद्गुणों को निगल जाने वाले अज्ञान को (वियात) दूर करदो (यदुश्मसि) जिसकी हम कामना करते हैं उस (ज्योतिः) प्रकाश को (कर्त्ता) करने हारे हो।

भावार्थ—जब प्राणायाम की साधना द्वारा प्राणशक्ति बलिष्ठ बना ली जाती है और अभ्यास द्वारा मन का निग्रह कर लिया जाता है तो हृदय-मन्दिर में जो गहरा अन्धकार छाया हुआ होता है वह दूर भागने लगता है। इस अन्धकार को दूर भगाने के लिये निश्चय ही मन का निग्रह करना नितान्त आवश्यक है। विषयों के बाह्य संसार में भटकते रहने से मन का निग्रह सम्भव नहीं अतः मानव को अन्तर्मुखी होना ही पड़ेगा और प्रतिदिन कुछ काल के लिये इन्द्रियों के व्यापार को रोकना ही पड़ेगा।

अन्दर का अज्ञानान्धकार सब दिव्य गुणों को निगल जाने वाला राक्षस है। इस राक्षस से हमें अपनी रक्षा करनी ही होगी। अपने अन्दर ज्ञान का

दीपक जलाए बिना मानव का कल्याण नहीं। अतः हमको इस दीपक को संजोने के लिये तेल और बाती की व्यवस्था करनी ही होगी। प्रणवपूर्वक सप्तव्याहृतियों का जाप और प्रत्याहार का अभ्यास ही यथार्थ तेल और बाती हैं। ज्ञान का दीपक जलाने में ही हमारा कल्याण निहित है अतः इस ध्रुव धारणा के साथ हमें ज्ञानी जनों का संग करना होगा और प्राणायाम के नियम पूर्वक अभ्यास द्वारा मनवा को वश में करना ही होगा। निश्चय तब अन्दर का अज्ञान दूर भगेगा और प्रकाश की ज्योतिः जगेगी। इस ज्योति को जगाना ही मानव की कामना और साधना है। प्रभो! हमें वह सद्बुद्धि प्रदान करो कि हम इस ज्ञान की ज्योतिः के जगाने में श्रद्धापूर्वक संलग्न हो जायें और अपने मानवीय जीवन को सफल बनावें।

२८

चोदयित्री सूनृतानाम्।
चेतन्ती सुमतीनाम्।
यज्ञं दधे सरस्वती॥ ऋ० १-३-११

शब्दार्थ—(सूनृतानां) उत्तम जीवन नृत्यों का (चोदयित्री) प्रबोध कराने वाली (सुमतीनां) श्रेष्ठ परिष्कृत बुद्धियों को (चेतन्ती) दिव्य चेतना से युक्त करने वाली (सरस्वती) पुनीत वाक् देवी (यज्ञं) यज्ञ को (दधे) धारण करती है।

भावार्थ—मनुष्य अपने जीवन में न जाने कितने नाच नाचता रहता है। किन्तु सबसे श्रेष्ठ नृत्य वह है जिसमें किसी मानव का और उसके सम्पर्क में आने वाले अन्य मानवों का अभ्युदय और विकास होता हो। ऐसे जीवन-नृत्यों का प्रबोध प्रभु की पवित्र वाणी वेद सदा कराती रहती है।

मानव की बुद्धि जिन साधनों से परिष्कृत होती है उनका भी बोध यह सरस्वती देवी (वेदवाणी) सदा कराती है और परिष्कृत बुद्धियों में दिव्य भावनाओं का उदय भी सरस्वती देवी की आराधना से ही होता है। जो मनुष्य श्रद्धा एवं ज्ञानपूर्वक वेदवाणी की शरण में जावेगा उसकी बुद्धि का

विकास और उसका दैवीकरण सुनिश्चित है। यह वेदवाणी ही सरस्वती है। इसकी एक-एक ऋचा में पवित्र ज्ञान का रस भरा हुआ है। वेदवाणी तो निश्चय ही जीवन-रस का सञ्चार करने वाली है। वेदवाणी यज्ञों का अर्थात् श्रेष्ठतम पवित्र कर्मों का विधान करने वाली है। पवित्र वैदिक ऋचाओं का भक्ति भाव पूर्वक उच्चारण यज्ञों की प्रतिष्ठा है। बिना वेदपाठ के यज्ञ यज्ञ ही नहीं हैं। यज्ञों का धारण निश्चय यह सरस्वती पवित्र वेद की ऋचाएँ ही करती हैं। व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र के जीवन में यज्ञों का विकास इस सरस्वती देवी के द्वारा ही सिद्ध होता है।

३९

तद्विप्रासो विपन्यवः।
जागृवांसः समिन्धते।
विष्णोर्यत्परमं पदम्॥ यजु० ३४-४४

शब्दार्थ—(विष्णोः) विश्वव्यापक परमात्मदेव का (यत्) जो (परमं पद) सर्व श्रेष्ठ एवं महान् प्राप्त करने योग्य स्थान मुक्तिधाम है (तत्) उसको (जागृवांसः) सदा जागरूक रहने वाले, (विप्रासो) ज्ञान यज्ञ का सदा विस्तार करने वाले (विपन्यवः) भौगिक साधनाओं में रत मानव (समिन्धते) प्रकाश में लाते और प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊपर और नीचे सर्वत्र कण-कण में रमे हुए विष्णु के सर्वश्रेष्ठ आनन्द से परिपूरित धाम को अर्थात् मुक्ति धाम को प्राप्त करने की क्षमता उन्हीं मानवों में होती है जो अध्यात्म ज्ञान के धनी होते और अपनी आन्तरिक शक्तियों का विकास करते हैं। जो नित्य प्रति योगाभ्यास कर मन का निग्रह करते और उसके द्वारा अपनी इन्द्रियों पर पूर्ण नियन्त्रण स्थापित करते हैं। जो मानव सदा जागरूक रहते और कभी भी प्रमाद के वशीभूत नहीं होते और कर्त्तव्य पालन में सदा रत रहते हैं तथा सदैव विवेक से कार्य लेते और किसी भी कार्य में हाथ डालने से पूर्व उसके सम्बन्ध में यथोचित विचार करते हैं वह ही अन्तर्हित दिव्य ब्रह्माग्नि

को जागृत करने में समर्थ होते हैं। जिस प्रकार भौतिक अग्नि दो अरणियों के संघर्षण से प्रबुद्ध होती है उसी प्रकार मन को नीचे की अरणि और प्रणव को उत्तरारणि बनाकर भक्ति समन्वित जाप द्वारा ब्रह्माग्नि जागृत की जाती है।

तिलों में तेल, दीप में घृत, अरणियों में अग्नि की भान्ति ब्रह्म सर्वत्र ओत-प्रोत है और मन्थन द्वारा निश्चय ही उसका प्रादुर्भाव होता है।

४०

तद्विष्णोः परमं पदं ।
सदा पश्यन्ति सूरयः ।
दिवीव चक्षुराततम् ॥ ऋ० १-२२-२०

शब्दार्थ—(विष्णोः) व्यापक परमात्मा का (तत्) वह (परमं) परम (पदं) प्राप्त करने योग्य धाम है। जिसको (सूरयः) पारदर्शी-जन (सदा) निरन्तर (पश्यन्ति) देखते रहते हैं (दिवि) आकाश में (आततम्) फैले हुए (चक्षुः) दर्शन के हेतु सूर्य की (इव) भान्ति।

भावार्थ—कण-कण में रमे हुए उस विश्व व्यापक परमात्मदेव का प्राप्त करने योग्य सर्वोत्तम स्थान वह मुक्ति धाम ही है जिसका बोध ज्ञानी जनों को होता रहता है। ज्ञानी जन उस मुक्ति-धाम की प्राप्ति की सदा प्राणपण से कामना किया करते हैं। अध्यात्मज्ञान के धनी मानव अर्थात् सूरी जनों के जीवन की साधना उस परम पद को प्राप्त करना और दीर्घ काल पर्यन्त आवागमन के चक्कर से बचकर प्रभु के उस दिव्य लोक में जहाँ आनन्द ही आनन्द सदा झरता रहता है निवास करना उनका परम अभीष्ट होता है।

दिव्य धाम में सिद्ध पुरुषों की आत्माएँ अपने कारण शरीरों से परमानन्द का मेल करती है। अबाधगति से ब्रह्मलोक में विचरण करती और कर्म-बन्धनों से मुक्त रहती हैं। जिस प्रकार आकाश में भौतिक सूर्य प्रत्यक्ष उदीयमान होता और दूर-दूर तक अपनी प्रकाश की किरणों का वितान तनता है और जिसके कारण हमारी आँखें संसार की वस्तुओं का दर्शन करने में

समर्थ होती उसी प्रकार वह दिव्य तेजो राशि विष्णु जिसके तेज से यह सूर्यादिक भौतिक तेज के पिण्ड प्रकाशित होते हैं साधना में रत भक्त के हृदय में प्रकाशित होता है और मुक्तावस्था में तो सर्वत्र वह दिव्य परम आनन्द-दायक तेज ही सर्वत्र भासित होता है।

इस दिव्य तेज की अनुभूति लेना मानव की एक पुनीत साधना है। जिस मानव ने अपने जीवन में इस दिव्य तेज की अनुभूति नहीं ली तो उसका इस संसार में आना और यहाँ से जाना कोई भी महत्त्व नहीं रखता।

४१

तत्सवितुर्वरेण्यम्।

भर्गो देवस्य धीमहि।

धियो यो नः प्रचोदयात्॥

ऋ० ३-६२-१० यजु० ३-३५

सा० ३-६-३-१७

शब्दार्थ—(तत्) उस (सवितुः देवस्य) दिव्य गुणों के भण्डार विश्वोत्पादक परमात्मदेव के (वरेण्यं भर्गः) वरण करने योग्य अर्थात् श्रेष्ठतम तेज का (धीमहि) हम सब ध्यान करें (यः) जो परमात्मा (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) पवित्र कर्मों के अनुष्ठान की ओर प्रेरित करे।

भावार्थ—ज्ञान योग द्वारा जिस प्रभु के अस्तित्व एवं महत्त्व की हमने अनुभूति ली है उस सकल जगत् के उत्पादक एवं जीवन शक्ति के दाता परमात्मदेव के अत्यन्त कमनीय धारण करने योग्य दिव्य तेज का हम अपने मनमन्दिर में ध्यान करें। अपनी धारणावती बुद्धि द्वारा उसकी दिव्य अनिर्वचनीय ज्योतिः से हम अपनी लौ लगावें।

अपने-अन्दर बाहर ब्रह्माण्ड के कण-कण में उसकी व्यापक ज्योतिः की अनुभूति करने वाले हम बन जावें।

वह अहेतुक दयासिन्धु निश्चय ही हमारी बुद्धियों को कुकर्म से हटाकर

सनमार्ग की ओर प्रगति करने की प्रेरणा देने वाला है। हमारा यह दुर्भाग्य है कि हम उसकी प्रेरणा की परवाह नहीं करते और जानते हुए भी पाप-पंक से निकलना नहीं चाहते। अन्धकार में ही हम सुख की अनुभूति लेते और प्रकाश से मुँह छिपाने लगते हैं।

जिस दिन भी हम अपनी बुद्धि को सन्मार्गोन्मुखी बनाने का दृढ़ संकल्प धारण करेंगे प्रभु हमारे संकल्प की पूर्ति में निश्चय सहायता प्रदान करेंगे।

४२

तरणिर्विश्वदर्शतो।
ज्योतिष्कृदसि सूर्यः॥
विश्वमाभासि रोचनम्॥

ऋ० १-५०-४

शब्दार्थ—(सूर्यः) विश्व को प्रकाशित करने वाला परमात्मदेव आप (विश्वदर्शतः) दृश्यमान विश्व के (तरणिः) पार ले जानें वाली नौका के तुल्य है (ज्योतिष्कृदसि) प्रभो! आप विश्व को ज्योतिर्मय बनाने वाले हो (विश्वं) संसार की (रोचनं) अत्यन्त कमनीय (आभा) ज्योतिः (असि) हो।

भावार्थ—सकल संसार को उत्पन्न करने हारे और अपनी ज्ञान की ज्योतिः से उसको प्रकाशित करने हारे परमात्मदेव मानव जीवन की सर्वश्रेष्ठ नौका हैं। इस नौका में बैठकर यात्रा करने वाला मानव संसार में कभी किसी से वैर नहीं रखता और न कभी विनाश को प्राप्त होता है। अपितु अपने अभीष्ट को अर्थात् दिव्य आनन्द को प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है। योगी जन इस दिव्य सूर्य देव की उपासना द्वारा सकल ब्रह्माण्ड का ज्ञान उपलब्ध कर सकते हैं।

असंख्य लोक-लोकान्तरों का बोध योगी को उपलब्ध हो जाता है। साथ ही इस दृश्यमान विश्व के अन्दर छिपी हुई महती अनिर्वचनीय ज्योतिः एवं शक्ति का साक्षात् भी उसको सुगमता से हो जाता है। सारे विश्व की अत्यन्त

रमणीय वास्तविक आभाभी प्यारे प्रभो आप ही हो। विश्व के कण-कण में आपकी ज्योतिः समाई हुई है। आपकी ज्योतिः से ही सारा विश्व आभावान और कमनीय बना हुआ है। प्रभो ! आपके आश्रय में रहकर हम विश्व की विभूति का साक्षात् करेंगे तथा उसका समुचित प्रयोग करेंगे और उसमें आसक्त न होते हुए आपके दर्शाए हुए मार्ग पर चलकर अपने जीवन को सफल बनावेंगे।

४३

तरत् स मन्दी धावति।
धारा सुतस्यान्धसः ॥
तरत् स मन्दी धावति ॥

ऋ० ९-५८-१ सा० ५-६-१-२-४

शब्दार्थ—(मन्दी) भक्त, स्तोता, आत्मतृप्त (सः) वह मानव (सुतस्य) उत्पन्न की गई (अन्धसः) सोमयुक्त प्राण वा वाणी की (धारा) धारा के साथ (धावति) ऊपर वेग से उठता जाता है (स मन्दी) वह आनन्द तृप्त मानव (तरत्) निश्चय तर जाता है और (धावति) ऊर्ध्व गति बन ऊपर चढ़ जाता है।

भावार्थ—यह दुस्तर दीखने वाला संसार महासागर तरा जा सकता है और निश्चय तरा जा सकता है किन्तु इसको तर वही सकता है जो प्रभु का भक्त होता है और आत्मस्वरूप को जान लेता है। जो मानव आन्तरिक आनन्द से परिपूर्ण होता और संसार में निस्पृह होकर विचरता है बस वही इसे तर सकता है।

मन्दी बनने के लिये मानव को पूर्ण श्रद्धासमन्वित हो प्रभुस्तवन द्वारा अपनी प्रसुप्त शक्ति को जागृत करना होता है। यही शक्ति मन, प्राण और वाणी को उज्जीवित करती हुई ऊपर की ओर चढ़ने लगती है। इसी शक्ति-जागरण को कुण्डलिनी का जागरण कहा जाता है जिसके द्वारा प्राण की धारा मूलाधार से उठकर ऊपर चढ़ने लगती है, हैमवती शक्ति नाचती

कूदती हुई, भजन व स्तवन करती हुई मार्ग में प्राण, वाणी व मन के अद्भुत चमत्कार दिखाती हुई ऊपर अपने शिवरूप स्वामी की तरफ चढ़ने लगती है। यही मानसिक चेतना से युक्त प्राणधारा के रूप में क्रमशः ऊपर जाती हुई अनुभूत होती है। यही उत्पन्न किये हुए (अन्वस्) सोम की धारा है जिसके साथ-साथ आत्मा ऊंचा होता जाता है। इसी धारा के साथ भक्त ऊर्ध्वगति वाला बनता है।

प्रसिद्ध सप्तलोक मानव के अन्दर ही विराजमान हैं। उन्नत होता हुआ आत्मा इन सब लोकों को पार करता हुआ सत्यलोक में पहुँचकर पूर्ण स्वतन्त्र हो जाता है अर्थात् सर्वथा पार हो जाता है। सिर के सत्यलोक में प्राण, वाणी, मन आदि शक्तियाँ जाकर ठहर जाती हैं और शुद्धचित्त ज्ञान स्वरूप आत्मा को समाधि सिद्ध हो जाती है। इस प्रकार प्रभु भक्त मन्दी दुःख सागर को तर जाता और निश्चय ही तर जाता है।

४४

तमध्वरेषु ईडते ॥
देवं मर्त्ता अमर्त्यम् ॥
यजिष्ठं मानुषे जने ॥ ऋ० ५-१४-२

शब्दार्थ—(तं) उस (मानुषे जने) मननशील जनों में (यजिष्ठं) पूज्यतम (अमर्त्यं) शरीर आदि के बन्धन में न आने वाले निराकार (देवं) दिव्यगुण निधान ब्रह्म को (मर्त्ताः) शरीरादि के बन्धन में आने वाले मनुष्य (अध्वरेषु) यज्ञों में, हिंसाशून्य पुण्य कर्मों में (इडते) वन्दन करते हैं।

भावार्थ—संसार के समस्त मननशील मानवों का एकमात्र पूज्य, उपास्य, वन्दनीय एवं अर्चनीय देव वह परम ब्रह्म परमात्मा ही है। वह ब्रह्म निश्चय सर्व सद्गुणों का केन्द्र है। दैवी शक्ति, ज्ञान और क्रिया का निधान है। प्रकाशों का प्रकाश अर्थात् वह सूर्य आदि लोकों का प्रकाश है। उसी के तेज से संसार के सारे तेजोमय लोक अस्तित्व में आते

हैं। वह प्रभु अमर्त्य है। कभी शरीर, नस-नाड़ी के बन्धनों में आने वाला नहीं। नित्य, निरञ्जन, निराकार और निर्विकार है। वह तो बिना पगों के सर्वत्र गति करता, बिना कानों के सब कुछ श्रवण करता, बिन भुजाओं के संसार को रचता और धारण करता, बिना मुख के अपने सर्व सामर्थ्य द्वारा संसार के सकल पदार्थों के रसों को जानने वाला, बिना नेत्रों के संसार की प्रत्येक क्रिया को निरखने वाला और बिना वाणी के मानवों के हृदयों में सत्यज्ञान का उद्बोधन कराने वाला है। हिंसा शून्य परोपकारमय कर्मों के अनुष्ठान द्वारा ही उसकी वन्दना की जाती है। वह दयालु पिता शाब्दिक स्तोत्रों से प्रसन्न होने वाला नहीं। स्वार्थ भावना से शून्य यज्ञीय कर्मों अर्थात् परोपकार कर्मों द्वारा ही उसकी प्रसन्नता का सम्पादन सम्भव है।

४५

तुञ्जे तुञ्जे य उत्तरे।
स्तोमा इन्द्रस्य वज्रिणः ॥
न विन्धे अस्य सुष्टुतिम् ॥ ऋ० १-७-७

शब्दार्थ—(वज्रिणः) पापों का वर्जन करने वाले (इन्द्रस्य) महान् शक्तिशाली परमात्मदेव के (तुञ्जे तुञ्जे) प्रत्येक दान व कृपा के सम्बन्ध में (ये) जो (उत्तरे) एक से एक बढ़कर (स्तोमाः) स्तुति वा महिमाएँ हैं (अस्य) इस दयालुदेव की (सुष्टुतिम्) सुन्दर स्तुति अथवा पूर्ण महिमा को (न विन्धे) मैं नहीं जानता।

भावार्थ—परमात्मदेव की शक्ति अद्भुत और अपार है। वह हम से पापों को दूर भगाने वाले एवं निरन्तर पापों से बचने की प्रेरणा देने वाले हैं। किन्तु हम अल्पज्ञ एवं अल्पशक्ति वाले जीव अपने पूर्व संस्कारों एवं कर्म करने की स्वतन्त्रता के कारण पापों की ओर आकृष्ट हो ही जाते हैं। वह औघड़ दानी असंख्य अन्न, जल, वायु, प्रकाश आदि पदार्थों का हम को दान करता है। उस अहेतुक दयासिन्धु की दया भी हम पर असीम है जिससे हम कभी ऋण नहीं हो सकते। हम लाख प्रयत्न करने पर भी उसके दानों की महिमा

का पूर्ण बखान नहीं कर सकते। उस प्यारे प्रभु की हम पर जो दया है उसका वर्णन करना भी हमारी शक्ति के बाहर है।

वह असंख्य हाथों द्वारा हम पर अपने दान की वृष्टि करता है हम निरन्तर उसकी दया के अथाह सागर में अवगाहन करते हैं। उसकी दया ही पर तो हमारी यह जीवन यात्रा चलती रहती है। हमारा प्रत्येक स्वांस और रोम भी यदि उसकी दया का बखान कर सकता हो तव भी वह थोड़ा होगा। उस इन्द्र के दानों की महिमा गाते-गाते हमारी वाणी थक जाती है और हम उसका पार नहीं पा सकते। तथापि हमारा यह परम कर्त्तव्य है कि हम उसकी दया और दयानियों की महिमा का नित्य बखान कर अपने को कृतघ्नता के दोष से मुक्त रखें और उस जीवनशक्ति के दाता के प्रति कृतज्ञ बनें।

४६

तं त्वा गीर्भिर्गिर्वणसम्।
द्रविणस्युं द्रविणोदाः॥
सपर्येम सपर्यवः॥ ऋ० २-६-३

शब्दार्थ—हम (सपर्यवः) उपासक जन (तं) उस (गिर्वणसं) वाणी के अधिपति (त्वा) तुझको (गीर्भिः) अपने स्तोत्रों द्वारा (सपर्येम) वन्दन करते हैं। हम (द्रविणोदाः) द्रविण धनादि की भेंट चढ़ाने वाले (द्रविणस्युं) दिव्य आत्माहुति की कामना करने वाले तेरा बन्दन करते हैं।

भावार्थ—वह परमात्मदेव भौतिक वाणी से शून्य होते हुए भी वाणी के पति अपनी दैवी वाणी का मानव-हृदयों में संचार करने वाले हैं। प्रभो! हम अपनी सत्य से परिपूत वाणियों द्वारा आपकी वन्दना करते हैं। हम निश्चल हो निष्कपट भाव से आपकी अर्चना करते हैं। हम हर्ष और शोक में समृद्धि और संकटों में सतत आपका वन्दन करने वाले बन जाँय बस यही हमारी कामना है। हम किसी अन्य दैवी शक्ति अथवा पदार्थ की अर्चना आपके स्थान पर भूलकर भी न करेंगे। किसी अन्य जड़ वा चेतन देवता को अपना

उपास्यदेव नहीं बनावेंगे। हम तो सदा अपने चरमोत्थान की कामना से आपकी उपासना कर दिव्य शक्ति एवं तेज का सम्पादन करेंगे। आप तो बल, विक्रम, तेज, ओज, वीर्य, मृत्यु एवं सहनशीलता के अतुलित भण्डार हैं अतः केवलमात्र आपकी उपासना द्वारा इनको प्राप्त कर आपकी आज्ञाओं का अपने को सफल वाहन बनाने में सतत प्रयत्नशील रहेंगे।

प्रभो! आप द्रविणस्यु हैं अर्थात् आपकी यह कामना है कि आपके उपासक अपने जीवन में महान् त्याग एवं आत्म समर्पण करने वाले बनें। परोपकार के कार्यों में बड़े-से-बड़ा त्याग करने वाले और दूसरों की आग में जलने वाले परवाने बन जायें। अतः हम आपके उपासक निश्चय ही त्यागमय जीवन यापन करेंगे। परहित साधन ही हमारे जीवन की दिनचर्या होगी। हम अपनी सम्पत्ति और शक्ति संसार की भलाई में लगाने वाले बनेंगे। आपके दर्शाए पावन मार्ग से चलकर त्रिविध एषणाओं पर विजय पाते हुए आत्म-बलिदान करने के लिये सदा सन्नद्ध रहेंगे।

४७

त्वं च सोम नो वशो।
जीवातुं न मरामहे।
प्रियस्तोत्रो वनस्पतिः॥ ऋ० १-९१-६

शब्दार्थ—(सोम) हे दिव्य गुण सम्पन्न महान् रक्षक प्रभो! (त्वं च) तुम यदि (नः) हमारे (जीवातुं) जीवित रहने की (वशः) इच्छा करते हो (न मरामहे) तो हम मर नहीं सकते (प्रियस्तोत्रः) तुम तो निश्चय स्तवन करने वालों के प्रिय एवं (वनस्पतिः) ज्ञानी उपासकों के पालनहार हो।

भावार्थ—हे दिव्य गुणों के परमनिधान असंख्य रक्षा के साधनों से संयुक्त प्रभो! जिसके तुम रखवारे हो उसका संसार में कोई विनाश कर नहीं सकता। अगाध सागर की लहरों में, वह्नि की ज्वालाओं में, शत्रु के भीषण प्रहारों में भी तुम सदा उसकी रक्षा करते हो जिसको तुम जीवित रखना

चाहते हो और तुम्हारे न्याय नियम के अनुसार जिनकी जीवन अवधि समाप्त हो गई है उनको संसार की कोई शक्ति बचा नहीं सकती। प्रभो! तुम ही दीन-दुःखी, निर्बल और अनाथों के नाथ हो। तुम ही भवसागर में डूबते हुए को उभारने वाले हो। निराशा में आशा का दीप जलाने वाले और निबिड़ अन्धकार में तुम ही एकमात्र हमारे प्रकाश-स्तम्भ हो। जिस समय हमें कोई मार्ग नहीं दीखता और मानस क्षितिज पर अन्धकार ही अन्धकार छाया हुआ होता है तो तुम ही दिव्य प्रकाश की विद्युत् हमारे आत्मा में कौंधाते हो।

प्रभो! आप प्रियस्तोत्र हो अर्थात् सच्चे हृदय से गाए हुए स्तोत्रों को अपनाने वाले हो। हम गायकों के सच्ची भक्ति से संयुक्त गीतों को आप निश्चय सुनने वाले हो। नाथ! आप वनस्पति हो अर्थात् ज्ञान एवं भक्ति योग के साधक अपने उपासकों की प्रार्थनाओं को आप निश्चय श्रवण करने वाले और नानाविधि उनका पालन करने वाले हो। प्रभो! ऐसी कृपा करो कि हम अपना जीवन आपकी आज्ञाओं के पालन करने के हेतु समर्पित करने वाले बन जायें। हमारा गान आपकी महिमा का सुन्दर संगीत हो। प्रभो! हमारे अन्दर पावन जीवन रस का सञ्चार कर दो और हमारे जीवनों को पावनी आध्यात्मिक मादकता से भरभूर कर दो।

४८

त्वं नः सोम विश्वतो।
रक्षा राजन्नऽघायतः।
न रिष्येत् त्वावतः सखा॥ ऋ० १-९१-८

शब्दार्थ—(राजन्) प्रकाशित होने वाले (सोम) मानव जीवन में दिव्य—मादकता संचारक (त्वं) तू (नः) हमारी (विश्वतः) सर्व दिशाओं से (अघायतः) पाप करने वालों से (आ रक्ष) सर्व विधि रक्षा कर (त्वा) तुझ (सखा) मित्र द्वारा (अवतः) रक्षित (न) नहीं (रिष्येत्) पतित होता है।

भावार्थ—मनमन्दिर में प्रकाशित होने वाले और जीवन में दिव्य

मादकता का सञ्चार करने वाले प्यारे प्रभो ! आप हर बाधा से हमारी रक्षा करने वाले हो । भयंकर आपत्तियों और संकटों में हमें एकमात्र आपका ही सहारा है । जब संसार में निबिड़ अन्धकार छाया हुआ हो और हमें कोई मार्ग दिखलाई न देता हो तो केवल आप ही हैं जो हमारा मार्ग दर्शन करते हैं, हमें सही मार्ग का बोध कराते हैं । जब भयंकर विनाश हमारे सामने उपस्थित होता और संसार में कोई हमारा सहायक नहीं होता तो आप अपनी असंख्य रक्षा करनें वाली भुजाओं से हमारी रक्षा करते और संकटों के अथाह सागर से हमें उभारते हो ।

जब नाना प्रकार की पाप प्रवृत्तियाँ हमें आकर घेर लेती हैं और हम अज्ञानवश उन पापों में रत होने लगते हैं तो आप ही हमारे अन्दर बैठे हुए हमें उन प्रवृत्तियों से बचने की प्रेरणा देते और सन्मार्ग से चलने के निमित्त हमारे अन्दर बल का सञ्चार करते हो । आप ही हमारे सच्चे मित्र, सखा और साथी हो । आप तो सखा भी ऐसे हो कि जिसका कभी बिछोहा नहीं होता । हम अज्ञान से अंधे होकर भले ही आपको भूल जावें किन्तु आप हमको कभी नहीं बिसराते । जिसने आप जैसे परम मीत को पहचान लिया और आप से अपना सच्चा नाता जोड़ लिया निश्चय ही वह कभी पतन के गर्त में नहीं गिरता अपितु निरन्तर प्रगति पथ पर आरूढ़ रहकर आगे-ही-आगे बढ़ता चला जाता है । मैं तो अपने जीवन में उसी दिन की, उस पावन क्षण की बाट जोह रहा हूँ कि जब आपके पवित्र नाम का स्मरण करते ही मेरा शरीर रोमांचित हो उठे और प्रेमाश्रुओं की अजस्र धारा मेरे नेत्रों से प्रवाहित होने लगे और आपका प्रेम मुझे दिव्य मादकता से सराबोर कर देवे ।

४९

त्वं सोमासि सत्पतिः ।
त्वं राजोत वृत्रहा ।
त्वं भद्रो असि क्रतुः ॥ ऋ० १ । ९१ । ५

शब्दार्थ—(सोम) जीवनाधार प्रभो (त्वं) तुम (सत्पतिः) सर्वश्रेष्ठ पालन हार (असि) हो (उत त्वं) और तुम (वृत्रह) पाप रूपी

मेघों के संहारकर्त्ता (राजा) दिव्य गुणों को प्रकाशित करने हारे हो (त्वं) तुम (भद्रः) कल्याणकारी (क्रतुः) यज्ञरूप (असि) हो।

भावार्थ—हे परम प्रिय प्राणाधार प्रभो! हमारे जीवन को सरसाने वाले आप परम पावन मादकतत्व हो। आपकी इस मादकता में सराबोर होकर मैं अनिर्वचनीय आन्तरिक सुख को प्राप्त होता हूँ। आप हमारे सर्व-श्रेष्ठ पालनहार हो। आप असंख्य हाथों से सदा हमारी रक्षा करते हो। हम स्वभाव से अल्पज्ञ हैं, नाना प्रकार के पाप हमारे निकट मंडलाते रहते हैं। यह पाप रूप मेघ हमारे चहुँ ओर अन्धकार का वितान तनते रहते और दिव्य प्रकाश को हमारे पास पहुँचने नहीं देते।

प्रभो! आप ही इन पापों को विदीर्ण कर हमें पावन प्रकाश पथ का पथिक बनाने वाले हो। हमारे हृदय मन्दिर में दिव्य ज्योतिः को प्रकाशित करने हारे आप ही हो।

आप अहेतुक दयासिन्धु हो! निरन्तर प्राणियों का कल्याण करना आपका सनातन व्रत है। आपकी दण्ड व्यवस्था मे भी प्राणियों का कल्याण और एक-मात्र कल्याण ही अभीष्ट होता है। आप निरन्तर कल्याणकारी कर्मों के अनुष्ठान की पुनीत प्रेरणा देकर हमारा निस्तार करने वाले हो। प्रभो! आप क्रतु हो। पावन पुनीत यज्ञरूप हो। प्राणीमात्र का उपकार करना आपका सहज स्वभाव है। आपने तो हमारे ऊपर असंख्य उपकार किये हैं जिनकी गणना करना हम मानवों की शक्ति के बाहर है।

५०

त्वं हि विश्वतो मुखः।
विश्वतः परिभूरसि॥
अप नः शोशुचदघम्॥ ऋ० १।७५।६.

शब्दार्थ—प्रभो! (त्वं) आप (हि) निश्चय करके (विश्वतः) सब ओर (मुखः) मुख वाले हो (विश्वतः) सब ओर (परिभूः) व्यापक (असि) हो (अघं) पापियों को (नः) हमसे (अप) दूर करो

तथा (शोशुचत्) शोक सन्तप्त करो ।

भावार्थ—संसार की कोई वस्तु उस प्रभु से ओझल नहीं । जीवात्माओं के कार्य और उनकी मनोभावनाएँ भी उस प्यारे प्रभु से छिपी नहीं क्योंकि वह तो विश्वतोमुखः अर्थात् सर्वानन सहस्रशीर्ष और सहस्राक्ष है । उससे कोई भी स्थान शून्य नहीं । सूक्ष्मतम होने से प्रकृति के अणुओं परमाणुओं का तो कहना ही क्या वह जीवात्माओं के अन्दर भी समाया हुवा है । पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊपर-नीचे सर्वत्र एकरस निज सत्ता से विद्यमान है ।

पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोकों में सर्वत्र वह हमारा प्यारा प्रभु रमा हुआ है । निश्चय वह पाप वासनाओं से दूर रहने की हमें सतत प्रेरणा देने हारा है । वह स्वयं अपापविद्ध है और अपनी सनातन प्रजा को पापों से दूर रहने की प्रेरणा उपदेश एवं आदेश देने वाला है । हम पापों से बचने की शक्ति की उससे याचना करें और संकल्पपूर्वक पापों और पापियों से दूर रहें । पापियों के साथ सम्पर्क बनाकर हम कभी अपना पतन न करें । हम कभी भूलकर भी पाप और पापियों का समर्थन करने वाले न होवें । पापियों से हमारा सदा असहयोग रहे और उनको अकेले में पश्चात्ताप करने और अपना सुधार करने का अवसर मिले । पापियों के साथ हमारा सहयोग जहाँ हमारे पतन का कारण होगा वहाँ उनको भी पाप करने में सहारा देने वाला होगा । अतः प्रभो ! हमें बल दो कि हम इस असहयोग द्वारा अपना और उनका उद्धार कर सकें ।

५१

त्वयेदिन्द्र युजा वयं ।
प्रति ब्रुवीमहि स्पृधः ।
त्वमस्माकं तव स्मसि ॥ ऋ० ८ । ९२ । ३२

शब्दार्थ—(इन्द्र) हे परमैश्वर्यवान् प्रभो ! (त्वया) आपसे (इत्) निश्चय करके (युजा) मेल करते हुए (वयं) हम उपासक लोग (स्पृधः) कामना करते हुए (प्रति ब्रुवीमहि) अन्तस्तल से यह घोषणा

करते हैं कि (त्वं) केवल आपही (अस्माकं) हमारे उपास्य देव हो और (तव) आपके हम (स्मसि) उपासक हैं।

भावार्थ—हे सकल विश्व के सृजनहार परम ज्ञान शक्ति एवं क्रिया के केन्द्र प्रभो! हम अपने जीवन में सतत यही प्रयत्न करेंगे कि आपसे कभी विमुख न हों और सदा आपकी छाया [आश्रय] में ही विकास करें। आपकी छाया तो हमारे लिये अमृत है। वह हमें सदा गिरावट से बचाने वाली और उन्नति के शिखर पर पहुँचाने वाली है।

हम केवल शब्दों द्वारा आपकी कामना करने वाले न रह कर अन्तस्तल से आपके दिव्य दर्शन के अभिलाषी बनें और आपके सामीप्य [कुर्व] को प्राप्त करने का सदा प्रयत्न करने वाले बनें। हम केवल शाब्दिक आपका आवाहन न कर श्रद्धा समन्वित हो सच्चे हृदय से आपका अपने अन्दर आवाहन करने वाले बन जायें और आप जो अन्दर पर्दे में छिपे बैठे हो गद्‌गद होकर दर्शन देने की आपसे प्रार्थना करने वाले बन जायें।

आप हमारे परम रक्षक, हितु, माता, पिता, बन्धु, सखा और साथी हो। हमारी जीवन नैय्या के एक मात्र खेवनहार और संसार सागर से तरने की दिव्य शक्ति के दातार हो।

बस आप ही एकमात्र हमारे उपास्य देव हो। आपसे भिन्न किसी जड़ वा चेतन वस्तु को हम अपना उपास्य देव कभी भूलकर भी नहीं बनाने वाले हैं। आप ही हमारे मनमन्दिर के एकमात्र देवता हो। आप ही की पूजा-अर्चना, वन्दना, स्तुति और उपासना हम सदा करेंगे।

प्रभो! हम आपके हैं और केवल आपके ही हैं। आपका ही और केवल आपका ही हमको सहारा है। हम आपकी शरण में उपस्थित हैं। नाथ! हम शरणागतों की रक्षा करो और हमारा उद्धार करो।

५२

त्वामग्ने मनीषिणः।
त्वां हिन्वन्ति चित्तिभिः॥
त्वां वर्धन्त नो गिरा॥। ऋ० ८। ४४। १९

शब्दार्थ—(अग्ने) ज्यतिः स्वरूप प्रभो! (मनीषिणः) मननशील

ज्ञानी जन (चित्तिभिः) ध्यान योग द्वारा (त्वां) तुमको (हिन्वन्ति) प्राप्त होते हैं (नः) अपनी (गिरा) वाणी के द्वारा (त्वां) तुमको (वर्धन्त) बढ़ाते हैं।'

भावार्थ—हे विश्वनियन्ता, ज्ञान के अद्वितीय केन्द्र प्रकाशपूर्ण प्रभो ! यौगिक साधनाओं द्वारा मन को स्थिर करने वाले और गम्भीर चिन्तन मनन द्वारा आपके वास्तविक स्वरूप की अनुभूति लेने वाले तपस्वी मानव ही आपको प्राप्त करने में समर्थ होते हैं। संसार के मिथ्या वादों में फंस कर और सस्ती मुक्ति के प्रलोभनों, नाना तीर्थ अटनों और शब्दिक नाम जपनद्वारा जो आपको पाना चाहते हैं वह कभी सफलता लाभ नहीं कर पाते। सत्य में अनन्य प्रीति जागृत किये विना सच्चिदानन्द प्रभु को प्राप्त करना सम्भव नहीं। मतान्धता और अन्धविश्वास मानव को सत्य के दर्शन से दूर भगा देते हैं। पक्षपात शून्य होकर विवेक से काम लेने वाला मानव ही उस सत्य स्वरूप स्वामी का दर्शन कर सकता है।

वेदवाणी के प्रकाश में पवित्र की हुई अपनी गिरा द्वारा अपने स्तोत्र, स्तवन और स्तुतियों द्वारा मनस्वी मानव आपकी महिमा का जगती तल पर प्रकाश करते, उसका विकास करते, संसार के भूले-भटके जनों का पथप्रदर्शन करते हैं। अब्रह्म में ब्रह्म की भ्रान्त भावना का निराकरण कर उनको ब्राह्मी स्थितिका रसास्वादन कराते तथा कण-कण में समाई हुई आपकी दिव्य सत्ता का बोध कराते हैं। यह सारा संसार ब्रह्ममय है, ब्रह्म से ओत-प्रोत है, ब्रह्म में समाया हुआ है ऐसा बोधकरा कर अनीति, अनाचार से, अन्याय, अत्याचार से जनता को उभार कर संसार में दैवी साम्राज्य (Kingdom of God) का विस्तार करते हैं।

५३

देवस्य चेततो महीम्।
प्रसवितुर्हवामहे।
सुमतिं सत्यराधसम्॥ यजु० २२। ११

शब्दार्थ—(चेततः) आत्मचेतना का विस्तार करने वाले (सवितुः) जगत् स्रष्टा की (देवस्य) दिव्य गुणों के निधान को (सत्यराधसम्)

सत्य रूप सम्पत्ति का दान करने वाली (महीं) महती (सुमतिं) सौमनस्यता का (प्रहवामहे) विशेष रूप से हम आवाहन करते हैं।

भावार्थ - अनन्त दिव्य शक्तियों के भण्डार, सम्यक् सार युक्त इस संसृति के निर्माता और मानव मात्र की आत्माओं में निरन्तर दैवी चेतना उतवा प्रेरणा के दाता परमात्मदेव के सान्निध्य को उपलब्ध करना ही मानव-जीवन की साधना है।

उस प्रभु की यह प्रेरणा मानव में सौमनस्यता का संचार करने वाली, मानव को सत्पथ का दर्शन कराने वाली है। तथा सत्य रूपी सम्पत्ति का अतुलित भण्डार उसके लिये प्रदान करने वाली है। यह सत्यरूपा सम्पत्ति ही मानव का अत्यन्त हित सम्पादन करती और उसको परम सुख प्रदान करने वाली है। सत्यरूपा सम्पत्ति से सम्पन्न मानव अपने जीवन में संसार का अधिक-से-अधिक हित सम्पादन करता, संसार के हित में अपना हित देखता और समष्टि की मुक्ति में अपनी मुक्ति का दर्शन करता है।

सत्य में महती प्रीति जागृत करने वाला अर्थात् श्रद्धा की साधना में रत रहने वाला मानव भौतिक सम्पत्ति को पाकर भी कभी पथभ्रष्ट नहीं होता अपितु उस भौतिक ऐश्वर्य के भाल पर भी श्रद्धा का ही आवाहन करता और जीवन मुक्ति अथवा विदेहत्व को प्राप्त कर लेता है।

हम उस प्रभु की इस दिव्य सुमति को अर्थात् दिव्य अनुकम्पा एवं आशिष को प्राप्त करने का सतत प्रयत्न करने वाले बन जायें।

५४

देवं नरः सवितारं।
विप्रा यज्ञैः सुवृक्तिभिः ॥
नमस्यन्ति धियेषिताः ॥। ऋ० ३। ६२। १२

शब्दार्थ—(धियेषिताः) प्रगल्भ बुद्धि वाले (विप्राः) प्रौढ़ ज्ञानो (नरः) श्रेष्ठ मानव (सुवृक्तिभिः) ध्यान आदि यौगिक क्रियाओं द्वारा तथा (यज्ञैः) उत्तम परोपकार कर्मों द्वारा (देवं) दिव्य ज्ञान

एवं प्रकाश युक्त (सवितारं) संसार के रचयिता को (नमस्यन्ति) नमन करते हैं।

भावार्थ—संसार के मनुष्य उस प्रभु की नाना प्रकार से और नाना भाषाओं द्वारा स्तुति, प्रार्थना, अर्चना व वन्दना करते हैं। विभिन्न भाषाओं में उच्चरित स्तोत्रों के अन्दर जो भावनाएँ अन्तर्हित होती हैं प्रभु उनको निश्चय लक्ष करते हैं। प्रौढ़ ज्ञानी परोपकारी ब्राह्मण संन्यासी साधना रत प्रगल्भ बुद्धि वाले श्रेष्ठ मानवों की भावनाएँ चाहे वह मानव पठित हों या अपठित, धनी हों या निर्धन, ऊँच हों वा नीच उस प्रभु को विशेष प्यारी लगती है। स्वार्थी, दम्भी प्रमादी जन चाहे वह कितने भी पढ़े हों धनी वा पदारूढ़ हों उनकी भावनाएँ पतित और निकृष्ट होने से उस प्रभु को कभी भी प्रिय नहीं होतीं।

श्रेष्ठ मानव धारणा ध्यान आदि यौगिक साधनाओं द्वारा तथा अपने पवित्र परोपकारादि कर्मों द्वारा अर्थात् त्याग एवं बलिदानों द्वारा तथा निष्काम भाव से की गई दीन दुखी दरिद्री और दलितों की सेवाओं द्वारा उस प्रभु का अर्चन करते हैं। स्तोत्र पाठ की अपेक्षा परोपकार के कार्य तथा दूसरों के हित में स्वदेश, स्वराष्ट्र, स्वजगति एवं स्वसंस्कृति आदि की रक्षा निमित्त किये गये त्याग व बलिदान प्रभु को प्यारे हैं। शाब्दिक स्तोत्रों वा प्रार्थनाओं को प्रभु कभी नहीं सुनते। स्वार्थी व्यक्तियों की स्तुतियाँ प्रभु के पास कदापि पहुँचने वाली नहीं।

संसार के सारे ईश्वर पूजा के विधान निरर्थक हैं यदि पुजारियों के हृदय परोपकार की वृत्तियों से ओतप्रोत नहीं। दम्भ, द्वेष, प्रमाद के शिकारी पुजारी तो वास्तव में उस प्रभु की सच्ची पूजा के अरि अर्थात् शत्रु मात्र ही हैं।

५५

नमस्ते अग्न ओजसे ।
गृणन्ति देव कृष्टयः ।
अमैरमित्रमर्दय ।। साम० १ । ४ । १

शब्दार्थ—(ओजसे) जीवनाधार (अग्ने) ज्योतिः एवं प्रकाश के पुञ्ज प्रभो ! (ते) आपको (नमः) सादर वन्दन है (देव) दिव्य गुणागार प्रभो ! (कृष्टयः) कर्मशील मानव (गृणन्ति) आपका यशोगान करते हैं (अमित्रं) विनाश करने वाले को (अमैः) तीव्र दण्ड द्वारा (अर्दय) दण्डित कर दो, हमें दण्डित करने की शक्ति से युक्त कर दो ।

भावार्थ—परमात्मदेव जीवनशक्ति के दातार हैं । दिव्य गुणों के केन्द्र हैं और सत्पथ पर प्रगति करने की सदा हमको प्रेरणा देने हारे हैं । हम श्रद्धा-भक्ति से समन्वित हो सदा अपने मनमन्दिर में उनका अर्चन, वन्दन एवं स्तवन करने वाले बन जायें । दिव्य देव की उपासना द्वारा अपने अन्दर दिव्य गुणों व शक्तियों का आधान कर और अपनी सुषुप्त आन्तरिक शक्तियों को जागृत कर हम प्रबुद्ध आत्मा [Awakened Soul] बन जायें । संसार के सब उद्यमी एवं पुरुषार्थी मानव कर्मयोग की साधना द्वारा उस महान् दिव्य देव के गुणों का अनवरत बखान करते और सच्चे हृदय से उसकी महिमा के गीत गाकर अपने जीवन को उन्नत और पवित्र बनाते हैं । वह दयालु देव निश्चय ही हमारे दुर्गुणों का नाश करने वाले हैं और दुष्टों से सदा दूर रहने की प्रेरणा देने वाले हैं । दुष्टों को दण्ड देने के उसके साधन असीम और अनन्त हैं । वह अपनी सहज शक्तियों से बड़े-से-बड़े अत्याचारी का क्षण भर में विनाश कर सकते हैं ।

प्रभो ! जो प्राणी मानवता का संहार करते और अकारण ही संसार को विनाश के गर्त में धकेलने वाले हैं उनको दण्डित करो और सत्पथ पर चलने वाले अपने भक्तों के हृदयों में अन्याय, अत्याचार अनीति और अनाचार से लोहा लेने की शक्ति का संचार कर दो ।

नामानि ते शतक्रतो ।
विश्वाभिः गीर्भिः ईमहे ।
इन्द्र अभिमातिषाह्ये ।। ऋ० ३-३७-३

शब्दार्थ—(शतक्रतो) असंख्य दिव्य कर्मों के केन्द्र परमात्मदेव ! (ते) तुम्हारे (नामामि) असंख्य गुण बोधक नाम हैं। (विश्वाभिः) अपनी सर्व (गीर्भिः) वाणियों द्वारा (ईमहे) मैं उनकी कामना करता हूँ (इन्द्र) हे परमैश्वर्ययुक्त स्वामिम् (अभिमातिषाह्ये) अभिमान-रूप शत्रु का पराभव करने के लिये मैं आपकी सहायता की याचना करता हूँ ।

भावार्थ—परमात्मदेव आप शतक्रतु हैं अर्थात् सृष्टि रचनादि अनन्त दिव्य कर्मों के कर्त्ता और जीवों के कल्याणार्थ इस संसाररूपी यज्ञ के रचयिता आप ही हैं।

आपके गुणों का बोध कराने वाले नाम असंख्य हैं। हम आपके गुणों का पार पा नहीं सकते, अतः आपके नामों का भी पार पाना हमारे सामर्थ्य से बाहर है।

हम सब आपके अमृतपुत्र अपनी विभिन्न वाणियों द्वारा तथा अपने विभिन्न स्तोत्रों द्वारा आपके ही पवित्र यश का बखान करने वाले हैं। हम अपने सर्व संगीतों द्वारा आपके पावन नामों का ही कीर्तन करने वाले बन जायँ, बस यही हमारी कामना है।

प्रभो ! आप परमैश्वर्यशाली हैं। यह सारा संसार आपकी ही विभूति है। आपकी शक्तियाँ भी अनन्त हैं, उनका माप करना हमारे ज्ञान से बाहर है। आपकी इन शक्तियों का प्रसार सारे विश्व में व्याप रहा है। प्रभो ! आप सर्वदृक् एवं सर्वत्र गति वाले हैं।

कण-कण और रोम-रोम में रमने वाले स्वामिन् ! हमें अपनी दया और कृपा का पात्र बना लो। हमें सत्पथ का पथिक बनाकर निज जीवन को सफल बनाने की क्षमता से हमें युक्त कर दो।

५७

निषसाद धृतव्रतो ।
वरुणः पस्त्यास्वा ।
साम्राज्याय सुक्रतुः ।। ऋ० १-२५-१०

शब्दार्थ—(धृतव्रतः) व्रतों को धारण करने वाला (सुक्रतुः) श्रेष्ठ यज्ञीय कर्मों का सदा अनुष्ठान करने वाला (वरुणः) अत्यन्त स्पृहणीय परमात्मदेव (स्वा) हमारे (पस्त्या) गृह में (साम्राज्याय) आध्यात्मिक शासन की स्थापना के निमित्त (निषसाद) विशेष रूप से विराजमान है ।

भावार्थ—संसार में मानव के लिये सबसे प्यारी वस्तु यथार्थ में धन, कलत्र आदि नहीं अपितु वह प्राणप्यारा प्रभु है जो कि सर्वश्रेष्ठ व्रतों का धारण एवं उनको पूरा कराने वाला है। उस प्रभु ने प्राणीमात्र के लिये यह संसार रूपी महान् यज्ञ रचा है । उसके इस यज्ञ का धूम्र प्राणीमात्र को आवासित करने वाला और हृदयतन्त्री को झंकृत करने वाला है । अभागे हैं वह जन जो असंख्य तारों-नक्षत्रों से परिपूर्ण इस आकाश को, वन पर्वत सरिता और सागरों को निरख कर भी श्रद्धा और प्रेम के मादक रस का पान नहीं करते ।

वह प्यारा प्रभु हमारी इस अष्टचक्रा नवद्वारा पुरी का निर्माता है । कर्मेन्द्रियों एवं ज्ञानेन्द्रियों का रचयिता है और हमारे इस शरीर रूपी गह के भीतर के परकोटे में हमारा सखा बनकर विराजमान है ।

वह सदा ही सुन्दर कल्याणकारी सलाह देता रहता है और आध्यात्मिक शक्तियों के विकास की पावन प्रेरणा देने में सतत निरत रहता है । हमारे अन्दर और बाहर आध्यात्मिक स्वराज्य की स्थापना हो, भौतिकता का प्रभाव हमारे ऊपर जमने न पाए । हम अपने कर्म स्वातन्त्र्य को सुरक्षित रखते हुए अपने चहुँ ओर आध्यात्मिक स्वराज्य की स्थापना करें और विश्व में परम सुखकारक दिव्य आध्यात्मिक साम्राज्य की स्थापना में सब मिलकर प्रयत्न करने वाले बन जायँ ।

५८

परिस्वानो गिरिष्ठाः ।

पवित्रे सोमो अक्षरत् ।

मदेषु सर्वधा असि ।। साम० ५-१०-३

शब्दार्थ—(गिरिष्ठाः) पर्वतों, मेघों और ऋषियों की वाणियों में विद्यमान (सोमः) संजीवन रस (परिस्वानः) चारों ओर से शब्द करता हुआ (पवित्रे) हृदय की छलनी में (अक्षरत्) टपकता है और (मदेषु) नशों में (सर्वधा) सब प्रकार (असि) आवोर करने वाला है ।

भावार्थ—प्रभो! मैं तुम्हारी लीला को देखता हूँ । जबसे तुमने मेरे हृदय को अपने ज्ञान की उषा का उदयाचल बनाया है, जब से मेरे नेत्र तुम्हारी करुण कृपाओं के मेघ बन रहे हैं तब से मैं पर्वत-विलास, मेघ-विलास, ऋषि-हृदय-विलास के प्रत्यक्ष दर्शन कर रहा हूँ । मेरे हृदय में भक्ति के स्रोत बह निकले हैं। झरने झर रहे हैं । नदियाँ बह निकली हैं। एक विचित्र हरियाली छा गई है । मेरा तो रोम-रोम झूम रहा है ।

मैं अपने हृदय की बात क्या कहूँ ! यहाँ तो सारा ब्रह्माण्ड ही एक विचित्र प्रकार के राग रंग और नृत्य का क्रीडाक्षेत्र बन गया है । प्रत्येक सौर-मण्डल के अधिष्ठाता सूर्य आदि अपनी-अपनी परिधियों पर घूम रहे हैं । बृहस्पति मंगलादि ग्रह अपनी-अपनी परिधि पर नृत्य करते हुए सूर्यादि की परिक्रमा में संलग्न हैं । चन्द्रादि उपग्रह भी इन ग्रहों को रिझाने में अलग ही होड़ लगा रहे हैं । मुझे तो अणु-अणु घूमता नजर आ रहा है । लता वेल वितानों में, छव पादप और वृक्षों में, नृत्य, ताल और संगीत की मधुर ध्वनि सुनाई पड़ रही है । इनका पत्ता-पत्ता झूम रहा है । सबने प्रेमरस रूपी सोम का पान कर रखा है । सम्पूर्ण विश्व नशे में चूर हुआ झूम रहा है ।

इन मस्तानों में मेरा हृदय भी मस्ताना हो उठे तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ! यह सारा संसार ही जब मस्ती का घर बना हुआ है तो मैं मस्ती से शून्य रहूँ यह कैसे सम्भव हो सकता है !

मैं तेरे इस दिव्य मधुर मद का पान कर मस्ताना बनूँगा । मस्तानों की दुनियाँ में झूम-झूम कर मस्ती के गीत गाऊँगा ।

५६

पवस्व देव आयुषक् ।
इन्द्रं गच्छतु ते मदः ।
वायुमारोह धर्मणा ।। साम० ५-१०-७

शब्दार्थ—हे (आयुषक्) दिव्य जीवन के दाता (देव) दिव्य ज्ञान और प्रकाश के केन्द्र (पवस्व) हमें पवित्र बना दो (ते) आपकी (मदः) मस्ती (इन्द्रं) दिव्य ऐश्वर्य आनन्द को (गच्छतु) प्राप्त करावे (धर्मणा) अपने सहज स्वभाव से हमको (वायुं) प्रगतिशील पापनाशक गुणग्राही एवं अवगुणों से बचने वाला (आरोह) बना दो ।

भावार्थ—हे दिव्य जीवन के दातार प्रभो ! हमारे जीवन में पवित्रता सरसा दो । हम पाप-प्रवृत्तियों एवं वासनाओं से बचकर पुण्य प्रवृत्तियों एवं दिव्य भावनाओं से युक्त बन जावें । आपकी उपासना से उपलब्ध आध्यात्मिक मद अर्थात् वहदानियत की मस्ती हमें दिव्य ऐश्वर्य की ओर, दिव्य सुख और आनन्द की ओर प्रगति करने वाला बना दे ।

आपकी भक्ति से उत्पन्न हुआ रस अर्थात् सरूर हमें मस्ताना बना दे और हमें उस आनन्द को जिसका वाणी से बखान नहीं किया जा सकता, प्राप्त करने की क्षमता प्रदान कर दे ।

प्रभो ! आपका तो धर्म अर्थात् सहज स्वभाव ही प्राणियों का उद्धार करना है । मानवों को प्रगति-पथ का आप सदा निर्देश करते हैं । अतः हम आपके उपासक दिव्य आध्यात्मिक उन्नति की ओर दृढ़तापूर्वक चलने वाले बन जायें । प्रभो ! आप अपापविद्ध हो, हम भी पापों से घृणा करने वाले और इनसे सदा दूर रहने वाले बन जायें । हम आपकी उपासना द्वारा अपनी पाप-प्रवृत्तियों को भस्म करने वाले बन जायें ।

प्रभो ! आप गुणों के भण्डार हैं, हम आपके उपासक भी क्यों न गुणों के धारण करने वाले बन जायें । हमारा जीवन आपके दिव्य गुणों से प्रभावित हो उठे और हम अवगुणों से सदा दूर रहने वाले बन जायें । प्राणायामादि के अभ्यास द्वारा मन का निग्रह करते हुए हम ध्यान-योग द्वारा आपका सान्निध्य प्राप्त कर दिव्य जीवन रस का पान करने वाले बन जायें ।

पवस्वेन्दो वृषासुतः ।
कृधि नो यशसो जने ।
विश्वा अपद्विषो जहि ।। साम० ५-१०-३

शब्दार्थ—(इन्दो) परम आनन्द प्रदाता प्रभो ! आप (वृषासुतः) आध्यात्मिक शक्ति सम्पन्न मानवों द्वारा मन्थन किये जाने वाले हैं (पवस्व) आनन्दयुक्त कर दो। (जने) जन समाज के बीच (नः) हमको (यशसः) यशस्वी (कृधि) बनाइये (विश्वा) समस्त (द्विषा) द्वेषभावनाओं को हमारे बीच से (अपजहि) दूर हटाइये।

भावार्थ—परमात्मदेव सदा आनन्द-वारि की वर्षा करने वाले हैं। आध्यात्मिक शक्ति सम्पन्न मानव ही ध्यान योग द्वारा अपने अन्दर मन्थन कर इस अमृत रस को निष्पन्न करते हैं। यह आनन्द रस सदा हमारी रक्षा करता और हमें प्रगति पथ का पथिक बनाता है। इस दिव्य आनन्द-रस को पाकर हम सर्व प्रकार की कुटिलताओं से मुक्त हो जाते और पवित्रतम भावनाओं से परिपूरित हो जाते हैं।

आध्यात्मिक शक्तियुक्त मानव न चाहते हुए भी जनता में यश का भागी बन जाता है। आनन्द-रस का पान करने वाला व्यक्ति लोक-प्रतिष्ठा अथवा लोकैषणा से दूर भागता है किन्तु लोक-प्रतिष्ठा उसका पीछा नहीं छोड़ती। हमारे अन्दर यदि कामना हो तो केवल सात्विक प्रतिष्ठा की हो जिससे हमारे जीवन का कभी नैतिक पतन न हो। कर्मयोग के आत्मवान् साधक को सात्विक प्रतिष्ठा अनायास ही उपलब्ध होने लगती है। उसको इसे उपलब्ध करने के निमित्त लेशमात्र भी प्रयत्न करना नहीं पड़ता। उसकी कामना एवं प्रयत्न तो सदा सर्व प्रकार की द्वेष भावनाओं को दूर भगाने की होनी चाहिये। सर्व प्राणियों का हित-साधन ही उसकी मात्र साधना होनी चाहिये। उसके जीवन-कार्य-कलाप इतने स्वार्थशून्य हों कि द्वेष भावनाएँ उसके पास तक न फटकने पावें और सदा जनता जनार्दन का स्वच्छ प्रेम उसको उपलब्ध होता रहे।

६१

पावका नः सरस्वती ।
वाजेभिर्वाजिनीवती ।
यज्ञं वष्टु धिया वसुः ।। सा० १-१०-५

शब्दार्थ—(वाजेभिः) दिव्य ऐश्वर्य एवं ध्वनियों से (वाजिनीवती) संयुक्त (सरस्वती) जीवन में अमृतरस का सञ्चार करने वाली वेद-वाणी (नः) हम सबको (पावका) पवित्र करने वाली हो (धिया) ध्यान योग द्वारा सिद्ध की हुई यह वाणी (वसुः) हमारे लिये धन सम्पत्ति रूपा हो । और (यज्ञं) दिव्य साधना रूपी यज्ञ को (वष्टु) सिद्ध करने वाली हो ।

भावार्थ—वेदों की वाणी दिव्य अर्थगाम्भीर्य से परिपूर्ण है। इसकी ध्वनि भी पूर्ण वैज्ञानिक एवं सौमनस्य का विस्तार करने वाली है । वेद वाणी निश्चय ही सरस्वती है, अमृतरस का मानव-जीवन में संचार करने वाली है। इसके प्रत्येक छन्द का ज्ञान गंगा में अवगाहन कराने वाला है। इसका तो कोई भी शब्द निरर्थक नहीं अपितु पूर्णतया सार्थक और शब्द-शास्त्र के गम्भीर मर्म का उद्घाटन करने वाला है । इसके मन्त्रों की रचना भी अद्भुत और महान् है।

वेदवाणी निश्चय मानव को पवित्र करने वाली है । मानसिक दुर्बलताओं को दूर हटाने वाली और जीवन में ऊँची उड़ान उड़ने की क्षमता प्रदान करने वाली है । वेदवाणी व्यर्थ के शब्दजाल से शून्य और तत्त्वज्ञान का सुगमता-पूर्वक बोध कराने वाली है। वेदों के अर्थ-गाम्भीर्य में मानव ध्यान योग की साधना द्वारा ही प्रवेश पा सकता है। शब्दों के मौलिक एवं यौगिक स्वरूप का बोध मानव को उदात्त भावनाओं से युक्त होकर गहन चिन्तन द्वारा ही उपलब्ध होता है ।

यह वेदवाणी हमारे लिये अतुलित ज्ञान-सम्पत्ति का दिव्य आगार है। वेद-धन का धनी मानव-जीवन में कभी कंगाल, दीन, हीन और अकिञ्चन नहीं होता ।

मानव जीवन का यह महान् यज्ञ अर्थात् दिव्य परोपकारादि कर्मों का

वितान इस वेदवाणी की उपासना द्वारा ही सिद्ध होता है।

प्रभो! हमें इस वेदवाणी की दिव्य सम्पदा से युक्त कर दो और अपने जीवन को सफल बनाने के पावन मार्ग का पथिक बना दो।

६२

प्र सोमासो विपश्चितः।
अपोऽनयन्त ऊर्मयः।
वनानि महिषा इव ॥ सा० ५-१०-२

शब्दार्थ—(सोमासः) भक्ति रस से सराबोर (विपश्चितः) विद्वान् लोग (ऊर्मयः) लहरों की भाँति (अपः) प्रजाओं को (अनयन्तः) बहा ले जाते हैं (महिषाः) बड़े-बड़े मेघ (इव) जिस प्रकार (वनानि) जलों को।

भावार्थ—प्रज्ञा के धनी ज्ञानी मानव सर्वसाधारण जनता को जिस ओर चाहें चला सकते हैं। वह चाहें तो शान्तिप्रिय देश को कलह और युद्ध का केन्द्र बनादें, सुसंगठित राष्ट्र को क्षत विक्षत कर टुकड़ों में विभाजित करदें और चाहें तो भीरू कायर जाति को नवजीवन का दानकर एक शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में परिवर्तित करदें और बड़े से बड़े सम्राट् से टक्कर लेने वाला बना दें। वह चाहें तो वसुन्धरा को स्वर्ग बनादें और चाहें तो घातक अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण कर संसार में प्रलय उपस्थित कर दें।

संसार में विचार की शक्ति सबसे महान् है। वास्तव में विचार ही हैं जो वसुधा पर शासन करते हैं; बड़े से बड़े सैन्य बल को यह विचार और विचारक ही चाहें रक्षक बनादें और चाहे सर्वसंहारक बना दें।

जब संसार के विचारकों के अन्दर जीवन का कोई ऊँचा लक्ष्य होगा श्रद्धा का उनमें वास होगा, जब उनका जीवन यज्ञीय होगा, परोपकार प्रेम और कल्याण की भावनाओं से ओत-प्रोत होगा तो निश्चय वह अपनी आध्यात्मिक मस्ती में मस्ताने बन संसार को सुपथ का पान्थ बना देंगे।

जिस प्रकार आकाश में मंडराने वाले मेघ जलों को जिधर चाहते ले जाते हैं, जहाँ चाहें मूसलाधार वर्षा की झड़ी लगाकर और नदी नद नालों को उफना कर प्रलय उपस्थित कर दें और जहाँ चाहें रिमझिम-रिमझिम सुहावनी वर्षा

कर जनता को शाक कन्दमूल फल व अन्न से भरपूर कर दें। प्रभो! संसार के इन विचारकों को सुपथ का पथिक बनादो और माता वसुन्धरा को स्वर्गमयी बना दो।

६३

प्रियं नो अस्तु विश्पतिः।
होता मन्द्रो वरेण्यः।
प्रियः स्वग्नयो वयम्॥ ऋ० १-२६-७

शब्दार्थ—(वरेण्यः) वरण करने योग्य वन्दनीय (मन्द्रः) सुखों का दाता (होता) जीवन रस का सञ्चार करने वाला (विश्पतिः) प्रजाओं का पालक परमात्मा (नः) हमारा (प्रियं) प्रिय (अस्तु) होवे और (वयं) हम सब भी (स्वग्नयः) श्रेष्ठ तप तेज और ज्ञान से युक्त हो (प्रियाः) उसके प्यारे बन जायें।

भावार्थ—हे प्राणनाथ प्रभो! आप ही एकमात्र हम सबों के वरेण्य, हो, वरण करने योग्य हो। आपके समान अथवा आपसे महान् अन्य कोई भी वस्तु संसार में वरण करने योग्य है ही नहीं। आप हमारे जीवन को सुख-शान्ति का धाम बनाने वाले हो। दुःख-दारिद्रय को दूर भगाकर हमारे अन्दर जीवन रस का सञ्चार करने वाले हो।

प्रभो! इस समस्त भूमण्डल के नहीं-नहीं अखिल ब्रह्माण्ड के रक्षक और पालक आप ही हो, ऐसी कृपा करो कि हम सब आपके उपासक आपके प्रिय बन जायें। आप अपना भक्त जानकर अपने पावन प्रेम की रज्जु में हमें बाँध लो। हम अपने जीवन को तप-त्याग-परोपकार की अग्नि में तपावेंगे। दया-प्रेम और करुणा के शीतल जल से इसे धोवेंगे। बारंबार तपाकर इसे कुन्दन बनावेंगे। इसे तेजस्वी वर्चस्वी और ओजस्वी बनावेंगे। हम अपने जीवन को पवित्र माधुर्य से संसिक्त कर आपके स्वीकार करने योग्य बनावेंगे। विश्वास है कि आप अवश्य हमें अपनावेंगे।

प्रभो! अपने दिव्य मद से हमें भरपूर कर दिव्यमस्ती के संसार में झूमने का सौभाग्य हमें प्रदान करो।

महीरस्य प्रणीतय: ।
पूर्वीरुत प्रशस्तय: ।
नास्य क्षीयन्त ऊतय: ।। ऋ० ६-४५-३

शब्दार्थ—(अस्य) इस परमेश्वर के (प्रणीतय:) प्रगति देने के मार्ग (मही:) महान् हैं (उत प्रशस्तय:) और उसकी महिमाएँ (पूर्वी:) सनातन हैं (अस्य ऊतय:) इसके नानाविध रक्षा के प्रकार (न क्षीयन्त) कभी क्षय होने वाले नहीं।

भावार्थ—यह सनातन अविनाशी घट-घटवासी प्रभु मानव को जीवन में नानाविधि प्रगति देता रहता है। इसके प्रगति देने के प्रकार भी अद्भुत विचित्र और महान् हैं। अनेक ऐसे कार्य हैं कि जिनके करने में मानव डरता, घबराता और काँपता है किन्तु जब वह उनको सिद्ध कर लेता है तो उसको अपार हर्ष होता और प्रकाश व समृद्धियाँ सामने दृष्टिगोचर होती हैं। इसकी प्रगति के मार्ग कण्टकाकीर्ण झाड़ियों, दुस्तर कान्तारों और पर्वत की दुरूह घाटियों, झञ्झावातों और सागर की उत्ताल तरंगों तक में बिछे हुए हैं। उन्हें समझना साधारण मानव के लिये सम्भव नहीं। घमण्डी मिथ्याभिमानी मानव जिन कार्यों को नीच, छोटा और ओछा समझता है उनको प्रसन्नतापूर्वक करने में प्राय: ज्ञानी मानव की प्रगति अन्तर्हित होती है।

इस सनातन प्रभु की महिमा भी महती और सनातन है। इस एकरस विद्यमान भगवान् की महिमा सदा अक्षय और अखण्ड रहने वाली है। इसकी महिमा का विस्तार भी इतना महान् है कि मानव लाख प्रयत्न करने पर भी इसका पार पा नहीं सकता। प्रभु के सनातन और महान् 'ज्ञान-बल-क्रिया' त्रिक में उसकी महिमा व्याप रही है।

प्राणनाथ प्रभु के रक्षा के प्रकार भी असंख्य अद्भुत और महान् हैं। अलक्षित रूप में वह अपनी सनातन प्रजा की रक्षा सदा करता रहता है। सत्पथगामी अपने भक्तों की रक्षा वह अग्नि की ज्वालाओं, भीषण झञ्झावातों, महामारी और शूली तक पर करता रहता है।

आओ ! हम सब श्रद्धा-समन्वित हो अपने उस महान् लीलामय भगवान् की मिलकर स्तुति और गुणगान करें।

पूषन् तव व्रते वयं ।
न रिष्येम कदाचन ।
स्तोतारस्त इह स्मसि ।। यजु० ३४ । ४१

शब्दार्थ—(पूषन्) हे पालन व पोषण करने वाले परमात्मन् ! (ते व्रते) तेरे व्रत में (वयं) हम (कदाचन) कभी भी (न रिष्येम) चूक न करेंगे । (ते) तेरे (इह) इस जीवन में हम (स्तोतारः) स्तवन करने वाले (स्मसि) बनें ।

भावार्थ—हे परमप्रिय प्राणाधार प्रभो ! आप प्राणीमात्र के पालन पोषण और संरक्षण कर्त्ता हो, आप व्रतमय हो । आपके समस्त कर्म व्रत रूप ही हैं । अर्थात् पूर्ण सत्य से संयुक्त हैं । आप सर्वज्ञ हो इसलिये आपका कोई भी कार्य त्रुटियुक्त नहीं । प्राणीमात्र के कल्याण के लिये आपने इस सृष्टि को अपने सहज स्वभाव से सृजन किया है । विभिन्न प्रकार की जीवनोपयोगी वस्तुओं का निर्माण आपने अहेतुक दया-सिन्धु, करुणा के आगार एवं प्रेम के सागर होने के कारण ही किया है । आप परम न्यायकारी हो । सत्पुरुषों का उत्थान और दुष्ट कुकर्मी जनों को दण्ड देने में आप कभी चूक नहीं करते । आपके न्यायपाश से कभी कोई बचकर निकल नहीं सकता । आपके दरबार में रिश्वत व खुशामद को स्थान नहीं ।

आप जीवों के उत्थान के निमित्त फिर-फिर उनको मानव तन प्रदान करते और उनको अन्तर्यामी हो सत्य की उपासना और असत्य के त्याग की प्रेरणा देते हो । सत्पुरुषों के आप सदा संकटों व विपदाओं में सम्बल बनते और निविड अन्धकार में उनका सहज स्वभाव से पथ-प्रदर्शन करते हो ।

प्रभो ! हम भी आपके इन और ऐसे अन्य असंख्य व्रतों का अनुकरण करने वाले बन जायें । प्रभो ! आप तो हमारे अभिन्न सखा, मित्र, बन्धु और हितू हो, माता पिता और गुरु हो, अतः हम आपको छोड़ कर अन्य किसकी वन्दना करें ।

निश्चय हम अपने इस जीवन में आपके ही गुणों का कीर्तन, वन्दन और स्तवन करेंगे और आपके गुणों को अपने जीवन में धारण करने का सतत प्रयत्न करेंगे ।

पवस्व दक्षसाधनो ।
देवेभ्यः पीतये हरे ।
मरुद्भ्यो वायवे मदः ।। साम० ५ । ६ । ८

शब्दार्थ—(हरे) हे चितचोर जीवनरस (देवेभ्यः पीतये) देवताओं के पान के लिये (दक्षसाधनः) शक्ति का साधन बनकर (मरुद्भ्यो वायवे) मरुतों के विलास के लिये (मदः) मस्ती का सामान बनकर (पवस्व) पवित्र करो ।

भावार्थ—मेरी अष्टचक्रा नवद्वारा देह रूपी पुरी के देव प्यासे हैं अग्नि, सूर्य, चन्द्र, मित्र, वरुण, अश्विनीकुमार सातों देव कभी के प्यासे चले आते हैं । आँखें देखती हैं पर उनका देखना नीरस है । कान सुनते हैं पर उनके सुनने में मिठास नहीं । मुख बोलता है पर रूखा-सूखा ।

वन, पर्वत, कान्तारों को, लता गुल्म वितानों को, फूल पत्ते और कलियों को सरसाने वाले, वृक्ष की डालियों और शस्य श्यामल कृषि की हरियाली में झाँकी दे रहे चितचोर छबीले देव! अपनी मुस्कान की छटा अपनी इस देवपुरी पर भी छिटका दो, मेरी असक्त इन्द्रियों में नयी स्फूर्ति भर दो ।

मेरे श्वास चल रहे हैं परन्तु अत्यन्त शुष्क । प्राणायाम का अभ्यास शरीर में शान्ति नहीं सरसाता । स्वभाव की चञ्चलता बराबर बनी हुई है । मैं समझता हूँ कि मेरी साधना में स्नेहरस का पुट विद्यमान नहीं है । प्राणों की धौंकनी में प्रभु-भक्ति की चिकनाहट विना शान्ति सम्भव नहीं ।

हे प्रियतम चितचोर! एक बार मेरे प्राणों को अपने प्रेमरस में भिगो दो । मेरे प्रणव के जाप में अपनी सुरीली तान मिला दो । मेरे प्राणों में मस्ती आ जाय, मेरा प्रत्येक श्वास और प्रश्वास झूम उठे । मेरे रोम-रोम में नृत्य का सा नशीला मद पैदा हो जाय ।

प्रभो! आओ । रस बहाते हुए, पवित्रता का पावन प्रवाह लाते हुए। रीमे शुष्कता को दूर कर दो और मेरे जीवन को रसमय बना दो ।

प्र न इन्द्राय मादनं
हर्यश्वाय गायत ।
सखाय सोमयन्मे ।। ऋ० ३ । १ । ६२

शब्दार्थ—(नः) हमको (प्रमादनं) दिव्य मद से विशेषतया युक्त करनेहारे (इन्द्राय) दिव्य ऐश्वर्य के भण्डार के लिये (हर्यश्वाय) अज्ञाननाशक तीव्रतम वेगवाले (मे सोमयन्) मुझे जीवन रस का पान करानेहारे (सखाय) प्राण सखा के लिये (गायत) गान करो ।

भावार्थ—हमारा प्राण-प्यारा प्रभु इन्द्र अर्थात् दिव्य ऐश्वर्यों का अतुलित भण्डार है। अज्ञानान्धकार का नाश कर हमारी बुद्धियों को प्रकाश से युक्त करने वाला है । उसकी गति का वेग असीम है । वह तो सर्व-व्यापक होने से सदा ही सर्वत्र पहले से ही विराजमान रहता है। उसकी व्यवस्था का उल्लंघन करने की किसी में शक्ति व सामर्थ्य नहीं ।

वह प्राणप्यारा सखा हमें अपने दिव्य मद (सरूर) से युक्त करनेहारा है। वह सखा भी तो ऐसा है कि उसका कभी बिछोहा नहीं होता। हम प्रमाद-वश भले ही उसको भुला दें किन्तु वह भुलाने वाला नहीं, वह प्यारा प्रभु तो हम पर निरन्तर ही अमृत की वर्षा करनेहारा है । हमें जीवनरस से संयुक्त करने वाला है ।

यदि हम सच्चे हृदय से भक्ति-भाव युक्त हो, उसकी शरण में जाएँगे तो निश्चय वह अपनी अपार दया का हाथ हमारी ओर बढ़ाएगा और हमें दैवी आनन्द की दिव्य धारा में गोता लगाने का सामर्थ्य प्रदान करेगा ।

सारे ब्रह्माण्ड में उस परमप्रभु के अपार आनन्द का अनन्त सागर उमड़ रहा है किन्तु हम मन्दभागी उसका लाभ नहीं उठा पाते ।

अतः आओ ! मन-मन्दिर में उसकी महिमा का गान करें और अपने मानव-जीवन को सफल बनावें ।

प्र वो मित्राय गायत ।
वरुणाय विपा गिरा ।
महिक्षत्रावृतं बृहत् ॥ ऋ० ५ । ६८ । १

शब्दार्थ—(वः) तुम लोग (मित्राय) मौत से बचाने वाले के निमित्त (वरुणाय) वरण करने योग्य के लिये (विपा गिरा) प्रशंसनीय वाणी के द्वारा (प्रगायत) विशेष रूप से गान करो। उसकी (महि) महिमा (बृहत्) महान् है (क्षत्रावृत) भुवन व्यापिनी है।

भावार्थ—वह प्राणनाथ प्रभु हमारा सखा है। वह हमें सदा बुराइयों से बचाकर अच्छाई की ओर प्रगति करने की प्रेरणा देता है, वह हमें पतन के गर्त से निकालकर उन्नति के सोपान पर चढ़ने में सहायक होता तथा मृत्यु के मुख से बचा कर अमृतरस पान करने की प्रेरणा देता है। आओ हम सब मिल कर उसके गुणगान करें। वह ही हमारा प्राणप्यारा और जीवन का सर्वश्रेष्ठ आधार व सम्बल है। अतः वह ही एक मात्र हमारा उपास्यदेव है। हम अपनी सत्य से पवित्र की हुई वाणी द्वारा उसका यशोगान करें।

अनन्त शक्ति, अनन्त ज्ञान एवं अनन्त क्रिया वाले उस महान् प्रभु की महिमा भी महान् है। उसकी महिमा का कोई पार नहीं पा सकता। बड़े-बड़े ऋषि, मुनि ज्ञानी, योगी उसकी महिमा का पार पाने के लिये जीवन भर प्रयत्न कर-करके हार गये। पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊपर और नीचे सब दिशाओं में अग्नि, वरुण, इन्द्र, सोम, विष्णु, बृहस्पति नामों से उसकी महती शक्तियों और गुणों का बखान करते-करते हम थक जाते हैं। किन्तु उसकी शक्तियाँ और गुण अनन्त हैं और हम सान्त शक्ति एवं गुणों वाले ठहरे अतः पार पावें भी तो कैसे। तथापि जितना हम श्रद्धायुक्त हो उसकी महिमा का गान करेंगे उतना ही हम अपने जीवन का उत्थान करने वाले बनेंगे।

६९

प्र वो सखायो अग्नये ।
स्तोत्रं यज्ञं च धृष्णुया ।
अर्च गाय च वेधसे ।। ऋ० ६-१६-२२

शब्दार्थ--(व:) तुम सब (सखाय:) मित्रगण (अग्नये) ज्योति: स्वरूप प्रभु के लिये (धृष्णुया) अपनी शक्ति भर (स्तोत्रं) स्तुतियों का पाठ (च) और (यज्ञं) यजन करो (वेधसे) उस परमज्ञानी के लिये (प्र अर्च) विशेष रूप से वन्दना करो (च) और (प्रगाय) विशेष रूप से उसका यश गान करो ।

भावार्थ—आओ हम सब अपने भेदभाव भुलाकर और परस्पर मिलकर, आपस में सब परस्पर सखा वा मित्र बनकर उस दिव्य प्रकाश के केन्द्र ज्योति: स्वरूप परमात्मदेव के गुणों का बखान करने वाले स्तोत्रों का अर्थात् स्तुतिसमूहों का पाठ करें । और उसको प्रसन्न करने के हेतु अपने जीवनों में सदा शुभ कर्मों का अनुष्ठान करें । अपने जीवन को यज्ञमय बना कर, अपने को परोपकारप्रिय बनाकर त्याग और तप की भट्ठी में तपावें ।

जनता जनार्दन की सेवा, दीन-दु:खी-दलित व पतितों की सेवा तथा उनके कल्याण के हेतु अपने सुख सम्पत्ति वैभव का प्रसन्नतापूर्वक त्याग करना निश्चय उस प्रभु की सर्वश्रेष्ठ वन्दना है । श्रद्धा-समन्वित हो यज्ञ की पवित्र अग्नि में पुनीत समिधा शाकल्य एवं आज्य की आहुति देना और "इदन्न मम" का भाव अपने हृदय में सतत भरते जाना सुन्दर कल्याणकारी साधना है ।

वह प्रभु गुरुओं का गुरु और ज्ञानियों में परम ज्ञानी है । उसकी शक्तियाँ अतुलित और असीम हैं, उसकी महिमा अपार है । कभी कोई मानव उसका पार पा नहीं सकता ।

आओ मित्रो आओ ! हम सब उसके मधुर मादक जीवन-रस (सोम) का पान करें और आध्यात्मिक मस्ती में झूम-झूम कर उसकी महिमा का बखान करें ।

७०

बृहस्पते जुषस्वनो ।
हव्यानि विश्वदेव्य ।
रास्व रत्नानि दाशुषे ।। ऋ० ३-६२-४

शब्दार्थ—(बृहस्पते) हे महान् रक्षक चिरन्तन ज्ञानाधिप ! (नः) हम सब को (विश्वदेव्य) सकल दिव्य गुण युक्त (हव्यानि) भोग्य पदार्थों को (जुषस्व) प्रदान करो (दाशुषे) त्यागमय जीवन वालों को (रत्नानि) दिव्य ज्ञानादि रत्नों से (रास्व) युक्त करो ।

भावार्थ—परमपिता परमात्मा प्राणीमात्र की रक्षा करने हारा और सनातन ज्ञान का परम निधान है । वह प्राणीमात्र के लिये निरन्तर नाना भोग्य पदार्थों का सृजन करता है । संसार के सकल भोग्य पदार्थ उस अहेतुक दयासिन्धु की अपार कृपा से समस्त प्राणियों को उपलब्ध होते हैं ।

मानव अपने पुरुषार्थ द्वारा उस विश्वनाथ से मनोवांच्छित फलों को प्राप्त करता है । दैवी विभूतियों को उपलब्ध करने के लिये मानव को सतत उद्योग एवं श्रम करना होगा । यदि पूर्व-जन्म के फलभोगों के रूप में भौतिक सम्पदा मानव को प्राप्त भी हो जाए तो उसका सदुपयोग करने के लिए मानव को संयमी और पुरुषार्थी बनना चाहिए । संयम शून्य एवं पुरुषार्थहीन मानव की सम्पदा निष्फल ही चली जाती है ।

अतः आओ ! हम पूर्ण पुरुषार्थ, श्रम एवं संयमपूर्वक उस महान् दानी से दिव्य ज्ञान व बलादि रत्नों की याचना करें ।

सम्पदा पाकर हमें कभी अभिमान न हो, उस प्यारे प्रभु की उस थाती रूपी विभूति के प्रति मोह जागृत न हो ।

हम सदा सर्वदा त्यागमय जीवन व्यतीत करते हुए ही उसका उपभोग करने वाले बनें । दूसरों को उस सम्पदा में हिस्सा बँटाते हुए और दीन-दुःखी दरिद्रियों को यथोचित भाग प्रदान करते हुए उसका सेवन करें । यदि हम स्वार्थयुक्त होकर उसका उपभोग करेंगे तो निश्चय अपनी मानवता का नाश करने वाले बनेंगे ।

ब्रह्माणं ब्रह्मावाहसं ।
गीर्भि सखायमृग्मियम् ।।
गां न वोहसे हुवे ।। ऋ० ६-४५-७

शब्दार्थ—(ब्रह्माणं) महान् ज्ञान के दाता परमात्मा को (ब्रह्मवाहसं) आध्यात्मिक जीवन-रस के सञ्चारक को (सखायं) मित्र को (गीर्भिः) वैदिक स्तोत्रों द्वारा (ऋग्मियं) सर्वथा वन्दनीय को (ऊहसे) सम्यक् दर्शन के लिये (नः गां) अपनी वाणी को (वा) क्यों न (हुवे) प्रयोग करें ।

भावार्थ—परमात्मा हम सब का सखा है मित्र बन्धु और हितू है । हमें सदा सत्पथ की ओर प्रगति, करने की प्रेरणा देने वाला है । प्राणीमात्र का अत्यन्त हित एवं कल्याण करना उसका सहज स्वभाव है । वह मानव-जीवन में आध्यात्मिक रस का सञ्चार करने वाला है ।

प्रकृति-पूजा से हटकर आध्यात्मिकता (वहदानियत) में सतत संलग्न रहने की वह प्रेरणा देने वाला है । वह तो महतो महीयान् और ज्ञान का परम निधान है ।

मानव-जीवन की एकमात्र साधना उस प्यारे प्रभु को प्राप्त करना ही है । नाना प्रयत्नों द्वारा उसके आनन्द-धाम तक पहुँचना मानव-जीवन का परम कर्त्तव्य है परम लक्ष्य है । हम वेदवाणी के सहयोग से उसके स्वरूप को जानने का सदा प्रयत्न करें । हमारा संगीत उसके दिव्य ज्ञान से सदा ओत-प्रोत हो । भक्ति से भीगा हमारा ज्ञान उस प्यारे प्राणनाथ प्रभु के सम्यक् दर्शन में हमारा सहायक हो । उस प्रभु का गुणगान करते-करते हमारे नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगे और हमारा शरीर पुलकायमान हो उठे ; बस यही हमारी आकांक्षा है । ऐसा पुनीत दिन इस जीवन में आवे और शीघ्र आवे, ऐसी हे नाथ आप हम पर कृपा करो ।

प्रभो ! वह दिन कब आवेगा जब मैं आपका स्तवन करते २ बेसुध होकर मन मन्दिर में आपकी दिव्य ज्योति का दर्शन करने का पात्र बनूंगा और अपने भीतर अन्तर्तम का दर्शन कर अपने मानव जीवन को सफल बनाऊँगा ।

भद्रं भद्रं न आभर ।
इषमूर्जं शतक्रतो ।।
यदिन्द्र मृडयासि नः ।। साम० १-८-६

शब्दार्थ—(शतक्रतो) हे असंख्य शुभकर्मों के कर्त्ता । (इषमूर्जं) अनादि जीवन-उपयोगी पदार्थों तथा पराक्रम को भद्र (भद्रं) तथा दिव्य कल्याण को (नः) हम सब के लिये (आभर) धारण करो (इन्द्र) हे परमैश्वर्यवान् प्रभो (यत्) जो (नः) हम पर (मृडयासि) आप कृपा करते हो ।

भावार्थ—वह अहेतुक दयासिन्धु परमात्मा निश्चय हम सब जीवधारियों पर सतत अपनी कृपा करते हैं । उस प्रभु की कृपा का हाथ सदा हमारे लिये प्रसारित है । प्यारे प्रभो ! आप तो शतक्रतु हैं । आप महान् के पवित्रतम शुभ कर्मों की गणना करना हमारी शक्ति के बाहर है ।

आपने असंख्य प्रकार के खाद्य और पेय पदार्थों का निर्माण हमारे लिये ही किया है । इन पदार्थों की प्राप्ति और इनका सदुपयोग करने की शक्ति और ज्ञान भी आपने हमको दिया है अतः हम सदा परिश्रमपूर्वक इन पदार्थों का उपार्जन करेंगे और इनका सदुपयोग करेंगे ।

विश्व की यह सकल विभूतियाँ आपकी हैं । आप ही तो इन सब के स्वामी हो । हम तो केवल आपकी इस धरोहर को धारण करने वाले हैं । हम कभी भूल कर भी इनका दुरुपयोग नहीं करेंगे । यह तो आपकी धरोहर ठहरी, फिर इसके प्रति मोह और ममत्व कैसा ! इनको पाकर अभिमान और दया कैसी !

प्रभो ! कृपा करो और हमें अपनी शरण में ले लो । हम तो आपके ही एकमात्र उपासक हैं ।

हम पर सदा कल्याण की वर्षा करो । हम सदा भद्र भावनाओं से अपने जीवन को भरपूर करें । भद्र ही सुनें, भद्र ही देखें और भद्र कर्मों के अनुष्ठान करने का व्रत धारण करने वाले बन जायें ।

भारतीडे सरस्वति।
या वः सर्वा उपब्रुवे ।।
ता नश्चोदयत श्रिये ।। ऋ० १-१८८-८

शब्दार्थ—(भारती) भरण करने वाली (सरस्वति) हे वेदमाता (इडे) मैं तेरी स्तुति करता हूँ (या) जो (वः सर्वाः) तुम सबको (उपब्रुवे) विशेष ज्ञान का बखान करती है (तानः) वह हम सबको (श्रिये) दिव्य ऐश्वर्य के निमित्त (चोदयत) प्रेरित करें।

भावार्थ—सतत ज्ञान रूपी रस का वहन करने वाली सरस्वती वेद माता मानवों का कल्याण करने वाली है। उनको सुपथ का पथिक बना कर देवत्व को प्रदान करने वाली है। मैं पूर्ण ग्रास्था एवं श्रद्धा के साथ उसकी परिचर्या में उपस्थित होता हूँ।

हमारी वेद माता हमसे कुछ छिपाकर रखने वाली नहीं, ग्रपितु सरल एवं सुगम रूप में हमारे ग्रन्दर ज्ञान का दीपक जलाती ग्रौर प्रशस्त प्रकाश-पथ से गति करने की हम को क्षमता प्रदान करती है।

सरस्वती की उपासना से भौतिक सम्पत्ति एवं विभूति के साथ-साथ ग्राध्यात्मिक ऐश्वर्य भी उपलब्ध होने लगता है।

ग्राध्यात्मिकता पर ग्रवलम्बित ऐश्वर्य एवं ज्ञान ही विश्व में दिव्य शान्ति एवं सुख का साम्राज्य विस्तृत करते हैं।

संसार की संस्कृतियों का ग्रादि-स्रोत वेद ही हैं। सब संस्कृतियाँ इसी ही की दुहिताएँ, पौत्रियाँ एवं दौहित्रियाँ हैं। मातामही सरस्वती में ग्रास्था रखते हुए हम संसार की सर्व संस्कृतियों में सामञ्जस्य, सौहार्द एवं स्नेह का निर्माण करने वाले बन जायें।

संसार के मतवादों का वेद के प्रकाश में मन्थन करना इस युग की पुकार है। मानवता का विस्तार करने का यह ही प्रशस्त मार्ग है। मन्थन द्वारा उपलब्ध विष का निराकरण करते हुए तथा ग्रमृत का स्वागत करते हुए उसको ग्रात्म-सात् करना ग्रौर चिरन्तन सत्य का उसको ग्रंग समझते हुए सरस्वती माता के चरणों में उसकी भेंट चढ़ाना ग्रार्य जाति का महान् कार्यक्रम है।

प्रभो! हमें शक्ति दो, इस पुण्य कार्यक्रम को करने में हम संलग्न हों।

मधु नक्तमुतोषसः ।
मधुमत्पार्थिवं रजः ।
मधुद्यौर स्तु नः पिता ।। ऋ० १-६०-७

शब्दार्थ—(नक्तं) रजनियाँ (उत) और (उषसः) उषाएँ (नः) हमारे लिये (मधु) माधुर्य सञ्चारक हों (पार्थिवं) पृथिवी के (रजः) कण (मधुमत्) माधुर्य्ययुक्त हों (द्यौः) द्यौलोक भी (नः पिता) हमारा रक्षक है (मधु अस्तु) जीनव रस का सञ्चारक होवे ।

भावार्थ—प्राणनाथ प्रभो ! विश्राम एवं स्वस्थतादायक रजनियाँ हमारे लिये मधु का सञ्चार करने वाली हों । हम इन रजनियों का विधिवत् सेवन करने वाले बनें ? दूसरे प्रहर के आरम्भ में शयन कर और चौथे प्रहर के आरम्भ में जागकर आपके चिन्तन करने वाले बन जाएँ ।

उषाकाल की शीतल मन्द सुगन्ध-युक्त समीर का सेवन कर उदय होते सूर्य के नैसर्गिक दृश्य का अवलोकन कर भक्ति-भावयुक्त बन जायें । निश्चय यह उषा की पावन अमृत वेला जीवन में दैवी मादकता का सञ्चार करने वाली हमारे लिये होवे ।

पृथिवी माता जिसका एक-एक कण हमें प्राणों से प्यारा है और जो हमारे पूर्वजों की यज्ञ-स्थली है—बलिदानों की पवित्र भूमि है—और जो हमें जीवन की अनेक वस्तुएँ निरन्तर प्रदान करतीं रहती है, हम श्रद्धा से युक्त हो प्राणपण से उसकी रक्षा हेतु अपना सर्वस्व होम करने के व्रती बनें । पृथिवी के कण-कण में हम आपकी दिव्य विभूति के दर्शन करने वाले बन जायें । सूर्य लोक और इसी प्रकार अनेक प्रकाशमान महान् लोक ध्रुव, चित्रा स्वाति आदि नक्षत्र तथा मंगल, बृहस्पति, बुध, शुक्र आदि ग्रह हमारे जीवन में अपने प्रकाश, तेज एवं द्युति का सञ्चार कर माधुर्य का सञ्चार करने वाले बन जायें । रात्रि में यह तारों-भरा विस्तृत नभमण्डल और उसकी आकाशगंगा हमारे जीवन में जीवन रस अर्थात् आध्यात्मिक मस्ती के भरने वाले हो जाएँ ।

मधुमन्नो वनस्पतिः ।
मधुमाँ अस्त सूर्यः ।।
माध्वीर्गावो भवन्तु नः ।। ऋ० १-६८-८

शब्दार्थ—(वनस्पतिः) वनस्पति जगत् (नः) हमारे लिये (मधुमान्) माधुर्ययुक्त (अस्तु) होवे (सूर्यः) सूर्य का तेज (मधुमान्) मधु सञ्चार करने वाला होवे (गावः) गौवें हमारे लिये (माध्वीः) मधुर रस का प्रदान करने वाली (भवन्तु) होवें ।

भावार्थ—प्रभो ! राष्ट्र की महती सम्पत्ति वनस्पति अर्थात् वन, उपवन, वाटिका और कान्तार स्वस्थताकारक, नैरोग्यदायक, पुष्टिकारक फल, फूल, कन्दमूल एवं रस का सञ्चार करनेवाली होवें । आवश्यकतानुसार वर्षा होने में सहायक हों । प्रचुर मात्रा में हमें उत्तम काष्ठ, समिधा और ईंधन उपलब्ध होवें । आपकी कृपा से एक एक वृक्ष हमारे जीवन में माधुर्य का सञ्चार बन जावे । हम वृक्षों के नाशक न बनकर उनके रक्षक बन जावें ।

सूर्य देव का प्रकाश, आतप और तेज हमारे लिये कल्याणकारी होवें । सूर्य की किरणें हमारे लिये जीवन रस का सञ्चार करने वाली हों । हम प्रभात वेला में उदय होते हुए सूर्य की किरणों को अपने निमीलित नेत्रों और वक्षस्थल पर धारण कर अपनी दर्शन शक्ति को मादक करने वाले और हृदय-दौर्बल्य को दूर हटाने वाले बन जाएँ । स्वच्छ वायु और धूप में हम अधिक से अधिक निवास करें । ग्रीष्म ऋतु का प्रचण्ड सूर्य भी हमें हानि पहुँचाने वाला न हो । सूर्य की पवित्र रश्मियाँ हमें शुचिता प्रदान कर माधुर्य से संयुक्त करें ।

अघ्न्यागों के हम सेवक बन जाएँ । जीवन यज्ञ की प्रतिष्ठानों की रक्षा और उसके वंश की वृद्धि करने में हम सदा प्रयत्नशील रहें । नाना रोगों से त्राण देने वाला तथा पुष्टिकारक सात्विक गोरस हमारे जीवन में सच्चे माधुर्य का सञ्चारक हो । यह सात्विक गोदुग्ध हमें आध्यात्मिक मस्ती से युक्त करने वाला बना देवे ।

मधु वाता ऋतायते ।
मधु क्षरन्ति सिन्धवः ।।
माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ।। ऋ० १-९०-६

शब्दार्थ—(नः) हमारे लिये (वाता) वायु (मधु) माधुर्ययुक्त (ऋतायते) बह रही है (सिन्धवः) नदियाँ (मधु) माधुर्ययुक्त (क्षरन्ति) प्रवाहित हो रही हैं (ओषधीः) लता बेल पादप आदि (नः) हमारे लिये (माध्वीः) माधुर्य से संयुक्त (सन्तु) होवें ।

भावार्थ—प्रभो ! आपकी कृपा से हमारे लिये वायु सुखकारी और आनन्ददायिनी होवे । शीतल मन्द सुगन्ध समीर हमारे लिये प्रवाहित हो । वायु-शुद्धि के लिये हम सदा यज्ञ यागादि करने वाले बनें । तथा अपने निवास-स्थान व अड़ोस-पड़ोस को स्वच्छ रखने में प्रयत्नशील हों । एतदर्थ श्रम के कार्यों के करने में हम कभी प्रमाद न करें । वायु के झोंके हमारे लिये दिव्य मादकता प्रवाहित करने वाले बन जाएँ ।

कल-कल निनाद करने वाली नदियाँ और उनकी मनोहर लहरें हमारी हृदय-तन्त्री को हिलाने वाली हों । यह नदियाँ अपने सतत प्रवाह द्वारा हमें अपना जीवन प्रगतिशील बनाने का पाठ पढ़ाने वाली बन जाएँ । इन नदियों के शान्त प्रवाह को निखारकर हम आध्यात्मिक मादकता में सराबोर हो जायें हम इन नदियों के कूल और संगमों पर शान्तचित्त बैठ कर आपके ध्यान में मग्न हो जीवन-रस का पान करने वाले बन जायें ।

प्रत्येक लता, बेल, वितान, पादप, पौधा और वृक्ष हमारे लिये सुखकारी हो । इनकी छाँव में हम अपनी दिव्य छवि के दिव्य दर्शन करने वाले बन जायें ।

पुष्पों की सुगन्ध हमारे जीवन में आध्यात्मिक सुरभि सरसाने वाली हो । इनके द्वारा उत्पन्न होने वाले फल, फूल, कन्द और रस हमारे जीवन में सात्विकता का सञ्चार करने वाले बन जायें । प्रभो ! आपकी कृपा से आपकी रची यह सरल वस्तुएँ हमें सुख शान्ति और सौमनस्य प्रदान करने वाली बन जायें तथा सोम-सरोवर के अवगाहन में यह हमारी सहायक बन जायें । यह ही हमारी सब की मनोकामना है ।

महीरस्य प्रणीतयः ।।
पूर्वीरुत प्रशस्तयः ।।
नास्य क्षीयन्त ऊतयः।। ऋ६०-६-४५-३

शब्दार्थ—(अस्य) इस परमात्मदेव की (प्रणीतयः) कृपायें (महीः) महान् हैं (उत) तथा (प्रशस्तयः) इसकी यशगाथाएँ (पूर्वीः) प्राचीन सनातन हैं (अस्य) इसकी (ऊतयः) रक्षा के साधन (न क्षीयन्ते) कभी नष्ट नहीं होते।

भावार्थ—परमात्मदेव सहज स्वभाव से प्राणीमात्र पर दया करने वाले हैं। प्राणियों के कल्याणार्थ ही तो प्रभु ने इस संसार की रचना की है। असंख्य प्रकार के पेय एवं खाद्य पदार्थों को प्रभु ने प्राणियों के निमित्त उत्पन्न किया है। दीन दुःखी दरिद्रियों का वह सदा भरण करने वाले हैं। पापी पतितों पर उसकी कृपा का वरद हस्त सदा विस्तृत रहता है। उनकी महिमा अपार है। उनके सनातन ज्ञान, बल एवं दिव्य कर्मों का पूर्ण बखान करना मानव की बुद्धि के परे की वस्तु है।

वह प्रभु अपनी प्रजाओं की नानाविधि रक्षा करते हैं। बड़े से बड़े संकट उपस्थित होने पर अपनी प्रजाओं की आत्माओं में बल का सञ्चार करते हैं। धैर्य्यपूर्वक अपने कर्मों के कारण उपस्थित बाधाओं को सहन करने की सामर्थ्य प्रदान करते हैं। विपरीत परिस्थितियों में सत्य-पथ का अनुसरण करने का सुन्दर विवेक उनकी बुद्धियों में भरते और अन्याय, अत्याचार से, अनीति, अनाचार से लोहा लेने की क्षमता प्रदान करते हैं।

उस पावन प्रभु की रक्षा के साधन भी अनन्त और अपार हैं।

भयङ्कर भूकम्प और जलप्लावनों में अग्नि की प्रचाण्ड ज्वालाओं और सागर की उत्ताल तंरगों में भी उस प्रभु के असंख्य रक्षक हस्त प्रसारित रहते हैं। बस आवश्यकता है मानव के अन्दर उनके प्रति सच्ची आस्था और प्रेम की, निष्ठा और भक्ति की तथा धर्म के सनातन नियमों को जीवन में धारण करने की।

प्रभो ! हम आपके हैं और आपके ही रहेंगे। आपकी आज्ञाओं के वाहक बनकर आपके प्रति आत्मसमर्पण करेंगे।

महो अर्णः सरस्वती ।
प्रचोदयति केतुना ॥
धियो विश्वविराजति ॥। ऋ० १ । ३ । १२

शब्दार्थ—(विश्वा) अखिल विश्व में (विराजति) विशेष प्रकार से प्रकाशमान (महो अर्णः) महान् सागर के समान (सरस्वती) अतुलित ज्ञान का भण्डार परमात्मा (केतुना) अपनी प्रेरणा द्वारा (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयति) विशेष रूप से चेतना कराता है ।

भावार्थ—प्रभो ! आप अतुलित ज्ञान के भण्डार हैं । ज्ञान तथा शक्ति के दातार आप ही हैं । आप गुरुओं के गुरु हैं । जो कुछ भी सत्यज्ञान हमें उपलब्ध होता है उसके आदि विधाता आप ही हो । आप सर्वश्रेष्ठ दिव्य-बल के केन्द्र हो । आपका बल ही एक मात्र हमारे जीवन का सम्बल है । असहायों के सहाय और अबलों के बल आप ही हो ।

प्रभो ! अखिल विश्व में आपकी ज्योतिः जगमगा रही है। सर्व लोक-लोकान्तरों, नक्षत्रों-तारागणों की ज्योतिः के आधार आप ही हो। सूर्य और चन्द्रमा आपकी ज्योतिः से ही भासमान होकर उष्ण और शीतल प्रकाश धरती पर फैला रहे हैं। असंख्य तारागणों से निर्मित यह आकाशगंगा आपकी ज्योतिः से ही आकाश में अपनी छटा सरसा रही है । विद्युत् और अग्नि की ज्वालाओं में आपकी ही दमक और आभा व्याप्त है ।

आप सदा सत्कर्मों के अनुष्ठान की दिशा में मानवों को प्रेरणा देते हो । प्रेरणारूपी आपकी अन्तर्ध्वनि (Inner Voice) सदा अन्धकार में पथ प्रदर्शन कराती है। अति विकट संकटों के उपस्थित होने पर धैर्य्य का सञ्चार करती और खतरे की घाटियों से निर्भयतापूर्वक विचरण करने की शक्ति आपकी प्रेरणा से ही मानव को प्राप्त होती है ।

पाप-पङ्क में गहरे धंसकर हम हतभागी आपकी अन्तर्ध्वनि का श्रवण नहीं करते । आपकी आन्तरिक प्रेरणा की निरन्तर उपेक्षा करते और अपने जीवन को नारकी बनाते और नष्ट कर डालते हैं । प्रभो ! हमें शक्ति दो कि पशुता त्याग कर हम यथार्थ में मानव बन जायें और आपके अमृत पुत्र बनकर जीवन में अमरत्व को प्राप्त करें ।

मा प्रगाम पथो वयम् ।
मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः ॥
मान्तः स्थुर्नो अरातयः ॥ ॥ ऋ० १० । ५७ । १

शब्दार्थ—(इन्द्र) हे परमैश्वर्यवान् प्रभो ! (पथः) वेद विहित प्रशस्त मार्ग से (वयं) हम (मा प्रगाम) दूर न चले जायें (सोमिनः) जीवन-रस का सम्पादन करने वाले हम (मा यज्ञात्) यज्ञीय कर्मों से परे न हट जायें (अरातयः) कामक्रोधादि शत्रु (नः) हमारे (अन्तः) अन्दर (मा स्थुः) बैठने वाले न हों ।

भावार्थ—ऐ सकल ऐश्वर्य एवं विभूति के स्वामिन् परमात्मन् ! आपकी कृपा से हम सब प्रशस्त वैदिक मार्ग से अपने जीवन में प्रगति करने वाले बन जायें और कभी भूलकर भी प्रशस्त वैदिक मार्ग से विचलित न हों । सत्य-ज्ञान के पावन-पथ से विचलित होना तो मानव के लिये मृत्यु का आलिंगन करना है । हमने तो अपने जीवन में सोमरस का निष्पादन करना है ।

हमारे अन्दर जो सोमरस भरा हुआ है उसका मन्थन करना है । दधि में छिपे घृत और तिलों मे लुके तैल की भान्ति अपने अन्दर छिपे सोम का—दिव्य जीवन-रस का ध्यान-योग की मथनी में प्रणव द्वारा मन्थन करना है । हम इस मन्थन रूपी यज्ञ से कभी पराङ्मुख न हों ।

हमारे जीवन का एक-एक क्षण यज्ञ अर्थात् परोपकार कर्म के लिये समर्पित हो हम भौतिक अग्नि में श्रद्धा-समन्वित हो, ज्ञानपूर्वक मन्त्र का उच्चारण कर पवित्र शाकल्य की आहुति डालेंगे । हमारा यह यज्ञानुष्ठान कभी हमारे अन्दर मिथ्या अभिमान जागृत करने वाला न हो । हम निष्ठा-पूर्वक अपने जीवन में "इदन्न मम" के आदर्श को निभाएंगे ।

हमारे अन्दर नाना प्रकार के काम, क्रोध, लोभ-मोह, आदि शत्रु छिपे बैठे हैं । हम दिव्य-यज्ञ के आध्यात्मिक धूम्र से इन शत्रुओं को दूर भगावेंगे । हमारे यह मन में छिपे पाप निश्चय हम से दूर भागेंगे । इन शत्रुओं को दूर भगाना ही हमारी यज्ञीय साधना होगी । प्रभो ! कृपा करो और इन शत्रुओं से लोहा लेने में हमें समर्थ बना दो ।

मित्रं वयं हवामहे ।
वरुणं सोमपीतये ।।
जज्ञाना पूतदक्षसा ।।। ऋ० १ । २३ । ४

शब्दार्थ—(वयं) हम (सोमपीतये) दिव्य जीवन रस का पान करने के निमित्त (वरुणं) वरण करने योग्य (मित्रं) प्राण सखा परमात्मा का (पूतदक्षसा) पवित्रता और बुद्धिमत्ता के साथ (जज्ञाना) यजन करते हुए (हवामहे) आवाहन करते हैं ।

भावार्थ—सोमरस का पान करने के लिये अर्थात् दिव्य जीवन रस को अथवा आध्यात्मिक मादकता को—वहदानियत की मस्ती को—अपने जीवन में लाने के लिये अपने अन्दर पवित्रता धारण करते हुए और आन्तरिक स्वच्छता को लाते हुए हम बुद्धिमत्ता के साथ ज्ञानपूर्वक मनोयोग द्वारा यजन करने वाले बन जायें । हमारा यह यज्ञ पूर्णतया अध्वर हो । इसमें किसी भी प्रकार की हिंसा की गन्ध न हो तथा याज्ञिकों के आन्तरिक जीवन से भी हिंसा की भावनाएँ नष्ट हो जायें । सर्वभूत हिते रत: के आदर्श को हम अपने जीवन में ढ़ालने वाले बन जायें । "अभयं सर्वभूतेभ्य:" अर्थात् संसार के सर्व प्राणियों हमसे भय रहित हो जायें । हमको संसारमें कभी किसी से भय न हो ।

यज्ञ में पड़ी हुई हमारी प्रत्येक आहुति जीवन में "इदन्न मम" के भाव को चरितार्थ करने वाली हो । हमारा स्वाहाकार स्वार्थ त्याग की भावना को हमारे अन्दर जागृत करने वाला हो ।

हम अपने जीवन को यज्ञमय बनाकर अपने उस सर्वश्रेष्ठ उपास्यदेव जीवन-सखा का अर्थात् उस प्यारे प्राणनाथ प्रभु का अपने मन मन्दिर में आवाहन करने वाले बन जायें । मन्त्र के साथ उच्चरित प्रणव हमारी हृत् तन्त्री को प्रकम्पित करने वाला बन जाय । श्रद्धा और ज्ञानपूर्वक भौतिक अग्नि में दी हुई हमारी आहुतियाँ हमें उस परम पवित्र दिव्य आध्यात्मिक अग्नि में यजन करने वाला बना दें । बस यही हमारे जीवन की साधना हो और हमारे इस यजन का एकमात्र प्रयोजन हो ।

यदङ्ग दाशुषे त्वम् ।
अग्ने भद्रं करिष्यसि ॥
तवेत्तत्सत्यमङ्गिरः ॥। ऋ० १ । १ । ६

शब्दार्थ—(अंग अग्ने) हे परम आनन्द एवं ज्योतिः स्वरूप विश्वविनायक स्वामिन् (त्वं) तू (दाशुषे) दानशील त्यागी का (भद्रं) कल्याण (करिष्यसि) निश्चय करने वाला है (अंगिरः) हे देव (एतत्) यह (तव) तेरा (सत्यं) सत्य व्रत है।

भावार्थ—प्रभो ! आप नस-नाड़ी के बन्धन में कभी न आने वाले अकाय और अव्रण हो। आप शुचिता और पवित्रता के आगार हो। वन्दनीय ज्योतिः स्वरूप और आनन्द स्वरूप हो और प्राणीमात्र का कल्याण करने वाले हो और उस प्राणी का, जो दानशील है और बिना यश की कामना के और बिना प्रतिफल की आकांक्षा के धन, अन्न, वस्त्र, भूमि, विद्या आदि का दान करता रहता है तथा देश, धर्म और मानवता की रक्षाहित सतत उद्यत रहता है, आप निश्चय कल्याण करते हो।

नाना दुःख बाधाओं से, विपत्ति आपत्ति और संकटों से उसका त्राण करते हो, संकटों का सामना करने के हेतु उसके अन्दर निर्भयता, हर्ष और उल्लास उत्पन्न करते हो, आप तो उसको हँसते-हँसते जीना और हँसते-हँसते विदा होने की पुनीत भावना से संयुक्त करते हो।

त्याग और बलिदान पथ के पथिक को आप "चरैवेति चरैवेति" का पाठ पढ़ाने वाले हो अर्थात् इस जीवन पथ पर दृढ़तापूर्वक "चलते रहो चलते रहो" बस यह ही उसका प्रयाण गान बन जाता है। घोर तमसाच्छन्न निविड़ अन्धकार में, भीषण वर्षा और झञ्झावात के प्रबल झकोरों में उस राही को आत्मबल का सम्बल प्रदान करने वाले आप ही हो।

यस्माहृते न सिध्यति ।
यज्ञो विपश्चितश्च न ।।
स धीना योगमिन्वति ।।। ऋ० १ । १८ । ७

शब्दार्थ—(यस्माहृते) जिसके विना (विपश्चित:) ज्ञानी मानव की (यज्ञ:) जीवन की साधना (न सिध्यति) सिद्ध नहीं होती (च) और (धीनां) बुद्धियों के (योगं) योग को (स:) वह (न) नहीं (इन्वति) प्राप्त होता है ।

भावार्थ—सदा शुभ कर्मों की प्रेरणा देने वाला और इन पुनीत कर्मों के अनुष्ठान में आत्मबल को जुटाने वाला वह प्राणप्यारा हमारा प्रभु ही है। जीवन की साधना करना ज्ञानी मानव का महान् कर्त्तव्य है । ईश्वरीय आज्ञा का वाहन बन श्रेष्ठतम कर्मों का अनुष्ठान ही मानव-जीवन की सच्ची साधना है । किन्तु यह साधना विना प्रभु विश्वास और ब्रह्मनिष्ठा के सम्भव नहीं । आत्मविश्वासी और ब्रह्मपरायण मानव ही अपने जीवन को सही रूप में साध सकता है। मानवता से देवत्व की ओर प्रगति करने के लिए दृढ़ आत्म-विश्वास की अनिवार्य आवश्यकता है ।

देश, जाति एवं राष्ट्र की रक्षाहित जितने भी मानव यज्ञ रचता सब में उस अहेतुक दयासिन्धु का वरद हस्त विद्यमान रहता है । जीवन के संग्राम में जब कर्त्तव्य-पथ विपरीत परिस्थितियों के निविड़ अन्धकार में विलुप्त हो जाता है तब वह हमारा प्राणप्यारा मार्ग-दर्शक सखा ही हमारा पथ-प्रदर्शन करता और कठोरतम पथ पर चलने की क्षमता और शक्ति हमारी नस-नाड़ियों में संचारित करता है ।

बुद्धियोग की सिद्धि भी उस प्राणनाथ प्रभु के सहारे ही सम्भव है। मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार पर काबू पाना और अनुकूल दिशा में अपनी गति निर्धारित करना मानव के लिये तब ही सम्भव है जब पूर्ण ईश विश्वासी बन कर अपने सब शुभ कर्म वह ब्रह्मार्पण करने वाला बन जाता है ।

प्रभो ! हम अपने शरणागतों के यज्ञीय जीवनों को सफल बना दो ।

यं त्वा गोपावनो गिरा ।
अनिष्ठदग्ने अङ्गिरः ।
स पावक श्रुधी हवम् ।। ऋ० ८-७४-१९

शब्दार्थ—(अग्ने) दिव्य प्रकाशस्वरूप परमात्मन् (यं) जिस (त्वा) आपका (गोपावनः) साधना द्वारा इन्द्रियों को शुद्ध करने वाला (अंगिरः) आध्यात्मिक अग्नि का उपासक मानव (गिरा) अपनी वाणी द्वारा (अनिष्ठद्) स्तवन करता है (सः) ऐसे आप (पावकः) जो पवित्रता के आगार पतित-पावन हो (हवं) उसकी प्रार्थना को (श्रुधी) सुनते हो ।

भावार्थ—इन्द्रियों के दास भौतिक विभूति के उपासक मानव के ईश्वर स्तुतिपरक गीत व्यर्थ जाते हैं । ऐसा गायक अपने को धोखा देता है और श्रोताओं को धोखा देने वाला है । इन्द्रियों को वश में रखने वाला इन्द्रियजित् मानव जब आध्यात्मिक अग्नि में यजन करने का अभ्यासी बन जाता है तब उसकी सत्य परिपूत वाणी द्वारा निःसृत स्तोत्रों को वह ज्योतिःस्वरूप प्रभु अवश्य सुनते हैं ।

परमात्मदेव को पवित्रता प्यारी है ; जिसने परसेवा, परोपकार और परमार्थ-साधना द्वारा आन्तरिक शुचिता उपलब्ध की है वह निश्चय ही उस प्रभु का प्यारा बन जाता है । पवित्र जीवन वाले मानव पर निश्चय ही उस परम प्रभु की अपार अनुकम्पा होती है । पवित्र मानव के अन्तस्तल से निकले हुए शब्द संसार में कम्पन उत्पन्न कर देते हैं । जातियों और राष्ट्रों के भाग्यचक्र को बदल देते हैं ।

प्रभो ! हमें वह सद्बुद्धि प्रदान करो कि हम अपनी इन्द्रियों के स्वामी बनकर आध्यात्मिक अग्नि अर्थात् ब्रह्माग्नि में यजन करने वाले बन जायें तथा सेवाधर्म का पालन करते हुए हम निज जीवन को सफल बनाने वाले बन जायें और हमारे जीवन से निःसृत पवित्रता की सुगन्ध संसार को वासित करने लगे ।

राजन्तमध्वराणां ।

गोपामृतस्य दीदिविं ।

वर्द्धमानं स्वे दमे ।। ऋ० १-१-८

शब्दार्थ—(अध्वराणां) हिंसा रहित यज्ञों एवं परोपकार कर्मों को (राजन्तं) प्रकाशित करने वाले अग्नि देव का (ऋतस्य) जो सम्यक् ज्ञान की (दीदिविं) दिव्य प्रकाश की (गोपां) रक्षा करने हारा है और जो (स्वे) निज (दमे) सामर्थ्य में (वर्द्धमानं) वृद्धि को प्राप्त है ।

भावार्थ—सर्वथा हिंसा से शून्य यज्ञों की परमात्मदेव निश्चय रक्षा करने हारे हैं । निष्कामभाव से किये गये कर्म ही उसको प्यारे हैं । ऐसे यज्ञों तथा ऐसे कर्मों के बीच वह स्वयं प्रकाशित होते हैं अथवा ऐसे याज्ञिकों एवं कर्मयोगियों को वह आत्मतेज से युक्त कर देते हैं ।

सत्यज्ञान तो सदा मानव के कल्याणहित उदित रहता है । सत्यज्ञान के आलोक में विचरने वाला मानव निश्चय दैवी सम्पत्ति को प्राप्त करता है । सत्यज्ञान इस संसृति में शाश्वत रहने वाला है । उसके दिव्य प्रकाश की रक्षा परमात्मा स्वयं करनेहारे हैं । सत्यज्ञान विन मानव का कल्याण नहीं । उसके बिना हृदय की ग्रन्थियाँ खुलती नहीं और संशयों का उच्छेद भी नहीं होता । मतवाद झंझावात में फँसे हुए मानव का उत्थान सम्भव नहीं । कारण कि उसकी बुद्धि विकसित न होकर कुण्ठित हो जाती है । प्रकाश युक्त होने के स्थान पर तमसावृत हो बैठती है । अतः अन्धविश्वास और पक्षपात से ऊपर उठकर सत्यज्ञान की प्राप्ति के निमित्त ही मानव को अहर्निश प्रयत्नशील रहना चाहिये ।

परमात्मदेव की शक्तिपूर्ण एवं असीम है । उसकी शक्ति वा सामर्थ्य में यह सम्पूर्ण विश्व समाया हुआ है । पूर्ण ज्ञानी होने से वह निज शक्ति वा सामर्थ्य का कभी दुरुपयोग नहीं करता । शून्य विज्ञानमूल कार्यों का अनुष्ठान उसके लिये कल्पना की पहुँच से भी बाहर है । आओ ! हम सब भक्ति-भाव से अपने मन-मन्दिर में ज्ञान का दीपक जलावें और अन्तर्हित दिव्य-प्रकाश की प्रतीति के निमित्त उस परमसखा का आराधन करें ।

वरुणः प्राविता भुवन् ।
मित्रो विश्वाभिरूतिभिः ।
करतां नः सुराधसः ।। ऋ० १-२३-६

शब्दार्थ—(वरुणः) वरण करने योग्य परम-पावन प्रभु (प्राविता) विशेषरूपेण रक्षा करने वाला (भुवन्) है (मित्रः) मृत्यु से बचाने वाला (विश्वाभिः) समस्त (ऊतिभिः) रक्षा साधनों द्वारा (नः) हमारे लिये (सुराधसः) उत्तम जीवन सामग्री को (करतां) प्राप्त कराने वाला हो ।

भावार्थ—परमात्मदेव सबसे श्रेष्ठ और महान् होने तथा परम-पावन और जीवनदाता होने के कारण हम सब के लिये वरण किये जाने योग्य है । उसकी रक्षा के साधन अनन्त और अपार हैं जिनके द्वारा वह सदा हमारी रक्षा करने वाला है । वह अहेतुक दयासिन्धु निश्चय ही भारी संकट और विपत्तियों में भी हमारी रक्षा करनेहारा है ।

अपने उपासकों की वह सदा रक्षा करता, पतन के कूप से उनको बचाता और प्रशस्त कल्याणकारी मार्ग से प्रगति करने की सतत प्रेरणा देनेहारा है । परमात्मा हमारा ऐसा सखा है जो कभी विलग नहीं होता । हम भले ही उसको भूल जाँय किन्तु वह कभी हमको भूलने वाला नहीं ।

प्राणि-मात्र के निर्वाह के निमित्त नाना प्रकार के उत्तमोत्तम पदार्थों की रचना करता, भौतिक एवं आध्यात्मिक विभूतियों से हमको सदा युक्त करने वाला है ।

उसके असंख्य दया, करुणा, कृपा, अनुकम्पा आदि के हस्त सदा प्राणि-मात्र के हित प्रसारित रहते हैं ।

प्रभो ! हमें वह सद्बुद्धि प्रदान करो कि जिससे हम आपके सच्चे उपासक बन जाँय । प्रकृति-पूजा से ऊपर उठ कर हम इस जीवन में आपके ही पुजारी बन जाँय ।

वय सोम व्रते तव ।
मनस्तनूंषु विभ्रतः ।
प्रजावन्तः सचेमहि ।। ऋ० १०-५७-६

शब्दार्थ—(सोम) हे जीवन-रस (वयं) हम (प्रजावन्तः) इन्द्रिय आदि श्रेष्ठ प्रजावाले (तनूषु) शरीरों में (मनः) मन को (विभ्रतः) निगृहीत करते हुए (तव) आपके (व्रते) पावन व्रत में (सचेमहि) अपने को युक्त करते हैं ।

भावार्थ—मानव जीवन को सरसाने वाले प्राणनाथ प्रभु ने हमें वाक्, चक्षु, श्रोत्र आदि विचित्र प्रजाओं से युक्त किया है । हम अपनी इन अष्ट-चक्रा, नवद्वारा पुरियों में इन प्रजाओं का सम्यक् प्रकार से पालन करेंगे इनको कभी भूल कर भी गलत रास्ते पर न जाने देंगे और इनके बल का क्षय भी न होने देंगे ।

प्रभो ! आपने हमको अद्भुत मनस्तत्व प्रदान किया हुआ है जिसके द्वारा हम अपनी इन प्रजाओं का सम्यक् नियन्त्रण करेंगे । आपने जो दिव्य पथ प्रदर्शित किया है सदा उस पर ही इन प्रजाओं को चलावेंगे ।

प्रभो ! आप व्रतपति हैं । व्रतों का पालन करनेहारे हैं । हम भी अपने जीवन में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य अपरिग्रह आदि व्रतों का अनुष्ठान करने वाले बनेंगे । हम भूलकर भी कभी इन व्रतों की अपने जीवन में उपेक्षा नहीं करेंगे । अपितु पूर्ण-निष्ठा और मनोयोगपूर्वक इन व्रतों के साधने में हम आपसे बल की याचना करेंगे । प्रभो ! आप व्रतपति हो जहाँ अपने व्रतों का विस्तार पालन करनेहारे हो वहाँ हम अपने अनुचरों के जीवन-व्रतों के अनुष्ठान में हमारे अन्दर बल का सञ्चार करने वाले भी हो ।

प्रभो ! हमें वह शक्ति प्रदान करो कि जिससे हम इन व्रतों के पूर्णतया पालन करने में समर्थ बन जांय । आपकी अमृत छाया में विचरण करते हुए और श्रद्धा समन्वित होकर आपकी शरण में सदा रहते हुए हम निश्चय ही अपने जीवन का उत्थान करेंगे, जीवन में ऊँची-से-ऊँची उड़ान उड़ेंगे और आध्यात्मिक मद में मस्त होकर सदा झूमा करेंगे ।

वाजे वाजे हवामहे ।
योगे योगे तवस्तरं ।
सखायमिन्द्रमूतये ॥ सा० १ । ७ । ६ ।

शब्दार्थ—(योगे योगे) निष्काम कर्मों के कुशलतापूर्वक अनुष्ठान करने में (वाजे वाजे) जीवन के प्रत्येक संग्राम में (तवस्तरं) महान् शक्तिशाली (सखायं) समान ख्याति वाले शुद्धचैतन्य, मुक्तस्वभाव आत्मतत्त्व (इन्द्रं) परमेश्वर्यवान् प्रभु का (ऊतये) रक्षा एव उत्थान के निमित्त (हवामहे) हम सब मिलकर आवाहन करते हैं ।

भावार्थ—देश, जाति, राष्ट्र एवं संसार के उत्थान के लिये निष्ठापूर्वक श्रेष्ठतम कर्मों का अनुष्ठान करना मानव का धर्म है । मानव जीवन तो निश्चय ही एक महान् संग्राम का जीवन है । निरन्तर काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि असुरों से लोहा लेना और अपनी इस विचित्र रचनामयी दैवी देह को अयोध्या अर्थात् युद्धों से शून्य बनाना मानव जीवन की साधना है । इस धर्मानुष्ठान एवं साधना में सफलता लाभ करने के लिये मानव को अपने से महान् पराक्रमी, महान् ज्ञानी एवं महान् बलशाली व्यक्ति के सहयोग की आवश्यकता है और परमात्मदेव निश्चय ही अतुलित पराक्रम, ज्ञान एवं शक्ति के भण्डार हैं, संसार के समस्त ऐश्वर्य पर उनका एकछत्र शासन सदा रहता है और ऐसे वह परमात्मदेव सदा हमारे साथ ही रहने वाले अर्थात् हमारे जीवन के साथी हैं । ऐसे उस परमसखा को बिसराकर किसी अन्य अल्प ज्ञान व बलादियुक्त मानवी शक्ति का सहारा तकना और उससे सहायता की कामना करना अथवा उसको जीवन सखा व पथ-प्रदर्शक बनाना भारी भूल है ।

दया, करुणा, व मैत्री के अतुलित भण्डार प्राणनाथ प्रभु तो प्राणीमात्र की सदा रक्षा करते और सत्पथ का उसको सदा प्रदर्शन करानेहारे हैं । हम उनको बिसराकर कहो अन्य किसी की शरण में जावें । कहो कौन है जो निकट संकटों में हमारा सदा साथ देता, निराशा निशा में डूबते हुओं का सहारा बनता और संसार सागर को तरने की सामर्थ्य प्रदान करता है । अतः आओ हम सब मिलकर अपने जीवन के एकमात्र प्रबलतम सम्बल उस प्यारे सखा का अनन्य भाव से अपने मन-मन्दिर में वन्दन करें ।

वायवाहि दर्शते ।

मे सोमा अरंकृताः ।

तेषां पाहि श्रुधिहवम् ।। ऋ० । १ । २ । १

शब्दार्थ—(वायो) संसार को गति देने वाले, अत्याचारियों का विध्वंस करने वाले, सृष्टि के रचयिता और संहारक प्रभो । (आयाहि) मेरे मन मन्दिर में प्रकट हो (दर्शते) दिव्य दर्शन के लिये (मे) मेरी (सोमा) आध्यात्मिक जीवन की मादकताएँ (अरंकृता) अलंकृत हैं । (तेषां) इनका (पाहि) रक्षण करो (हवं) हमारी प्रार्थना को (श्रुधि) सुनो ।

भावार्थ—प्रभो ! आप सकल संसार को गति देने वाले और अन्यायी अत्याचारी पातकियों का संहार करनेवाले हो। इस संसृति के स्रष्टा और विनाश कर्त्ता आप ही हो । आप ही अपने सहज स्वभाव से प्राणीमात्र के कल्याणार्थ इस सृष्टि की रचना करते और समय आने पर इसको पुनः आद्या प्रकृति में परिणत कर देते हो ।

मैंने अपने जीवन में व्रतों की साधना द्वारा एवं भक्तियोग के सतत अभ्यास द्वारा आध्यात्मिक मादकता (मस्ती) का सम्पादन किया है । संसार की कोई वस्तु चाहे वह कितनी भी मनमोहक क्यों न हो अब मुझको अपनी ओर आकर्षित नहीं करती । बस मैं तो अब इस दिव्य मादकता रूपी अमृत सागर की तरंगों में आनन्द विभोर रहने का अभ्यासी बनने का इच्छुक हूँ ।

भगवन् ! अब आप मेरे इस मन मन्दिर में दर्शन क्यों नहीं देते ? मैं आपके दिव्य दर्शन का प्यासा न जाने कब से आपकी बाट जोह रहा हूँ । कृपालु देव ! आओ और अपने पावन दर्शन से अपने इस विनीत उपासक को कृतकृत्य करो ।

प्रभो ! आप व्रतपति हो । मेरे इन व्रतों की रक्षा करो और आध्यात्मिक मादकता को मेरे जीवन में सदा के लिये तरंगित कर दो ।

प्रभो ! आप तो चित्रश्रवस्तम हो अर्थात् विचित्र प्रकार से अपने भक्तों के मनों के छिपे भावों को जानने वाले और उनकी मूक वाणी का श्रवण करने वाले हो ।

प्रभो ! हमारे इस स्तवन को सुनो । हमारी पुकार को सुनो और अपनी कृपा का हमें पात्र बनालो ।

विश्वानि देव सवितर।
दुरितानि परासुव।
यद्‌ भद्रं तन्न आसुव।। ऋ० । ५ । ८२ । ५

शब्दार्थ--(देवसवितर) सकल ब्रह्माण्ड के रचयिता दिव्य प्रकशस्वरूप प्रभो। (विश्वानि) सकल (दुरितानि) दुर्गुणों को (परासुव) दूर हटा दो और (यद्) जो (भद्रं) कल्याणकारी भावनाएँ हैं (तत्) वह (नः) हमारे अन्दर (आसुव) भरदो।

भावार्थ—परमात्मदेव सकल विश्व को उत्पन्न करने वाले एवं प्राणीमात्र के लिये असंख्य उपकारी वस्तुओं का निर्माण करने हारे हैं। अज्ञानान्धकार को विदीर्ण कर ज्ञान की ज्योतिः जगमगाने वाले हैं।

पूर्णज्ञानी एवं नित्यमुक्त स्वभाव होने के कारण वह अपापविद्ध हैं अर्थात् पापों को छू तक नहीं गये हैं। वह तो प्राणीमात्र के पाप, ताप और संताप और विलापों के हरने वाले हैं। प्रभु के गुणों का कीर्तन और उसकी भक्ति पाप ताप के निवारण करने में अमोघ छत्र का काम करती है।

परमात्मदेव तो मानव के हृदय में सदा भद्र भावनाओं का सञ्चार ही करने वाले हैं। वह दिव्य और पुनीत विचार जो मानव को पापों से हटाकर सुकर्मों के अनुष्ठान में प्रवृत्त करने वाले हैं, पतन के भयंकर गर्त से निकालकर उत्थान के उच्च शिखर तक पहुंचाने में उसकी सदा सहायता करने वाले हैं उन सब का अनादि केन्द्र तो परमदेव परमात्मा ही हैं। उस ही दिव्यप्रकाश स्तम्भ से तो यह सब भद्र भावना रूपी प्रकाश की किरणें मानव कल्याण हित प्रसारित होती हैं।

हे प्राणनाथ दयालु देव! दया करो। पापों और अभद्र भावनाओं को हमसे दूर भगा दो और भद्र भावनाओं से हमारे मनों और बुद्धियों को ओत-प्रोत कर दो।

विष्णोः कर्माणि पश्यत ।
यतो व्रतानि पस्पशे ।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ऋ० १ । २२ । १९

शब्दार्थ—(विष्णोः) विश्व-व्यापक परमात्मा के (कर्माणि) अद्भुत दिव्य कर्मों को (पश्यत) देखो (यतः) जिससे (व्रतानि) अहिंसा, सत्य आदि दिव्य व्रतों का (पस्पशे) प्रकाश हुआ है। (इन्द्रस्य) इन्द्रियों के स्वामी जीवात्मा का वह (युज्यः) सदा साथ रहने वाला (सखा) मित्र है।

भावार्थ—प्रत्येक जीवात्मा के अन्दर और प्रकृति के कल्याण में वह परमात्मदेव रमे हुए हैं। समस्त लोक लोकान्तरों के बाहर और भीतर वह अपनी निज सत्ता से सदा विद्यमान रहते हैं। परमात्मदेव के सृष्टि-रचना, पालन, संहार, न्यायव्यवस्था आदि अद्भुत और विचित्र कर्म हैं। मानव का कर्त्तव्य है कि वह उन सब का बोध प्राप्त करने में सतत प्रयत्नशील रहे।

संसार के सकल सद्गुण और पवित्र विचार उस ही परमात्मा से सदा प्रसारित रहते हैं। सकल भद्रभावनाओं का मानव के हृदय में सञ्चार करने वाला वह अहेतुक दया-सिन्धु परमात्मा ही है। अहिंसा, दया, करूणा, सत्य, प्रेम आदि दिव्य व्रतों का केन्द्र परमात्मदेव ही तो सनातन से है। मानव के कल्याणार्थ इन महान् व्रतों का सञ्चार वह प्यारा प्रभु सदा उसकी मात्मा में करने हारे हैं।

जीवात्मा भी स्वभाव से शुद्ध चेतन है इसके अन्दर भी दैवी सम्पदा स्वभाव से आंशिक रूप में विद्यमान रहती है। परमात्मदेव की उपासना से उस सम्पदा का सवर्धन और विकास होता तथा जीव की स्वाभाविक अल्पज्ञता के कारण जो अज्ञान उसको घेरे रहता है वह तिरोहित होने लगता है। परमात्मदेव तो इस जीवात्मा का अभिन्न सखा है। कभी भी तो वह इससे विलग नहीं होता। जिसने इस अन्दर बैठे अपने अभिन्न मित्र को पहचान लिया उसका अभ्युदय और उत्थान सुनिश्चित है।

वृषभं चर्षणीनां ।
विश्वरूपमदाभ्यम् ।
बृहस्पतिं वरेण्यम् ।। ऋ० । ३ । ६२ । ६

शब्दार्थ—(चर्षणीनां) समस्त मानवों को (वृषभं) बल के देने हारे (विश्वरूपं) सकल विश्व को रूप प्रदान करनेहारे अर्थात् रचने हारे (अदाभ्यं) कभी नष्ट न होने वाले (वरेण्यं) वरण करने योग्य (बृहस्पतिं) सब के पालनकर्त्ता परमात्मा का हम आवाहन करते हैं।

भावार्थ—प्रभो ! आप अत्यन्त बलशाली हो दिव्य शक्तिके आप अतुलित आगार हो । सकल मानवी प्रजा के आप ही जीवनाधार हो । अपने प्रजाजनों के लिये शारीरिक एवं आत्मिक बलों के आप ही दातार हो । दीनदुःखी दरिद्र निर्धन मानव के जीवन के तो आप ही एकमात्र सहारे हो । उनकी दीनता, दुःख, दारिद्र्य और निर्धनता को मिटाने वाले एकमात्र प्रभो आप ही हो ।

इस सारे संसार को नाम रूप के देने वाले, विश्वरूपा नाना प्रकार की सृष्टि की सृजना करने वाले आप ही हो ।

प्रभो ! आप तो अविनश्वर, अखण्ड, अक्षर और अविनाशी हो । प्रभो ! आप अत्यन्त कमनीय, स्पृहणीय एवं सौन्दर्य के भण्डार एवं एकमात्र वरण करने योग्य हो । आपको विसारकर और किसकी हम अपने जीवन में कामना वा स्पृहा करें । आपको छोड़कर और किसकी चाह वा लगन हमारे अन्दर हो । और कौन है जिसके लिये हम अपने मानस नेत्रों के पलड़े बिछावें ।

आपसे सुन्दर और कौनसी वस्तु इस संसार में है जिसको निरन्तर मानस नेत्रों से अथवा ज्ञान चक्षु से हम निरखा करें । प्रभो ! आप तो दिव्य ज्ञान, बल, तेज और सौन्दर्य के आगार हो । हम आपको विसराकर और किसका अपने इस जीवन में सहारा पकड़ें । निश्चय आप ही तो एकमात्र हमारे इस जीवन के आधार हो । बस हमें एकमात्र आपका ही इस जीवन में सहारा है ।

वृषा ह्यसि भानुना ।
द्युमन्तं त्वा ह्वामहे ।
पवमान स्वर्द्दशम् ।। साम० ५ । १० । ४

शब्दार्थ—(भानुना) दिव्यतेज के कारण (वृषा) अत्यन्त पवित्रता के केन्द्र (हि) निश्चय करके (असि) हो (पवमान) पवित्रता का सञ्चार करने हारे (द्युमन्तं) अत्यन्त प्रकाश स्वरूप (स्वर्द्दशम्) दिव्यसुख को प्राप्त कराने हारे (त्वा) तुझको (ह्वामहे) पुकारते हैं।

भावार्थ—प्रभो ! आपका भानु भर्ग अर्थात् दिव्य तेज अदभुत् और महान् है। सकल दुर्गुणों का विनाश करने वाला, पाप वृत्तियों का क्षय करने वाला तथा पापियों को भस्म करने वाला है। आप तो स्वयं अनिर्वचनीय पवित्रता के केन्द्र हो और अपवित्रता का विनाश कर निश्चय ही दिव्य पवित्रता का विस्तार करने वाले हो।

जो उपासक ध्यान योग द्वारा आपका सानिध्य (कुर्व) उपलब्ध कर लेता है वह आपके इस तेज से तेजस्वी बन जाता, आपके महान् ओज से ओजस्वी बन जाता, अपके दिव्य सामर्थ्य से पराक्रमी और सहनशील बन जाता है।

प्रभो ! आपकी ज्योतिः, प्रकाश वा तेज निश्चय ही दिव्य, महान् और विचित्र है। आपका तेज लोक लोकान्तारों तक में सूर्य, ध्रुव, स्वाती आदि तक में व्याप रहा है। आपके ही तेज से तो यह सब तेजोमय होकर जगत् में तप रहे हैं। प्रभो ! आप दिव्य सुख प्रसन्नता, हर्ष, उत्साह और आनन्द के स्रोत हो। आपका सानिध्य ही हमें यह सब दिव्य सुखादि प्राप्त कराने हारा है। दिव्य-आनन्द की उपलब्धि एवं अनुभूति तो हमें आपकी ही कृपा से होने वाली है। हम सब अपने अन्दर दिव्य पवित्रता का सम्पादन कर और भक्तिभाव से युक्त हो आपका आवाहन करते हैं। मन मन्दिर में आपकी ज्योतिः जागृत करते हैं। प्रभो ! कृपा करो और अपने दिव्य दर्शन से हम अपने उपासकों को कृत्कृत्य करो।

शन्नो देवीरभीष्टय ।
आपो भवन्तु पीतये ।
शंयोरभिस्रवन्तु नः ।। साम० १ । ३ । १३

शब्दार्थ—(देवीः) दिव्य गुणों से युक्त (आपः) सर्वव्यापक परमात्मदेव (नः) हमारे लिये (शं) कल्याण के करने हारे हों। (अभीष्टये) अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति के निमित्त (पीतये) आत्म पिपासा की शान्ति के निमित्त (भवन्तु) होवें (नः) हमारे (अभि) सब ओर (शंयोः) दिव्य सुख व शान्ति की (स्रवन्तु) वृष्टि होवे।

भावार्थ—रोम-रोम में रमण करने वाले घट-घट वासी अविनाशी परमात्मदेव दिव्य गुणों एवं शक्तियों के महान् भण्डार हैं। वह ही हमारे सच्चे एवं परम कल्याणकर्त्ता हैं। हमें मङ्गल के देने वाले एवं दिव्य शक्ति के प्रदाता हैं।

मानव की चिर अभिलाषा दिव्य सुख एवं आनन्द की प्राप्ति है। मानव जीवन की वास्तविक तृप्ति तो दिव्य मादकता अर्थात् मस्ती में ही है। हम इस जीवन रस का अर्थात् मादकता का ध्यान योग द्वारा अपने अन्दर सम्पादन करने वाले बन जाँय बस यह ही हमारी कामना है। यह दिव्य मादकता प्रभु की कृपा विना निष्पन्न होने वाली नहीं। हम प्रातः और सायं, रात्रि और मध्याह्न में आपने अन्दर श्रद्धा का जागरण करें। सत्यस्वरूप परमात्मदेव के प्रति अगाध प्रेम को अपने अन्दर उत्पन्न करने वाले बन जांय।

जब हमारे जीवन में श्रद्धा का वास होगा तो दिव्य मादकता का स्रोत फूट निकलेगा और हमारे चहुँ ओर पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशाओं में तथा ऊपर और नीचे सर्वत्र ही दिव्य सुख, शान्ति, समृद्धि की वर्षा होने लगेगी।

प्रभो ! हमें अपना कृपापात्र बनालो और हमारे जीवन को अपनी अमृत वर्षा से सरस कर दो। बस यह ही हम याचकों की एकमात्र आपसे विनति है।

९४

स नो विश्वाहा सुक्रतुः ।
आदित्यः सुपथा करत् ।
प्र ण आयूंषि तारिषत् ।। ऋ० १ । २५ । १२

शब्दार्थ—(सः) वह परमात्मा (विश्वाहा) मानव संसार को सत्य ज्ञान का बोध कराने हारा (सुक्रतुः) श्रेष्ठतम कर्मों का यज्ञों का विधाता (आदित्यः) आज्ञानान्धकार का नाशक (नः) हमारे लिये (सुपथा) श्रेष्ठतम मार्ग का (करत्) विस्तार करें और (नः) हमारे (आयूंषि) जीवनों का (प्रतारिषत्) सम्यक्तया उद्धार करे।

भावार्थ—वह परमात्म देव निश्चय संसार के सर्व मानवों के हित सत्य ज्ञान का प्रकाश करने वाला है। किसी जाति वा देश विशेष के लिये ही उसने सत्यज्ञान प्रकाशित किया हो ऐसा नहीं। श्रेष्ठतम कर्मों का उसका विधान भी सार्वजनीन है। उसके समस्त कर्म निश्चय ही विशुद्ध यज्ञ रूप हैं। जनहित, प्रजाहित अथवा अपनी सन्तति के हित ही वह सृष्टि रचना आदि परोपकार रूप यज्ञों का करने हारा है।

अज्ञान अन्धकार को विदीर्ण कर दिव्य प्रकाश की ज्योतिः पवित्र आत्माओं के अन्दर जागृत करना उसका निज स्वभाव है। प्रभो! हमें सत्य मार्ग का पथिक बना दो। आपकी कृपा से हम सब सत्यपथ पर चलने वाले बन जांय और कभी भूल कर भी कुपथ पर पग न धरें।

प्रभो! आप ही हमारी इस जीवन नौका को इस संसार सिन्धु में जो काम क्रोध, लोभ मोह आदि गज, ग्राह और आवर्तों से युक्त है, खेने वाले हो। आपकी सहायता से ही हम इस सिन्धु का पार पा सकते हैं। नाथ! हमारे इस जीवन का उद्धार कर दो और हमें पतन के गर्त से बचने की शक्ति एवं सद्बुद्धि प्रदान कर दो। हम श्रद्धा समन्वित होकर आपकी शरण में आए हैं। एक मात्र आपके ही हम शरणागत हैं।

स नः पितेव सूनवे ।
अग्ने सुपायनो भव ।
सचस्वा नः स्वस्तेय ।। ऋ० १ । १ । ६

शब्दार्थ—(अग्ने) ज्योतिः स्वरूप विश्वनियन्ता प्रभो (सूनवे) पुत्र के लिये (पिता) पिता के (इव) समान (सः) वह आप (नः) हमारे लिये (सुपायनः) श्रेष्ठ पालन कर्त्ता (भव) होवो (नः) हम सबों को (स्वस्तये) कल्याण से (आसचस्व सम्यक्) युक्त करो।

भावार्थ—जिस प्रकार लोक में जन्मदाता पिता को अपनी सन्तान के प्रति प्रेम प्रीति व प्यार होता है और उनके हर प्रकार के उत्थान में वह प्रयत्नशील होता है उसी प्रकार वह प्यारा प्रभु भी हमें इस मानव देह में अवतरित करता, हम अपने अमृत पुत्रों से प्रेम करता, हमारी हर प्रकार से रक्षा करता और प्रगति-पथ पर चलने की सदा प्रेरणा देता है। प्रभो! आप तो निश्चय ही हमारे परम रक्षक, नियामक, नेता और नियन्ता हो। कल्याण कर्त्ता, मंगल विधाता, सुख सम्पत्ति और सौमनस्य के दाता हो।

प्रभो! आपने ही तो हमारे लिये इस जीवन-रथ का निर्माण किया है, दिव्य शक्तियों और विभूतियों से इसे संयुक्त किया है। संसार यात्रा को सुगमता के साथ पूरा करने सम्बन्धी सकल सुविधाओं से इसे युक्त किया है और कभी न बुझने वाला ज्ञान का दीपक इसमें जलाया है।

प्रभो! मुझे वह सद्बुद्धि प्रदान करो कि मैं इस जीवन-रथ को कभी नष्ट, भ्रष्ट और बरबाद करने वाला न बनूं। सदा संयम और सदाचार से इस की रक्षा करते हुए जीवन यात्रा के पथ पर प्रगति करने वाला बन जाऊं। अपने जीवन में दिव्य मादकता भर कर हर्ष, उल्लास और उमंगों से सदा इसको युक्त रखते हुए आगे-ही-आगे बढ़ता चला जाऊं और आपकी कृपा का पात्र बनकर अपने जीवन के लक्ष को सिद्ध कर पाऊं।

समस्य मन्यवे विशः ।
शिवा नमन्तकृष्टयः ।
समुद्रायेव सिन्धवः ।। ऋ० ८-६-४

शब्दार्थ—(समस्य) समस्त (विशः) प्रजाओं के (मन्यवे) मान्यता के केन्द्र को (विश्वा) सारे (कृष्टयः) प्राणी (नमन्त) नमन करते हैं (इव) जिस प्रकार (सिन्धवः) नदियाँ (समुद्राय) सागर के लिये नमन करती हैं ।

भावार्थ—असंख्य योनियों में निवास करने वाले जीवों का एकमात्र मान्यता का केन्द्र बिन्दु वह ज्योतिः स्वरूप परमात्वदेव ही है । असंख्य प्राणी मूक भाव से उस प्रणानाथ प्रभु का अर्चन करते और मानव देहों में विराजमान जीव नाना स्रोतों द्वारा उसकी महिमा का बखान करते हैं । संसार की विभिन्न भाषाओं और विभिन्न विधियों द्वारा उस प्रभु का वन्दन कर मानव अपने जीवन को कृतकृत्य करता है । संसार के सर्व महामानव एक स्वर से इस जगतितल पर उस प्रभु के दैवी साम्रज्य की स्थापना का प्रयत्न करते हैं । नरक से इस धरा-धाम को स्वर्ग बनाना ही उनके जीवन की साधना होती है ।

मानव अनृत को त्याग कर सत्य का उपासक बन जायें, अन्धकार से नाता तोड़कर दिव्य ज्योतिः का पुजारी बन जाय, मृत्यु के पाश से निकलकर अमृत पुत्र बन जाय बस यही महापुरुषों के जीवनों की साधना हुआ करती है ।

जिस प्रकार संसार की विभिन्न नदियाँ नाना क्षेत्रों में बहती हुई असंख्य कगारों को तोड़ती और वृक्षों को उपाड़ती हुई सागर में पहुँच कर शान्त और समरत हो जाती हैं उस ही प्रकार संसार के समस्त विचारक नाना भाषाओं और स्तोत्रों द्वारा उस दिव्य ज्योतिः को अपने अन्दर जागृत करते हुए और उस जीवन रस का स्तवन हुए उस ही में लीन होकर तन्मय होकर दिव्य शान्ति और सुखका अनुभव करते हैं प्रभो ! हम सब आपके उपासक आपके आश्रित होकर श्रद्धा पूर्वक दया, प्रेम और करुणा के महान् सागर आपको नमन करते हैं ।

९७

सहस्राक्षो विचर्षणिः ।
अग्निर्वक्षांसि सेधति ।
होता गृणीत उक्थ्यः ॥ ऋ० १-७९-१२

शब्दार्थ—(अग्निः) विश्व नियन्ता परमात्म देव (सहस्राक्षः) अनन्त दर्शन शक्ति वाला (विचर्षणीः) सब ओर दृष्टि रखनेवाला (वक्षांसि) तेज और बलादि को (सेधति) हमारे अन्दर निहित करता है (होता) अन्तर्बोध कराने वाला (उक्थ्यः) हमारे स्तोमो को (गृणीत) ग्रहण करें ।

भावार्थ—विश्वनियन्ता परमात्वदेव के नेत्र असंख्य हैं अर्थात् उसकी दर्शन शक्तियाँ अपार हैं । घट-घट वासी प्रभु प्राणियों के समस्त क्रिया कलापों विचार तरङ्गों, संकल्पों और विकल्पों के जाकने वाला है । उससे किसी भी प्राणी के हाव भाव छिपे नहीं । वह निश्चय सब कुछ जाननेवाला अर्थात् सर्वज्ञ है ।

वह अपने भक्तों के हृदयों में आत्मिक वल का सञ्चार करता और विभिन्न वल, विक्रम, तेज, ओज आदि से युक्त करा है । उस प्यारे सखा ने हमारे अन्दर नाना शकियों का सञ्चार किया हुआ है और हसारी इस तन रूपी दैवी नौका को नाना प्रकार के यन्त्रों से युक्त किया है । प्रभु प्रदत्त इन शक्तियों एवं यन्त्रों का यदि हम आदर करने वाले अर्थात् सदुपयोग कर्त्ता बन जांय तो तो हमारा जीवन निश्चय ही उच्च और महान् होगा और हम इस मानव देह के धारण करने रूपी अपने लक्ष्य को सिद्ध कर सकेंगे ।

वह प्रभु इस संसृति शाला में निवास करने वाले हम अपने अमृत पुत्रों की आन्तरिक पुकारों को सुनने वाला है और हमें अन्तर्बोध कराने हारा है। भक्ति भाव से ज्ञान पूर्वक हम जिन स्तोत्रों का पाठ करते हैं और उस प्रभु के गुणों का कीर्तन करते हैं वह व्यर्थ जाने वाले नहीं । हमारा प्राण धार साख निश्चय उनको सुनेगा और हमारे अभीष्ट को पूर्ण करेगा ।

प्रभो ! हम पर अपनी कृपा का विस्तार करो और स्रोत्रों का श्रवण कर हमारे जीवन को कृतकृत्य करो ।

९८

स हि विश्वानि पार्थिवान् ।
एको वसूनि पत्यते ।
गिर्वणस्तमो अध्रिगुः ।। ऋ० ६-४५-२०

शब्दार्थ—(सः) वह परमात्मदेव (गिर्वणस्तमः) परमज्ञानी (अध्रिगुः) अप्रत्याहत गति (एकः) एक (हि) ही है । वह (विश्वानि) समस्त (पार्थिवान्) पृथिवी लोक सम्बन्धी (वसूनि) विभूतियों को (पत्यते) हमें प्राप्त कराता है ।

भावार्थ—वह हमारा प्राण प्यारा सखा परमज्ञानी और वेद वाणी का पति है । सनातन वेद ज्ञान का परम सागर है । उसकी शक्ति और सामर्थ्य में वेदका सम्पूर्ण ज्ञान निहित है । वह अद्भुत और अपरिमेय शक्तियों का भण्डार है ।

ससार की कोई भी शक्ति कभी उसका सामना कर नहीं सकती । उसकी ही शक्ति के बल पर तो यह सकल संसार अपनी गति से सदा चलता रहता है ।

संसार की सकल विभूतियों एवं ऐश्वर्यों का निर्मात्ता वह ही है । प्रणीमात्र के कल्याणार्थ ही उसने इन हवका सृजन किया है ।

संसार की सर्व आध्यात्मिक आधिभौतिक एवं आधिदैविक विभूतियों का संरक्षक तथा स्वामी वह ही एक मात्र प्यारा प्रभु है । उस अहेतुक दयासिन्धु परमात्वदेव ने हम मानवों पर दया करके बुद्धि तत्त्व से हमें विशेष रूप से संयुक्त किया है । हमें सदसद् का विवेक प्रदान किया है । अनृत से दूर रहने और ऋत की उपासना करने की दिव्य प्रेरणा भी वह दयालु देव सदा अन्दर बैठा करता रहता है । हम सब भक्ति भावों से समन्वित होकर परम दयालु देव के उपासक बन जावें बस यही ही हमारी एक मात्र कामना है ।

प्रभो ! कृपा करो और हमें अपना सच्चा अनुचर बना लो ।

९९

सोम गीर्भिष्ट्वा वयं ।
वर्धमानो वचोविदः ।
सुमृडीको न आविश ।। ऋ० १ । ९१ । ११

शब्दार्थ—(सोम) प्यारे जीवन-रस (वचोविदः) वैदिक गीतिकाओं के सार को समझने वाले (वयं) हम उपासक (त्वा) तुझको (गीर्भिः) स्तोत्रों द्वारा (वर्धयामः) ज्ञान नेत्रों द्वारा तेरे दिव्य प्रकाश का अपने अन्दर संवर्धन करते हैं। (सुमृडीकः) तू परम दयालु है (नः) हमारे हृदय में (आविश) प्रकाशित हो।

भावार्थ—अध्यात्म शास्त्र का सार-तत्व प्राणनाथ प्रभु का सम्यक् ज्ञान और दर्शन करना है। वेद की पावनी ऋचाओं का ज्ञान ही हमारा जीवन संगीत है। हम इस दिव्य संगीत द्वारा अपने उस जीवन-धन का, जीवन को सरसाने वाले उस दिव्य मादकता के स्रोत सोम का श्रद्धा समन्वित हो आराधना करते हैं। उसकी दिव्य आनन्द रूप छवि का अपने हृदय-मन्दिर में उत्तरोत्तर संवर्धन करते हैं। वह छवि पूर्ण तेज और प्रकाश से हमारे अन्दर चमकने लगे बस यही हमारी जीवन साधना है।

प्रभो ! आप अत्यन्त दयालु हो। निज भक्तों पर तो आपकी दया, कृपा और अनुकम्पा सदा बनी रहती है।

दयालु देव ! प्रसन्न हो जाओ और मेरे अन्तस्तल से निकले हुए स्तोत्र का श्रवण कर मुझे अपना दिव्य दर्शन दो। आपके दिव्य आनन्द रूप का दर्शन कर मैं उसकी मादकता में बस तन्मय हो जाऊँ, तन्मय हो जाऊँ।

१००

सोम रारन्धि नो हृदि ।
गावो न यवसेष्वा ।
मर्य इव स्व ओक्ये ।। ऋ० १ । ९१ । १३

शब्दार्थ—(सोम) हे प्यारे जीवन-धन (नः) हमारे (हृदि) हृदय को (रारन्धि) प्रेम प्रकाश से युक्त कर दो (न) जिस प्रकार

(गाव:) गौवें (यवसेषु) जौ के खेत में (आ) समन्तात् रमण करती हैं और (मर्य) मानव (स्व) अपने (ओक्ये) गृह में रमण करता है।

भावार्थ—जिस प्रकार गौ जौ के खेत में अत्यन्त प्रीति के साथ रमण करती और अबाध गति से उसमें बिहार करती है तथा जिस प्रकार एक मानव अपने पुत्र कलत्र युक्त गृह में अत्यन्त प्रीति के साथ निवास करता है उसी प्रकार मैं अपने उस प्राण प्यारे प्रभु के दिव्य प्रकाश से प्रकाशित मन-मन्दिर में रमण करने वाला बन जाऊँ।

सोम तो मेरा जीवन धन है मेरे जीवन का सार है और इस मेरे जीवन का रस है। मेरी यह चिर आकांक्षा है कि वह मेरे इस हृदय मन्दिर में अब अधिक काल तक ओझल बन कर न रहे अपितु प्रकट होकर अपने दिव्य दर्शनों से मुझे कृतकृत्य करें। मुझ प्यासे चातक को अपने अमृत बिन्दु का पान करा कर अमर बना दे।

मैं तो बस अब उस प्यारे सोम के दिव्य-दर्शन के निमित्त अपने ज्ञान नेत्रों के पलके बिछाऊंगा और जब तक उसकी मोहनी छवि, दिव्य मादकता सरसाने वाली ज्योति का दर्शन न कर लूँगा चैन से न बैठूंगा। निश्चय मैंने अब यह व्रत ठान लिया है और प्राणपण से इसको पूरा करके ही रहूँगा।

१०१

स्वादिष्ठया मदिष्ठया।
पवस्व सोम धारया।
इन्द्राय पातवे सुतः ॥ ऋ० ९ । १ । १

शब्दार्थ—(सोम) हे सोम (स्वादिष्ठया) अत्यन्त मीठी (मदिष्ठया) अत्यन्त मदकारी (धारया) धारा के द्वारा (पवस्व) हमें पवित्र कर (सुतः) प्रादुर्भूत हुआ तू (इन्द्राय) इन्द्रियों के राजा जीवात्मा के (पातवे) रक्षा का हेतु होवे।

भावार्थ—हे मन-मन्दिर के अधिष्ठातृ देवता प्यारे जीवन-धन। तेरा पेय-रस अत्यन्त रसीला व अत्यन्त नशीला है। मानव जीवन में दिव्य मादकता को सरसाने वाला है। जिसने अपने इस जीवन में एक बार भी उसका एक घूंट पी लिया उसे संसार की सुध-बुध नहीं रहती अर्थात् इस

संसार की मोह-माया उसे नहीं सताती। संसार जिसे दिन कहता वह उस लिये रात्रि है और संसार की दृष्टि में जो रात्रि है वह उसके लिये दि हो जाता है। वह तो एक विचित्र पागल बन कर अपनी मस्ती में रहने लगता है। एक तरंग है जिस पर वह सवार रहने लगता है। कैसा पवित्र और कैसा अद्भुत यह निराला नशा है। काम, क्रोध, लोभ, मोह कोई भी फल ऐसा नहीं जो इसके साथ लग सके।

इस नशे का सेवन साधारण जन नहीं अपितु राजा लोग ही कर सकते हैं। मैं अपनी इस अष्टचक्रा नव-द्वारा नामक देव-पुरी का राजा हूँ और यह राज-पाट मुझे मेरे प्यारे पिता ने सौंपा है किन्तु जब तक मैं इसे अयोध्या न बनाऊँगा अर्थात् काम क्रोधादि असुरों को इससे न मार भगाऊँगा मैं राजा कैसा। जब तक वाक् श्रोत्र, चक्षु आदि मन्त्रियों पर मेरा पूर्ण नियन्त्रण नहीं मुझे राजा मानने कौन लगा है।

मैं निश्चय ही राजा बनूँगा और संयम रूप अपने राज्य तन्त्र को दिव्य बनाऊँगा। तब ही तो मैं इस सोम का प्रभु प्रेम के इस अद्भुत संजीवन-रस का जीभर पान कर सकूँगा। सोत्र सरोवर में जी भर गोते लगा सकूँगा।

प्रभो! मुझे शक्ति दो कि मैं अपनी साधना द्वारा राजा अर्थात् आत्मवान् बन जाऊँ।

वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना प्रत्येक आर्य का परम धर्म है

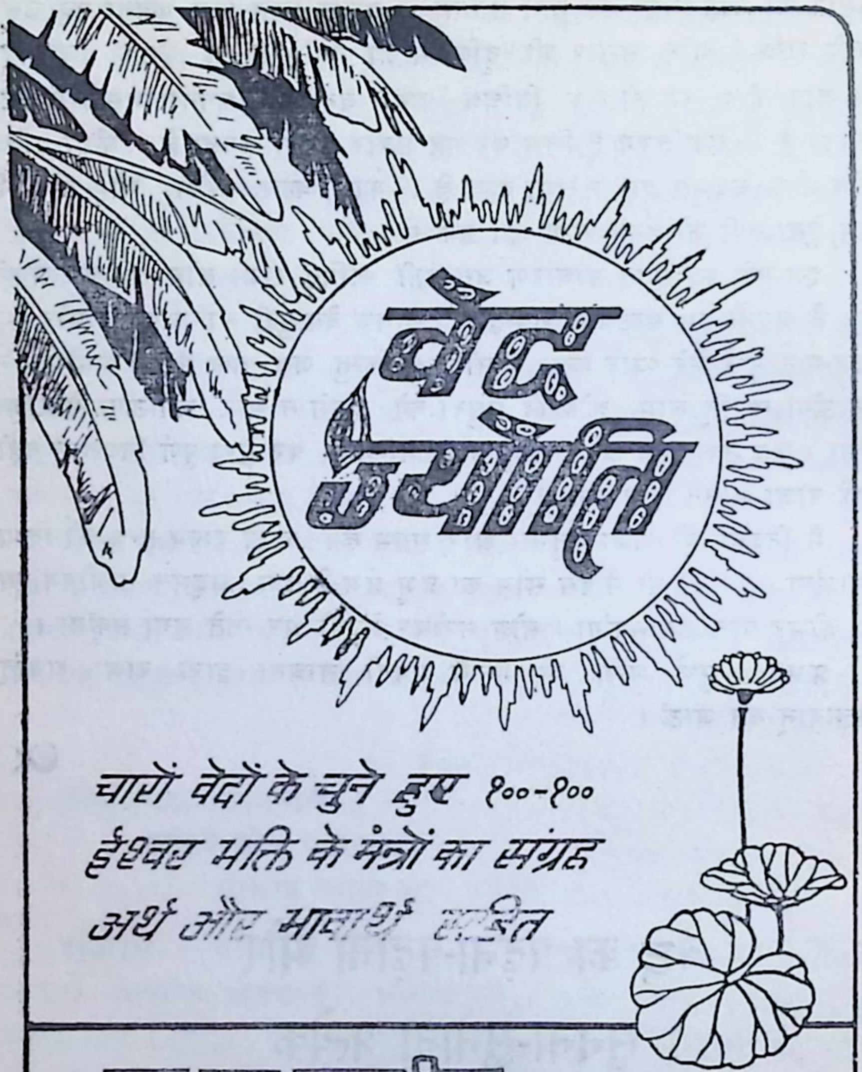

मूल्य केवल ३)

संपादक:--मुद्रक-प्रकाशक श्रीमती पंडिता राकेश रानी के लिए भाटिया कंपोजिंग एजेन्सी द्वारा भण्डारी प्रिंटिंग प्रेस, में मुद्रित व १५९७ हरध्यानसिंह रोड करौल बाग, ३१ नाई वाला करौलबाग नई दिल्ली ५ से प्रकाशित

ओ३म् भूर्भुवः स्वः
तत्सवितुर्वरेण्यं
भर्गो देवस्य धीमहि
धियो यो नः प्रचोदयात्।

जन-ज्ञान (मासिक)
१५६७, हरध्यानसिंह मार्ग
नई दिल्ली-५

श्रावणी संवत् २०२७

Regd. No.
D. 1631

वेद के प्रचार के लिए अधिक से अधिक बांटिए—रियायती मूल्य पर

१. **वेद-ज्योति**—चारों वेदों के चुने ईश्वर भक्ति के ४०० वेद मंत्रों की व्याख्या। स्वामी अच्युतानन्द जी सरस्वती के चारों शतकों का संग्रह।
मूल्य ३) रु०। २० अगस्त १९७० तक २) रु०

२. **ज्ञान-प्रकाश**—सत्यार्थ-प्रकाश का सार: प्रभावशाली रूप में: पं० हरिशरणजी व पं० दीनानाथजी की लेखनी से मूल्य १.५०
१००) रु० सैंकड़ा। २० अगस्त १९७० तक ५०) रु० सैंकड़ा

३. **यज्ञ-प्रसाद**—महात्मा आनन्द स्वामी जी की लेखनी से।
मूल्य ४० पैसे। २० अगस्त १९७० तक २०) रु० सैंकड़ा

४. **विश्व को वेद का सन्देश**—भारतेन्द्रनाथ साहित्यालंकार लिखित।
१०) रु० सैंकड़ा। २० अगस्त १९७० तक ८) रु० सैंकड़ा

५. **भारत की अवनति के ७ कारण**—आचार्य जगदीश विद्यार्थी एम० ए० लिखित। मूल्य ५० पैसे। ३५) रु० सैंकड़ा
२० अगस्त १९७० तक २०) रु० सैंकड़ा

६. **योग-जीवन**—मूल्य २) रु०। २० अगस्त १९७० तक ६०) रु० सैंकड़ा

यह सारे रियायती मूल्य दानी महानुभाव के १०००) रु० के दान से कम किए हैं। १०००) रु० दान का स्टाक पहले ही समाप्त हो गया तो घटे मूल्य पर साहित्य न भेज सकेंगें। अतः

अपना-अपना आदेश धन सहित आज ही भेजें।

जन-ज्ञान-प्रकाशन

१५६७, हरध्यानसिंह मार्ग, नई दिल्ली-५.